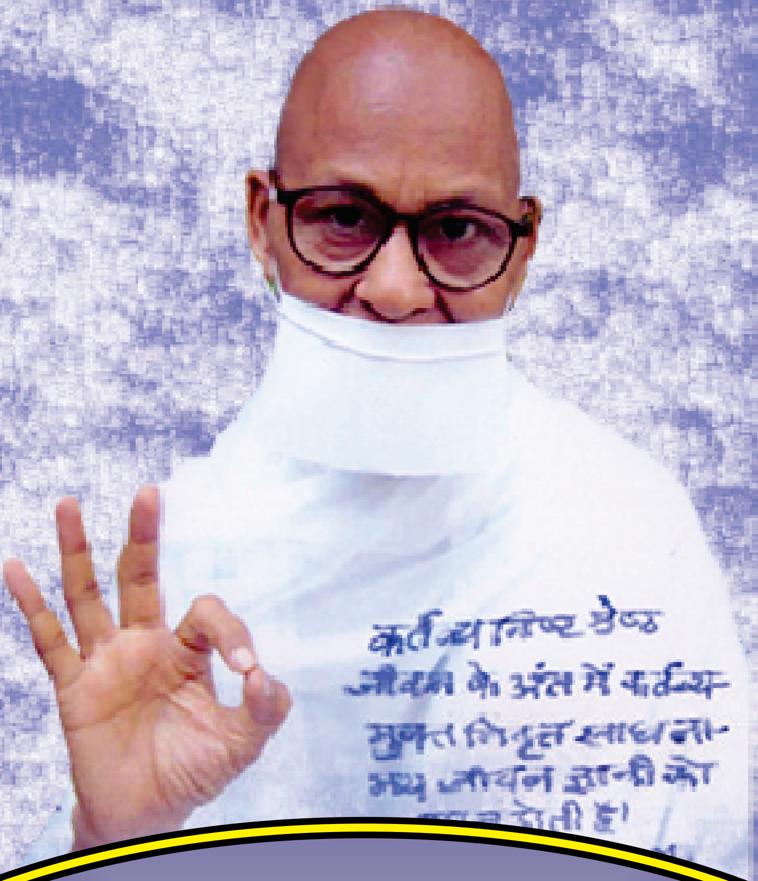

आगम मनीषी

श्री तिलोकचंद जैन द्वारा संपादित

जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर

भाग ० १०

चार मूल सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : चार मूलसूत्र कौन से है ? इन्हें मूलसूत्र क्यों कहा गया है?

उत्तर– न दी सूत्र की आगम सूची में अ गबाह्य सूत्रों में इन सूत्रों की गणना है जिसमें एक सूत्र कालिक में और शेष तीन उत्कालिक में लिये गये हैं। वे चार सूत्र इस प्रकार है– (१) उत्तराध्ययन सूत्र (२) दशवैकालिक सूत्र (३) न दी सूत्र (४) अनुयोगद्वार सूत्र। जिसमें उत्तराध्ययन सूत्र कालिक सूत्र है। दशवैकालिक, न दी, अनुयोग उत्कालिक सूत्र है । जिन शास्त्रों की शब्द रचना गणधर सिवाय अन्य बहुश्रुत आचार्य करते है वे उत्कालिक कहे जाते है। जो शास्त्र गणधर रचित शास्त्र में से उद्धृत किये जाते हैं, मौलिक रचना गणधरों की रहती है, वे कालिक सूत्र कहे जाते हैं।

गणधर द्वादशा गी की रचना करते है उनमें से ही कई शास्त्र उद्धृत किये जाते है। जिनमें शब्द अध्ययन वे ही रखे जाते हैं, उन्हें कालिक कहा जाता है। गणधर रचित तीर्थंकर भाषित भावों को जो आचार्य अपनी शैली में नूतन रचना करते हैं वे उत्कालिक शास्त्र कहे जाते हैं।

इस पुस्तक में हमने चार मूल सूत्रों के साथ आवश्यक सूत्र का भी समावेश किया है उसे नो कालिक नो उत्कालिक अ गबाह्य शास्त्र कहा गया है अर्थात् जिसके पढ़ने, बोलने में कोई काल का(समय का) प्रतिब ध नहीं होता है। सज्झाय-असज्झाय का नियम उसमें नहीं लगता है, जो गणधर रचित होते हुए भी २४ घ टों में कभी भी बोला जा सकता है, जो यथासमय अवश्य करणीय होता है। इसलिये इसे आवश्यक सूत्र नाम दिया गया है। जिन शासन का वीतराग धर्म विनय मूल धर्म है ऐसा भगवती सूत्र में कहा गया है। इन चारों सूत्रों में विनय मूल धर्म को प्रधानता दी गई है। उत्तराध्ययन में प्रथम अध्ययन ही विनय का है। दशवैकालिक में प्रार भ में धर्मी व्यक्ति नमस्करणीय कहे हैं और न दी सूत्र में विनय मूलक स्तुति प्रार भ में है। अनुयोगद्वार सूत्र में विनय के मूलक ज्ञान का प्रथम कथन है।

इस प्रकार चारों सूत्रों में धर्म के मौलिक गुण विनय–ज्ञान की मुख्यता से वर्णन प्रार भ होता है। आगमों में इन सूत्रों को कहीं भी मूलसूत्र नहीं कहा गया है पर तु अपने गुण एव महत्ता से ये शास्त्र अज्ञातकाल से मूल सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है और सर्व मान्य है।

उत्तराध्ययन सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : इस सूत्र का मौलिक परिचय क्या है ?

उत्तर– इसमें श्रेष्ठ श्रेष्ठतम उपदेशी, आचारप्रधान, स यमप्रधान, वैराग्य-प्रधान एव तत्त्वप्रधान अध्ययन होने से इसका नाम बहुश्रुत आचार्यों ने उत्तराध्ययन सूत्र रखा है। इस शास्त्र को जैन जगत में भगवान महावीर स्वामी की अ तिमवाणी माना जाता है। जिसका मौलिक आधार यह है कि इन अध्ययनों का प्राचीन नाम **महावीर भासियाइ** था। उसी के साथ **अ तिम देशना** श्रद्धा से जुड़ जाने से भगवान की अ तिम वाणी मोक्ष जाते समय फरमाये अध्ययन कहलाये जाने लगे।

वास्तव में प्रश्नव्याकरण सूत्र गणधर रचित है। उसी में एक अध्याय ऋषिभाषित, एक महावीरभाषित और एक आचार्यभाषित भी था तथा अनेक विद्याएँ भी प्रश्नव्याकरण सूत्र में थी। देवर्धिगणि आचार्य के लेखन समय में अनेक विद्याओं को भविष्य में हानिकारक समझ कर निकालना उपयुक्त समझा गया और अवशेष प्रश्नव्याकरण सूत्र का विभाजीकरण हो गया।

ठाणा ग, समवाया ग, न दी तीनों सूत्रों में पुराने प्रश्नव्याकरण सूत्र का परिचय मिलता है। तदनुसार महावीर भाषित और ऋषि भाषित अध्ययन उसमें थे। उन्हें स्वत त्र सूत्र रूप देकर न दी में नाम भी रखा गया है। ऋषिभाषित के ४५ अध्याय थे वह भी आज उपलब्ध है और महावीरभाषित के ३६ अध्याय थे वे आज उत्तराध्ययन के नाम से उपलब्ध है। अतः आज का हमारा उत्तराध्ययन सूत्र गणधर रचित आगम में से उद्धृत सूत्र है, अतः कालिक सूत्र है।

प्रश्न–२ : भगवान ने मोक्ष जाते समय कौन से अध्ययन फरमाये थे ?

उत्तर– समवाया ग सूत्र में ऐसा पाठ उपलब्ध है कि भगवान ने अ तिम रात्रि में ५५ सुखविपाक के और ५५ दुःखविपाक के अध्ययनों का निरूपण करके सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए। छत्तीसवें समवाया ग में ३६ उत्तराध्ययन के नाम गिनाये गये है पर तु मोक्ष जाते समय फरमाने का वहाँ कुछ भी कथन नहीं है। ग्र थों, व्याख्याओं में ऐसा वर्णन आता

है कि भगवान ने मोक्ष जाते समय ३६ अध्ययन फरमाये और सैंतीसवें अध्ययन की शरूआत करते हुए मोक्ष पधारे।

प्रश्न–३ : उत्तराध्ययन सूत्र पर व्याख्या साहित्य किस प्रकार उपलब्ध है ?

उत्तर– सर्व प्रथम इस सूत्र पर आचार्य भद्रबाहु स्वामी(द्वितीय)ने निर्युक्ति व्याख्या की है। उसके बाद निर्युक्ति पर भाष्य व्याख्या की रचना भी हुई होगी पर तु दोनों व्याख्या प्राकृत पद्यमय होने से आज वह व्याख्या निर्युक्ति के नाम से ही उपलब्ध है। प्राकृत चूर्णि, स स्कृत टीका, अवचूरी आदि अनेक व्याख्याएँ इस सूत्र पर बनाई गई है पर तु प्राचीन टीका में शा त्याचार्य वृत्ति प्रसिद्ध रूप में उपलब्ध है। उसके बाद भी अनेक आचार्यों, विद्वानों ने इस सूत्र पर भिन्न भिन्न तरह से स स्कृत हिंदी गुजराती व्याख्याएँ अनुवाद विवेचन स पादित किये हैं जो आज अनेक रूप में मुद्रित उपलब्ध है। यह बहु प्रचलित शास्त्र है। अनेक साधु-साध्वीजी उसे क ठस्थ करके सदा स्वाध्याय करते है। यह रसप्रद, रोचक एव भावभरा शास्त्र है। अतः इसकी अनगिनत प्रतियें एव मुद्रण समाज में मिलते हैं। प्रवचन में भी साधु- साध्वी इस शास्त्र का बहुत उपयोग करते हैं और यों भी यह शास्त्र विविध प्रकार के उपदेशों से भरा सूत्र है। ३६ इसके अध्ययन है और कुल २१०० श्लोक प्रमाण यह शास्त्र माना जाता है, स्थूल रूप में २००० श्लोक प्रमाण भी कह दिया जाता है । इसकी स्वाध्याय से एक उपवास का प्रायश्चित्त उतरता है ऐसा माना जाता है।

प्रश्न–४ : इस शास्त्र के ३६ अध्ययनों का स क्षिप्त परिचय क्या है?

उत्तर– इसके ३६ अध्ययनों में से १३ अध्ययन धर्म कथात्मक है, यथा– ७,८,९,१२,१३,१४,१८,१९,२०,२१,२२,२५,२७। आठ अध्ययन उपदेशात्मक है, यथा– १,३,४,५,६,१०,२३,३२ । आठ आचारात्मक है, यथा– २,११,१५,१६,१७,२४,२६,३५। सात सैद्धा तिक है, यथा– २८,२९,३०,३१,३३,३४,३६। इनका स क्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(१) प्रथम अध्ययन– इस अध्ययन का नाम **विनयश्रुत** है । १२ प्रकार के तप में विनय आभ्य तर तप है। औपपातिक सूत्र में विनय के ज्ञान, दर्शन आदि ७ प्रकार कहे हैं। दशवैकालिक सूत्र में विनय समाधि

चार प्रकार की कही है। इस प्रस्तुत अध्ययन में विनय के अनेक रूपों को लक्ष्य में रखकर ही विषय स कलन किया गया है।

(२) परीषह– तप स यम का पालन करते हुए जो मन वचन एव काया के प्रतिकूल प्रस ग उत्पन्न होते हैं या स यम के प्रतिकूल प्रस ग उपस्थित होते हैं उन्हें परीषह कहा गया है। परीषह की उन परिस्थितियों को धैर्य से उत्साह से पार कर लेना एव स यम तप की मर्यादा से विचलित नहीं होना "परीषह को जीतना" कहा गया है। इस अध्ययन में भिक्षु के २२ परीषहों को बताकर उन्हें जीतने की शिक्षा दी गई है।

(३) चाउर गीय– स सार की विविध योनियों में भवभ्रमण करते हुए प्राणियों के मोक्ष प्राप्त करने के चार अ गो की दुर्लभता समझाई है– (१) मानवभव (२) धर्मश्रवण (३) धर्मश्रद्धा (४) स यम में पुरुषार्थ।

(४) अस स्कृत– इस अध्ययन में मानव जीवन की क्षणभ गुरता बताकर त्याग वैराग्य एव स यम आराधना का उपदेश दिया गया है।

(५) सकाम अकाम मरण– इस अध्ययन में बालमरण और प ड़ितमरण के विषय में समझाते हुए बताया गया है कि विषयासक्त जीवों का बालमरण होता है एव धर्माचरण करने वाले श्रमण, श्रमणोपासकों में कईयों का प ड़ितमरण होता है।

(६) क्षुल्लक निर्ग्रंथीय– इस अध्ययन के प्रार भ में अज्ञान को दुःख का कारण बताकर ज्ञान का महात्म्य दर्शाया है। साथ ही कोरा ज्ञान अर्थात् क्रिया बिना का ज्ञान भी त्राण भूत नहीं होता है यह कह कर स यम–निर्ग्रंथ अवस्था का महत्त्व सिद्ध किया है।

(७) एलक(उरभ्रीय)– बकरे के दृष्टा त द्वारा स सारासक्त जीवों की दुर्दशा का चित्रण करके धर्माचरण करने वाले अनाशक्त जीवों की शुभ अवस्था दर्शाई है।

(८) कापिलीय– स यम स ब धी विविध उपदेश देते हुए अ त में कपिल मुनि के उपदेश का स केत है। जिसमें स्त्रियों के प्रति विशेष विरक्ति के भाव सूचित किये हैं।

(९) नमिप्रव्रज्या– नमि राजर्षि की दीक्षा तथा तत्स ब धी शक्रेन्द्र और दीक्षार्थी नमिराज का स वाद प्रस्तुत किया है।

(१०) द्रुम पत्रक– वृक्ष के पीले पत्ते के दृष्टा त से मनुष्य भव की

अस्थिरता बताकर उपदेश दिया गया है तथा ***समय गोयम मा पमायए*** इस वाक्य को प्रत्येक गाथाओं के अ त में दुहराया गया है।

(११) बहुश्रुत माहत्म्य– ज्ञान, ज्ञानी और विनयवान का स्वरूप बताकर बहुश्रुत श्रमण का अनेक महत्त्वशील उपमाओं द्वारा वर्णन किया है।

(१२) हरिकेशीय– चा ड़ाल कुल में जन्मे हरिकेशी मुनि के तप स यम का प्रभाव दर्शाकर सच्चे ब्राह्मण का स्वरूप एव यज्ञ का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

(१३) चित्त स भूतीय– इस अध्ययन में चित्त मुनि और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का इस भव तथा पूर्व भव का स वाद उपस्थित किया है, दोनों का अनेक भवों का स ब ध था। पूर्व भव में निदान नियाणा करने से ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नरक में गया और चित्तमुनि मोक्षाधिकारी बन गये।

(१४) इषुकारीय– इस अध्ययन में इक्षुकार नगर के ६ जीवों के वैराग्यप्रद जीवन का उल्लेख किया गया है। राजा-रानी, पुरोहित उसकी पत्नि तथा दोनों पुत्र। एक दूसरे के निमित्त प्रतिबोध से छहों जीवों ने स यम ग्रहण कर आत्मकल्याण कर लिया।

(१५) सभिक्षु–इसमें "वह भिक्षु कहलाता है" इस वाक्य के प्रयोग से भिक्षु के अनेकानेक सद्‌गुणों का गाथाओं में स ग्रह किया है।

(१६) ब्रह्मचर्य समाधि स्थान– ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये अनेक स्थान बताये है, उसमें नव वाड़ प्रसिद्ध है। प्रस्तुत में उन नव स्थानों में एक बोल अधिक मिलाकर १० समाधिस्थान रूप में समझाये हैं। पहले गद्य रूप में समझाकर फिर पुनः वही भाव पद्य में भी दर्शाया गया है।

(१७) पापश्रमणीय– स यम की विधियों का यथावत पालन नहीं करने वाले श्रमण को यहाँ प्रत्येक गाथा में पापी श्रमण बताया है और सुश्रमण बनने की प्रेरणा दी गई है।

(१८) स जय– इस अध्ययन में शिकार के निमित्त से स यति राजा की गर्दभाली अणगार के पास दीक्षा का वर्णन है। फिर क्षत्रिय राजर्षि से वार्तालाप में अनेक मोक्षगामी राजाओं का उल्लेख है।

(१९) मृगापुत्रीय– मृगापुत्र को अचानक मुनिदर्शन से जातिस्मरण

ज्ञान हो जाने से नरक आदि भवों को देखकर दीक्षा के लिये माता-पिता के साथ ल बा स वाद है। जो अत्य त वैराग्यप्रद एव मार्मिक है, साथ ही एकाकीचर्या का मृगचर्या की उपमायुक्त वर्णन है।

(२०) महानिर्गंथीय– इसमें अनाथीमुनि और श्रेणिक राजा का स वाद है, जिसमें मुनि के दीक्षा लेने का कारण स्पष्ट किया है। साथ ही स यम लेने के बाद जिनाज्ञा विपरीत आचरण करने वाले को भी अनाथ कहा गया है अर्थात् वह भी आत्मा की दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकता है।

(२१) समुद्रपाल– वणिकपुत्र समुद्रपाल को एक चोर को वधस्थान पर ले जाते देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। दीक्षा लेकर आत्मकल्याण किया। कथानक के साथ आगे की गाथाओं में स यम आचारों का वर्णन भी किया गया है।

(२२) रथनेमि– इसमें अरिष्टनेमिनाथ भगवान का, राजीमति का एव रथनेमि का स क्षिप्त में जीवन चरित्र अ कित किया गया है। जिसमें बारात का वापिस लौटना, रथनेमि का स यम से विचलित होना और राजीमती के उपदेश से पुनः शीघ्र स भल जाने का वर्णन है। तीनों की मुक्ति तक का वर्णन है।

(२३) केशी गौतमीय– इसमें केशीस्वामी और गौतमस्वामी का श्रावस्तीनगरी में सम्मिलन एव प्रश्नचर्चा का विस्तृत वर्णन है। अत में केशीस्वामी अपने शिष्य समुदाय सहित भगवान महावीर के शासन में समर्पित हो जाते हैं।

(२४) प्रवचन माता– इसमें ५ समिति एव ३ गुप्ति का अर्थात् प्रमुख साध्वाचार का वर्णन है। इन्हें **अष्ट प्रवचन माता** स ज्ञा दी गई है।

(२५) जयघोष-विजयघोष– इसमें जयघोष मुनि का अपने भाई विजयघोष ब्राह्मण के साथ आहार नहीं देने के निमित्त से सैद्धा तिक स वाद वर्णित है। फिर विजयघोष की दीक्षा तथा दोनों की मुक्ति का वर्णन है।

(२६) समाचारी– इसमें श्रमणों की दस प्रकार की समाचारी का तथा दिवस रात्रि की क्रमिक आवश्यक चर्या का वर्णन है।

(२७) खलु कीय– इसमें गर्गाचार्य एव उनके अविनीत शिष्यों का स्पष्ट चित्रण दिया गया है।

(२८) मोक्षमार्ग– इसमें ज्ञान–दर्शन–चारित्र और तप धर्मरूप चतुर्विध मोक्षमार्ग का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

(२९) सम्यक् पराक्रम– इसमें ७३ प्रश्नोत्तर के माध्यम से मोक्षमार्ग में सम्यक् पुरुषार्थ का बोध दिया गया है।

(३०) तपोमार्ग– इसमें तप का स्वरूप बताकर उसके भेद–प्रभेदों का वर्णन कर तपाचरण की प्रेरणा दी गई है।

(३१) चरणविधि– इसमें स यम स ब धी १ से ३३ बोलों का स क्षिप्त कथन किया है जिसमें कई ज्ञेय है कई हेय है और कई उपादेय हैं।

(३२) प्रमाद स्थानीय– इस अध्ययन में ब्रह्मचर्य के प्रमाद स्थानों का निरूपण करके साधक को उनसे सुरक्षित रहने के लिये सावधान किया है। उसके बाद पाँच इन्द्रिय विषय और मनोविकारों का सा गोपाँग निरूपण करके उनसे मुक्त रहने की प्रेरणा की गई है।

(३३) कर्मप्रकृति– इसमें आठ कर्म प्रकृति स ब धी निरूपण भेदप्रभेद के साथ किया गया है तथा आठों कर्म की ब धस्थिति दर्शाई गई है।

(३४) लेश्या– इसमें छ लेश्या स ब धी विविध वर्णन है। जिसमें उनका वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श, परिणाम, स्थान, स्थिति, गति एव आयुब ध आदि का वर्णन है जो प्रज्ञापना सूत्र के १७वें पद में भी विस्तार से वर्णन है। विशेष में यहाँ ६ भाव लेश्याओं के लक्षण स्पष्ट किये हैं जिसमें उन उन लेश्या वाले की प्रकृति, स्वभाव एव गुण अवगुणों का यथार्थ स्पष्टीकरण किया गया है।

(३५) अणगार– इसमें मुनि धर्म के यथार्थ पालन की प्रेरणा करते हुए कुछ विशेष सावधानियाँ दर्शाई है।

(३६) जीवाजीव विभक्ति– इसमें प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद के अनुरूप जीव और अजीव के भेद–प्रभेद विस्तार से कहे हैं। अ त में प ड़ितमरण रूप स लेखना (स थारा) की विधि तपस्या के क्रम के साथ दर्शाई है।

इस प्रकार इन ३६ अध्ययनों में धर्मकथा, उपदेश, तत्त्व, सिद्धा त, वाद-विवाद, दीक्षा स ब धी स वाद, विनय, स यम, तप एव मोक्षमार्ग आदि विविध विषयों का समावेश किया गया है।

अध्ययन–१ : विनयश्रुत

प्रश्न–१ : विनीत–अविनीत की स क्षिप्त परिभाषा क्या है ?

उत्तर– गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला, गुरु के समीप रहने वाला, ईशारे व आकार से गुरु के भावों को समझने वाला विनीत शिष्य कहलाता है। इसके विपरीत गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करने वाला, गुरु के समीप नहीं रहने वाला, गुरु के प्रतिकूल कार्य करने वाला अविनीत शिष्य कहलाता है।

प्रश्न–२ : विनयशील बनने के प्रेरक दो दृष्टा त क्या है ?

उत्तर– (१) जिस तरह सड़े कान वाली कुत्ती सब जगह से निकाली जाती है वैसे अविनीत व्यक्ति सर्वत्र तिरस्कृत होता है। (२) जिस तरह भु ड़(सूअर) अच्छे खाने को (शालि के भोजन को) छोड़कर तुर त अशुचि की ग ध आते ही उधर खाने जाता है उसी तरह अज्ञानी व्यक्ति विनय के सदाचरण छोड़कर अविनय के असद् आचरण करता है। ऐसा जानकर मोक्षार्थी साधक को उस कुत्ती और भ ु ड़(सूअर) जैसा स्वय को नहीं बनाना चाहिये अर्थात् गुणस पन्न विनयव त बनकर सर्वत्र सन्मान का पात्र बनाना चाहिये।

प्रश्न–३ : गुणवान बनने के लिये क्या क्या शिक्षाएँ दी गई है ?

उत्तर– साधक शा त बने, वाचाल नहीं बने, ज्ञानियों के पास मोक्षार्थ वाला आगमज्ञान सीखे, निरर्थक विकथाएँ आदि छोड़े। अनुशासन को सादर स्वीकारे, क्षमाभाव रखे, गुस्सा न करे, सामान्य लोगों के साथ ह सी मजाक क्रीड़ा न करे, उग्र न बने, अधिक न बोले, समय पर अध्ययन एव ध्यान करे। कोई भी गलती भूल दोषसेवन हो जाय तो सत्य भाषण करे, ड़रे नहीं, छीपावे नहीं। गलियार बैल के समान न बने किंतु जातिव त अश्व जैसा ईशारे से समझने वाला बने।

अवगुणी कठोरभाषी शिष्य, मृदु गुरु को भी अशा त कर देता है और गुणवान शिष्य, उग्र स्वभावी गुरु को भी प्रसन्न रख सकता है,अतः अपने गुणों का अभ्यास बढ़ाना चाहिये। बिना पूछे बीच में नहीं बोलना, पूछने पर असत्य कभी न बोलना। क्रोध को निष्फल करना, प्रिय-अप्रिय सभी वचनों को आत्मा में समभाव से धारण कर लेना।

इस तरह आत्मदमन कर गुणवान बनने वाला इस भव,परभव में सच्चा सुखी बनता है। आत्मदमन करने में यह सोचना कि यहाँ ज्ञान से आत्मदमन कर लेना सहज श्रेष्ठ है अन्यथा भवभव में परवश होकर कर्मोदय से परवशपणे दमित होना पड़ता है अर्थात् जानवरों की, पशु पक्षियों की, नारकीयों की परवशता के दुःखों को याद करे। अतः स यम तप से आत्मदमन कर लेना सर्व अपेक्षा श्रेष्ठ है।उसे फिर दुर्गति में जाकर परदमित नहीं होना पड़ता है।गुरु, वड़ीलों के सामने या पीछे किसी भी प्रकार की आशातना अवहेलना निंदा न करना ।

प्रश्न–४ : आचार्य के साथ बैठने, उठने, बोलने का व्यवहार कैसा होना चाहिये ?

उत्तर– एकदम अड़कर नहीं बैठे, थोड़ा पीछे होकर बैठे, पीठ करके नहीं बैठे, घुटने मिलाकर न बैठे, पाँव पर पाँव रखे नहीं, पैर छाती के पास स कोच कर या ल बा करके गुरु के पास न बैठे। गुरु कृपाका क्षी मुनि गुरु के बुलाने पर चुप न रहे, तत्काल हाजिर हो जावे। एक बार या अनेक बार बुलाने पर भी कभी बैठा न रहे, आसन छोड़कर गुरु के पास आवे और उनकी बात ध्यान से सुने। शिष्य को कुछ पूछना हो तो गुरु के पास आकर उकड़ु आसन(विनम्रता युक्त आसन) से बैठे। फिर हाथ जोड़कर प्रश्न पूछे।

मुनि असत्य वचन का त्याग करे, निश्चयकारी भाषा भी न बोलें, अन्य भी भाषा के दोषों का त्याग करे, माया युक्त या कषाय युक्त वचन नहीं बोलें, सावद्य-पापप्रेरक या निरर्थक वचन भी न बोले और किसी के भी मर्मभेदी वचन नहीं बोलें।

प्रश्न–५ : ब्रह्मचर्य सुरक्षा का व्यवहारिक नियम क्या दर्शाया है ?

उत्तर– एका त स्थानों में या सामुहिक स्थानों में कहीं पर भी अकेला साधु अकेली स्त्री के पास खड़ा भी न रहे एव बातें भी नहीं करे। इससे देखने वालों पर खराब असर होता है और मुनि के स यम को भी खतरा रहता है, अतः इस सूत्रोक्त हितदर्शन का सदा विवेक रखना चाहिये ।

प्रश्न–६ : आचार्य के अनुशासन को किस तरह स्वीकार करना चाहिये ?

उत्तर– आचार्य के कठोर या मृदु सभी अनुशासन को हितकारी, प्रियकारी

माने। अहितकारी और द्वेषकारी मानने वाला अविनीत शिष्य होता है। विनीत और बुद्धिमान शिष्य गुरु वचनों में अपना हित ही सोचता है। उत्तम घोड़े का शिक्षक सदा प्रसन्न होता है वैसे ही विनीत प ड़ित शिष्य अपने वर्तन से गुरु को सदा प्रसन्न रखे। अविनीत का व्यवहार गुरु को भी खेदित करता है और खुद भी गुरु के शिक्षा वचन और अनुशासन को थप्पड़, मारपीट और गाली के समान समझ कर दुःखी होता है। विनीत शिष्य ऐसा नहीं सोचे, वह तो गुरु के व्यवहार को आत्मीय और प्यार युक्त समझे ।

विनीत शिष्य गुरु पर कभी गुस्सा नहीं करता है। उनके सामने अप्रिय नहीं बोलता है। अपितु गुरु कभी अशा त हो तो भी नम्रता से उन्हें शा त एव प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। गुरु के मनोगत भावों को और वचनों को, आशय को जान कर तदनुरूप ही आचरण स्वतः करता है।

प्रश्न–७ : गोचरी स ब धी विवेक इस अध्ययन में क्या बताया है ?

उत्तर– विनीत शिष्य अपनी गोचरी की मर्यादा का भी ध्यान रखे। वह जीमनवार वगेरे स्थलों में कहीं प क्ति में खड़ा न रहे। समय पर सामुदानिक अनेक घरों में गोचरी करे। दाता से भी उचित दूरी पर खड़ा रहे और अन्य याचक खड़े हो तो उनको उल्ल घन करके न जावे और उनके सामने भी खड़ा न रहे। अन्य भी अपने वेश की मर्यादाओं का, विधि नियमों का ध्यान रखे। आहार करने का स्थान भी जीवज तुओं से युक्त न हो, ऊपर से ढ़ का हो, वहाँ आहार करे। आहार करने में यतना रखे अर्थात् गिरावे नहीं और आहार की निंदा प्रश सा भी नहीं करे ।

प्रश्न–८ : विनय युक्त गुरु के चित्त की आराधना का क्या परिणाम होता है ?

उत्तर– विनीत शिष्य सर्वत्र पूजनीय, प्रश सनीय बनता है। प्राणियों के लिये पृथ्वी आश्रयभूत होती है वैसे ही विनीत शिष्य सर्व गुणों का आश्रयभूत बनता है। गुरु भी प्रसन्न होकर अनुपम श्रुत लाभ देते हैं। जिससे वह शिष्य स शय रहित बनता है। सदा गुरु के मनोनुकूल चलता है। महाव्रत और तप समाधि में आगे बढ़कर आत्मतेज से स पन्न

बनता है। वह विनय स पन्न शिष्य देवों, दानवों और मानवों से पूजित होकर सिद्ध गति या देवगति को प्राप्त करता है। इस प्रकार इस अध्ययन में विनय के विस्तृत रूप को लेकर आत्म विकास, स यम विकास के अनेक गुणों का निरूपण किया गया है। यहाँ मोक्ष के प्रति गति कराने वाले सभी गुण विनय में समाविष्ट किये गये है।

अध्ययन-२ : परीषह

प्रश्न-१ : परीषह क्या है ? और परीषह जीतना किसे समझना ?

उत्तर- तप-स यम का यथावत् पालन करते हुए जो मन, वचन, काया के प्रतिकूल प्रस ग उपस्थित होते हैं या स यम के प्रतिकूल प्रस ग उपस्थित होते हैं उन्हें परीषह कहा गया है। उस परिस्थिति को धैर्य उत्साह से पार कर लेना एव तप स यम की मर्यादा से विचलित नहीं होना, नियमों का भ ग नहीं करना, यह **परीषह जीतना** कहा जायेगा किंतु उस स कट की स्थिति में स यम तप की कोई मर्यादा-नियम भ ग करना, साधना से विचलित हो जाना, परीषह से हारना कहा जायेगा।

प्रश्न-२ : बावीस परीषह का स्वरूप क्या है और उनका एक-एक का अलग- अलग जीतना कैसे होता है ?

उत्तर- (१) क्षुधा परीषह- भूख से अत्य त व्याकुल हो जाना परीषह है और उनमें एषणा के नियमों को भ ग नहीं करना धैर्य से शुद्ध गवेषणा करना एव जितना जैसा मिले या नहीं मिले, स तुष्टि और समभावों में रहना; यह परीषह जीतना है। **(२) पिपासा परीषह**-प्यास से क ठ सूखे तो अदीनभाव से सहन करे। देह और आत्मा की भिन्नता का विचार करे। स यम मर्यादा भ ग न करे। **(३-४) शीत-उष्ण परीषह-** ठ ड़ी अधिक पड़ने पर अग्नि से तापने की या मर्यादा से अधिक वस्त्र की चाहना न करे। गर्मी अधिक होने पर प खा या स्नान की इच्छा न करे, यह परीषह जीतना है। **(५) द शमशक परीषह**-मच्छरों के त्रास होने पर घबरावे नहीं उन्हें स त्रासित करे नहीं।

(६) अचेल परीषह-अल्प वस्त्र, सामान्य वस्त्र या मलिन वस्त्र से दीनता अनुभव करे नहीं। **(७) अरति परीषह**-स यम पालन में कभी

स कट उपस्थित होने पर शोकाकुल बने नहीं। स कट में भी स यम में प्रसन्नचित्त रहे। **(८) स्त्री परीषह**-शील रक्षा के लिये स्त्री स ग का प्रस ग आने पर पूर्ण सावधान एव सतर्क रहे। स्त्री स ग को आत्मा के लिये कीचड़ के समान समझ कर पूर्ण विरक्त भावों में रहे। **(९) चर्या परीषह**-विहार के कष्टों को प्रसन्न चित्त से सहन करे एव कहीं किसी में भी अर्थात् गाँव, घर, व्यक्ति में ममत्व भाव नहीं करे। एकत्व भाव में लीन रहे। **(१०) शय्या परीषह**- विहार में मकान कम अनुकूल या प्रतिकूल मिले तो "एक रात्रि निकालना है" ऐसा सोचकर समभावों में रहे, विषमभाव नहीं आने दे ।

(११) निषद्या परीषह-भूतप्रेत आदि से युक्त मकान मिलने पर वहाँ निर्भय रहे, सहनशील बने। **(१२-१३) आक्रोश-वध परीषह**-कठोर शब्द या मारपीट के प्रस ग में मुनि समभाव रखे। मूर्खों के सदृश मूर्ख न बने अर्थात् भिक्षु कभी किसी पर क्रोध न करे, प्रतिकार न करे, शा त भावों में रहे और यह सोचे कि आत्मा तो अमर है किसी के मारने से आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ने वाला है। **(१४-१५) याचना-अलाभ परीषह**-दीर्घ जीवनकाल में स यम पालन हेतु भिक्षाचर्या करना आवश्यक है। अतः भिक्षा की याचना करने में और भिक्षा न मिलने में भिक्षु कभी दीनता या खेद न करे किंतु जिनाज्ञा समझ कर स यम और तप में रमण करे।

(१६) रोग परीषह-अशाता वेदनीय कर्म के उदय से कभी भी रोग-आत क आ जाय तो भिक्षु स यम सुरक्षा एव कर्म निर्जरा के लिये चिकित्सा की चाहना भी न करे। अदीनभाव से उपचार किये बिना सहन करे, यही सच्ची साधुता है। **(१७) तृणस्पर्श परीषह**-अल्प वस्त्र से या कभी निर्वस्त्र रहने से एव खुले पाँव चलने से तृण, का टे, पत्थर आदि से कष्ट होवे तो उसे सहर्ष समभाव से सहन करना। **(१८) जल्ल-मैल परीषह**-गर्मी से शरीर पर पसीना मैल आदि होने पर उसे अस्नान रूप जिनाज्ञा समझ कर सहन करे, स्नान की इच्छा न करे। जीवन पर्यंत मैल को शरीर पर धारण करे। **(१९) सत्कार पुरस्कार परीषह**-अत्यधिक मान सन्मान मिलने पर उसमें फूलना नहीं विरक्त रहना। अन्य का मान सन्मान देखकर चाहना करना नहीं। किंतु इसे सूक्ष्म शल्य और कीचड़ के समान समझना। **(२०) प्रज्ञा परीषह**-

मतिज्ञानावरणीय कर्म के उदय से बुद्धि की म दता हो तो धैर्य के साथ पुरुषार्थ रत रहे किंतु खेद न करे।

(२१) अज्ञान परीषह–कठिन तप स यमाचरण करते हुए भी विशिष्ट ज्ञान अवधि, मनःपर्यव, केवलज्ञान नहीं होवे तो भी खेद खिन्न न होवे किंतु धैर्यशील रहकर कर्मक्षय करने में लगा रहे। **(२२) दर्शन परीषह**– जिनेश्वर कथित जीव- अजीव, लोक-अलोक, परलोक तथा स यम धर्म आदि तत्त्वों पर अश्रद्धा के विचार उत्पन्न न होने दे, अगर हो तो उन्हें, द्रढ़ आस्था श्रद्धा के भावों को उपस्थित रखकर निष्फल कर दे। निग्रंथ प्रवचन रूप न्यायमार्ग से कभी स्खलित नहीं होवे। सदा मोक्षमार्ग में श्रद्धा के साथ आगे बढ़ता रहे।

इस प्रकार इन परीषहों के आने पर भिक्षु उपर कहे अनुसार सावधान एव सुरक्षित रहे। यही परीषहों को जीतना है। इन परीषहों से पराजित नहीं होने वाला मुनि शीघ्र आत्मकल्याण साध लेता है।

अध्ययन-३ : चतुर गीय

प्रश्न–१ : चार बोलों की दुर्लभता कौन सी कही है, उसमें मनुष्यत्व आदि कैसे दुर्लभ है ?

उत्तर– मोक्ष प्राप्ति के माध्यम रूप चार अ गों की दुर्लभता इस अध्ययन में बताई गई है। यथा– (१) मनुष्य भव की प्राप्ति (२) धर्म श्रवण (३) धर्म श्रद्धा (४) स यम में पुरुषार्थ।

(१) स सार में अनेक गतियाँ, योनियाँ, जातियाँ भवभ्रमण के स्थान है, जहाँ जीव कर्मों के अनुसार स पूर्ण विश्व में जन्मता मरता रहता है। कभी जीव देव, नारक, दानव; कभी कीट, पत गा, तिर्यंच; कभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि मानव बनता है। इस तरह जीव पूरे विश्व में भ्रमण करते रहता है। कर्मों की विशुद्धि होने पर ही कभी जीव को उत्तम मानव भव प्राप्त होता है। **(२)** मनुष्य भव प्राप्त हो भी जाय तो धर्म श्रवण का स योग महान पुण्य स योग होने पर प्राप्त होता है। **(३)** धर्म श्रवण मिल जाने पर भी मिथ्यात्व कर्म का उदय प्रबल होने से कईयों को श्रद्धा नहीं होती है। **(४)** कई जीवों को श्रद्धा हो जाने

पर आलस, प्रमाद, शारीरिक, पारिवारिक विध्नों के कारण धर्म में, स यम धर्म में पुरुषार्थ करने का अवसर नहीं मिलता है। महान पुण्यकर्मों का स योग होने पर ही जीव को स यम–तप रूप धर्म में पुरुषार्थ करने का चा स मिलता है। स यम का आराधन ही जीव को स सार से (कर्मों से) मुक्त होने में परम साधन है। जो यहाँ चौथा अ ग बताया गया है।

प्रश्न–२ : निर्वाण प्राप्त करने में सहज महत्त्वशील गुण क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन की गाथा–१२ में कहा गया है कि कपट प्रप च से रहित पूर्ण सरल स्वभावी आत्मा की शुद्धि होती है और उस शुद्ध आत्मा में ही धर्म ठहरता है। घृत से सिंचित अग्नि देदीप्यमान होती है वैसे ही निरभिमानी सरल आत्मा स यम-तप से परम निर्वाण को प्राप्त होती है। अतः स यमी आत्मा में भी **सरलता नम्रता गुण** परम आवश्यक है।

प्रश्न–३ : चारों बोलों की प्राप्ति के बाद जीव का आत्मविकास किस क्रम से होता है ?

उत्तर– स यम तप का सम्यग् आराधन करने वाले कई जीव स पूर्ण कर्म क्षय कर उसी भव से सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं और कई जीव कर्म अवशेष होने से महाऋद्धि स पन्न अस ख्य वर्षों की उम्र वाले वैमानिक देव बनते हैं। वहाँ का आयुष्य पूर्ण करके फिर मानव भव में उच्च कुल आदि सर्व सुख स योगो में उत्पन्न होते हैं और वहाँ भी यथासमय केवली प्ररुपित धर्म की प्राप्ति करते हैं। धर्म के चार अ गों को दुर्लभ जानकर स यम ग्रहण करते हैं और स यम–तप के द्वारा कर्मों को भस्म करके शाश्वत सिद्ध अवस्था प्राप्त करते हैं। अतः प्रत्येक मोक्षार्थी प्राणी को १. मनुष्य भव २. धर्मश्रवण ३.धर्म-श्रद्धान ४. तपस यम में पराक्रम, ये चार मोक्ष के दुर्लभ अ ग जानकर प्राप्त शुभ स योग अवसर में आलस्य, प्रमाद, मोह एव पुद्‌गलासक्ति को हटा कर स यम तप में अग्रसर होना चाहिये और मानव भव का अधिकतम लाभ प्राप्त कर लेना चाहिये।

अध्ययन-४ : अस स्कृत

प्रश्न–१ : इस अध्ययन की प्रथम गाथा में क्या बोध दिया है ?

उत्तर– गाथा के प्रथम शब्द **अस स्कृत** के आधार से अध्ययन का नाम

रखा गया है। इसमें कहा गया है कि आयुष्य समाप्त होने पर स स्कृत= स स्कारित=बढ़ाया नहीं जा सकता है और मानवजीवन में बुढ़ापा भी आने वाला होता है जो दु:खों से भरपूर होता है।ऐसे समय में प्रमादी हिंसक और अस यत लोग किसकी शरण में जायेंगे ? अर्थात् ऐसे समय में एक मात्र धर्माचरण ही जीव को शरणभूत होता है, अतः प्रमाद छोड़कर अवसर प्राप्त होते ही तपस यम, व्रत नियमों का आचरण कर लेना चाहिये।

प्रश्न-२ : धन उपार्जन के स ब ध में एव कर्म सिद्धा त को लेकर यहाँ किस तरह स देश-निर्देश किया गया है ?

उत्तर- प्राणी कुमति के प्रभाव से अनेक पाप कृत्य करके धन को अमृत समझ कर उसके उपार्जन में लगा रहता है किन्तु मृत्यु आने पर वह धन कुछ भी सहायक नहीं होता है और इकट्ठे किये कर्मों से नरक आदि दुर्गति से भी वह धन रक्षा नहीं कर सकता। जिन पारिवारिक लोगों के लिये प्राणी पाप का उपार्जन धन कमाने में करता है, उसका फल भोगने में वे ब धुगण भाग नहीं ब टा सकते। प्राणी को अपने इकट्ठे किये कर्म अकेले खुद को ही भुगतना पड़ता है। अतः ज्ञानी, धर्मी प्राणी को धन उपार्जन में भी विवेक बुद्धि अवश्य रखनी चाहिये। मात्र धन कमाने में ही बेभान नहीं हो जाना चाहिये।

प्रश्न-३ : भार ड़ पक्षी की उपमा क्यों दी गई है ?

उत्तर- जिस प्रकार हमारे सामने पक्षियों में कौवा आदि कई प्राणी बहुत सतर्क रहते है उससे भी अधिक भार ड़ पक्षी सावधान-सतर्क- अप्रमत्त होता है,अतः साधु को अप्रमत्त रहने में उसकी उपमा दी गई है। ग्र थों में इस पक्षी के दो मुख और एक शरीर होना कहा है। आगे और पीछे दोनों तरफ मुख होने से उसकी सावधानी और अप्रमत्तता विशिष्ट होती है।

प्रश्न-४ : इस अध्ययन में अन्य क्या शिक्षा-प्रेरणा दी गई है ?

उत्तर- (१) अपनी इच्छाओं स्वच्छ दताओं का त्याग कर भगवदाज्ञा में ही स पूर्ण जीवन को अप्रमत्त भाव से लगाने वाला शीघ्र मोक्ष जाता है। (२) पीछे धर्म करने का कथन करने वाले पहले और पीछे कभी भी धर्म नहीं कर पाते। क्यों कि अचानक मृत्यु के आ जाने पर बिना अभ्यास के धर्माचरण करना अशक्य हो जाता है। (३) स यम काल में कई लुभावने प्रस ग भी आते हैं और प्रतिकूल प्रस ग भी आते हैं उसमें सदा सावधान रहना चाहिये अर्थात् क्रोध-मान भी नहीं करना एव माया लोभ भी नहीं करना। (४) सम्यग् श्रद्धान के साथ स यमपालन करते हुए अ तिम श्वास तक गुणों की आराधना करनी चाहिये। अवगुणों से एव अवगुणी अधर्मी व्यक्तियों से दूर ही रहना चाहिये, उनकी स गति भी नहीं करना। क्यों कि वे रागद्वेष में फँसे अज्ञानी प्राणी दूसरों को भी रागद्वेष में जोड़ते हैं।

अध्ययन-५ : मरण

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- जन्म के साथ मृत्यु का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। जीवन जीना भी एक कला है तो मृत्यु भी उससे कम कला नहीं है। बाल मरण (अकाम मरण)और प ड़ित मरण(सकाम मरण) के भेद से दो प्रकार के मरण का इस अध्ययन में वर्णन है। बाल जीवों का अकाम मरण बारम्बार होता है और प ड़ित पुरुषों का उत्कृष्ट सकाम मरण एक बार ही होता है अर्थात् जघन्य मध्यम, आराधना में अधिकतम सात, आठ भव हो सकते हैं और उत्कृष्ट आराधना में जीव उसी भव में मुक्ति प्राप्त करता है।

प्रश्न-२ : बाल जीवों के अकाम मरण का स्वरूप कैसा दर्शाया गया है ?

उत्तर- विषयासक्त बाल जीव अनेक क्रूर कर्म करते हैं। कई परलोक को ही स्वीकार नहीं करते। "जो सब(स सारी)प्राणियों का हाल होगा वह हमारा भी हो जायेगा" ऐसा सोचकर कई प्राणी हिंसा, झूठ, छल-कपट, धूर्तता आदि स्वीकार करते हैं; सुरा और मा सादि सेवन करते हैं एव धन और स्त्रियों में ही गृद्ध बने रहते हैं।

ऐसे लोग केंचुए के **मुँह से और शरीर से** मिट्टी ग्रहण करने के समान ही रागद्वेष दोनों के माध्यम से कर्म स ग्रह करते हैं।

उक्त अज्ञानी प्राणी मृत्यु से आक्रान्त होने के समय नरक गति आदि के दु:खों का भान होने पर वैसे ही अनुताप करता है

जिस प्रकार अटवी में बैलगाड़ी की धुरी टूट जाने पर गाड़ीवान शोक करता है। धर्माचरण रहित अज्ञानी प्राणी हारे हुए जुआरी के समान मृत्यु समय में पश्चात्ताप रूप आर्तध्यान करता है।

प्रश्न-३ : प ड़ित मरण का स्वरूप किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- प ड़ित मरण भी विषमता के कारण न तो सभी भिक्षुओं को प्राप्त होता है और विभिन्नता के कारण सभी गृहस्थों को भी प्राप्त नहीं होता है। कई गृहस्थों का स यम जीवन अर्थात् धर्म साधना अनेक साधुओं से भी उच्च होती है। किन्तु सुसाधुओं का स यम तो सभी गृहस्थों से सर्वोच्च ही होता है। भिक्षाजीवी कई श्रमणों का आचरण और श्रद्धान शुद्ध नहीं होता है। इसीलिए उनका जटाधारण, मुण्ड़न, नग्नत्व, विभिन्न वेष भूषा, चर्म, वस्त्र एव अन्य उपकरण धारण करना उन्हें दुर्गति से मुक्त नहीं कर सकता है। अतः भिक्षु हो या गृहस्थ, यदि वह सुव्रती और सुशील है तो ही दिव्य गति को प्राप्त कर सकता है।

जो पौषध, व्रत, नियम एव सदाचरण का पालन करते हुए गृहस्थ अवस्था में रहते हैं अथवा जो इन्द्रिय विषयों से एव सम्पूर्ण पापों से स वृत होकर भिक्षा जीवन से धर्माराधना करते हैं। ऐसे श्रमणोपासक और श्रमण मृत्यु समय में स त्रस्त नहीं होते हैं किन्तु वे प ड़ितमरण को प्राप्त होते हैं। उनमें कई सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं और कई देव और मनुष्य भव के अन्तर से क्रमशः मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्रश्न-४ : अध्ययन के विषय का उपस हार किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- इन अकाम, सकाम दोनों मरणों के प्रतिफल की तुलना करके मुमुक्षुओं को दया धर्म स्वीकार करना चाहिए और देह के ममत्व का त्याग करके मृत्यु समय में भक्त प्रत्याख्यान आदि कोई भी प ड़ित मरण(स थारा) स्वीकार करना चाहिये।

अध्ययन-६ : क्षुल्लक निग्रंथ

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय किस प्रकार है ?

उत्तर- इस अध्ययन में निग्रंथ धर्म का, स यम ग्रहण करने की प्रेरणा

का स क्षिप्त वर्णन होने से इसका नाम **क्षुल्लक निग्रंथीय** रखा गया है। इस अध्ययन में ज्ञान और क्रिया का साम जस्य बता कर, क्रिया के आचरण का महत्त्व स्थापित किया गया है।

प्रश्न-२ : स यम ग्रहण और आराधन की प्रेरणा के भाव किस प्रकार है ?

उत्तर- स सार में दुःखों की वृद्धि अज्ञानी पुरुष ही करते हैं। अतः मुमुक्षु मानव जीवादि नव तत्त्वों का ज्ञान करके सत्य की गवेषणा करते हुए सभी प्राणियों से मैत्री का व्यवहार करे। पारिवारिक जनों में भी अस रक्षणभाव को जानकर स्नेह रहित बने। धन स पत्ति को भी च चल समझकर उसका त्याग करे। इस प्रकार ज्ञान युक्त आचरण को हृदय गम करके परिग्रह को नरक का प्रमुख कारण जानकर त्याग दे। और सभी प्राणियों को आत्मवत् समझकर सावद्य आचरण का सर्वथा त्याग कर निर्वद्य-निर्ग्रंथ के आचरण को स्वीकार करे। सावद्य कर्म और परिग्रह का त्यागी मुनि जीवन निर्वाह के लिये गृहस्थ द्वारा प्रदत्त एव एषणा समिति की विधि से प्राप्त आहार को ही स्वीकार करे तथा पक्षी की भाँति स ग्रह वृत्ति से मुक्त रहे।

प्रश्न-३ : ज्ञान एव क्रिया के साम जस्य हेतु क्या समझाया गया है?

उत्तर- जगत में कुछ लोग धर्म के नाम से कोरे ज्ञान को ही महत्त्व देते हैं। उसी से समकित और उसी से मुक्ति की कल्पना तथा प्ररूपण करते हैं तथा आचरण में त्याग तपस्या कुछ भी नहीं करते हैं। वे लोग पाप त्याग का आचरण भी कुछ नहीं करते तथा (जिनोक्त) देशविरति धर्म या सर्व विरत धर्म के स्वीकार करने में भी पुरुषार्थ नहीं करते। केवल आत्मा-आत्मा एव समकित-समकित की बातों से वचनवीर्य मात्र की पुष्टि करते हैं। वास्तव में, वे ज्ञानी एव जिनोक्त तत्त्व की श्रद्धा (देशश्रद्धा) करते हुए भी चारित्र मोहकर्म के उदय से दबे होते हैं। त्याग, तप, व्रत, नियम कुछ भी नहीं कर पाते। ऐसी कुछ अज्ञान दशा में रहते हुए भी अपने को उत्कृष्ट ज्ञानी, समकिती और आत्मार्थी मानते हैं पर तु यहाँ शास्त्रकार कहते है कि वास्तव में उन्हें कुछ भी आत्मोन्नति उपलब्ध नहीं होती है। पापाचरण और चारित्र

मोहोदय में फँसे रह कर वीतराग मार्ग की भी अधूरी श्रद्धा के कारण उनका वह वचनवीर्य उनकी दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकता ।

उनकी दशा ***"बिल्ली आवे तो उड़ जाना"*** इस प्रकार रटने वाले तोते के समान होती है। किंतु तोता नहीं उड़ने से बिल्ली की झपट में आ जाता है। वैसे ही वे अज्ञानी(अपूर्ण ज्ञानी) आचार की एव तपत्याग की उपेक्षा करते हुए समय पर कर्मों एव दुर्गति की झपट से बच नहीं पाते हैं। कदाचित् शुभ परिणामों के कारण दुर्गति न भी हो तो भी वे धर्म के आराधक नहीं हो सकते। आराधना तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव तप-स लेखना आदि के सुमेल से ही स भव है। आचरण निरपेक्ष अकेले ज्ञान से आराधना स भव नहीं है। वे जन्म मरण के चक्कर-स ताप से मुक्त नहीं हो सकते हैं। स्थूल दृष्टि से वे ज्ञान की बातें करने से हलुकर्मी दिखते हो तो भी चारित्र मोह के तीव्र उदय से भारी कर्मा होते हैं। क्योंकि स यमाचरण में त्याग नियमों में उनकी श्रद्धा भी नहीं होती है। ऐसे लोग ज्ञान मात्र से आत्मस तोष करते हुए अपनी आत्मा के साथ धोखा करते हैं एव धर्म की विराधक दशा को प्राप्त करते है। यों इस अध्ययन में स यम, त्याग मार्ग का उपदेश है तथापि अ तिम गाथाओं में ज्ञान-क्रिया के सुमेल की प्रेरणा है।

अध्ययन-७ : एलक(उरभ्रीय)

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय किस प्रकार है ?

उत्तर- इस अध्ययन में दृष्टा तों के माध्यम में धर्म प्रेरणा दी गई है । दृष्टा त मुख्यतः चार है- (१) भेड़ का बच्चा (२) का गिणी(एक पाई) (३) वणिक (४) राजा। मूल गाथाओं में ही इन दृष्टा तों को व्यवस्थित घटित करके समझाया है । प्रार भ में भेड़ के बच्चे का दृष्टा त है। भेड़ को आगमभाषा में **एलक** कहा गया है, अतः अध्ययन का नाम **एलक** रखा गया है ।

प्रश्न-२ : एलक(एड़क)=भेड़ के बच्चे के दृष्टा त से किस प्रकार समझाया गया है ?

उत्तर- मा साहारी मानव घर आ गन में भेड़ के बच्चे को पालते पोषते

है और कोई महेमान आने पर उस मेमने को मारकर पकाकर खाते-खिलाते है। उसी बात को शास्त्रकार ने इस प्रकार की है- (१) जिस प्रकार खाने पीने में मस्त बना एड़क-मेमना(भेड़ का बच्चा) मानो पाहुणे की इन्तजार करता है अर्थात् पाहुणे के आने पर उसके सिर को धड़ से अलग करके पका कर खाया जाता है। इसी प्रकार अधर्मिष्ट प्राणी नरक की चाहना करता है। (२) वह अज्ञानी प्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, ड़कैती करने वाला, मायाचारी, स्त्री विषय-ल पट, महार भी, महापरिग्रही और सुरा एव मा स का सेवन करने वाला, तोंदवाला एव पुष्ट शरीर वाला होकर नरक की आका क्षा करता है। (३) वह इच्छित भोगों का सेवन कर दुःख से एकत्रित की हुई सम्पूर्ण सामग्री एव धन को छोड़कर और अनेक स चित कर्मों को साथ लेकर जाता है एव वर्तमान को ही देखने वाला भविष्य का विचार न करने वाला वह भारी कर्मा बना हुआ प्राणी मरण समय आने पर खेद प्राप्त करता है।

प्रश्न-३ : का गिणी का दृष्टा त क्या है ? और उससे क्या बोध दिया गया है ?

उत्तर- एक व्यक्ति ने चोरों से सुरक्षा हेतु १००० सोनामोहरों को अटवी में गाड़ दिया था। चोरों का भय मिट जाने पर वह सोना मोहरों को निकाल कर लेकर चला। आगे जाने पर उसे याद आया कि उसके पास एक का गिणी थी वह सोनामोहर लेने में वहीं भूल गया। एक का गिणी(पाई) के लिये वह वापिस अटवी में गया और जाते समय १००० मोहरें जमीन में गाड़ कर गया । उसे गाड़ते समय किसी ने देख लिया, उसके जाने पर हजार मोहरें देखने वाला निकाल कर ले गया। का गिणी लेकर वापिस आने पर उसकी १००० मोहरें नहीं मिली। एक पाई के लिये हजार मोहरें गुमाने का बहुत अफसोस करने लगा। गया धन वापिस हाथ नहीं आया। यहाँ शास्त्रकार समझाते हैं कि व्यक्ति तुच्छ मानवीय सुखों के पीछे, धर्म आराधन से प्राप्त होने वाले दैविक और मोक्ष सुखों को गुमा देता है, व चित रह जाता है। वह का गिणी के लिये हजार मोहरे गुमाने जैसी मूर्खता है। अतः मानवीय क्षणिक अल्प सुखों की लालसा में देवों को भी दुर्लभ ऐसा धर्माराधन करने योग्य मानव भव को नहीं गुमाना चाहिये।

प्रश्न-४ : राजा के दृष्टा त से क्या घटित किया गया है ?

उत्तर– एक राजा अत्य त बिमार था उसे एक वैद्य ने आम खाने से मना किया। राजा की बीमारी शा त हुई। वैद्य ने सदा के लिये आम खाने का मना कर दिया। एक बार घूमते हुए राजा अपने काफिले के साथ आम्रवन में विश्राम कर रहा था। उससे रहा न गया। म त्री आदि के मना करने पर भी राजा ने आम खाये। उसे जीवन से हाथ धोना पड़ा । यहाँ शास्त्रकार कहते है कि अपथ्य(आम) खाकर राजा ने राज्य सुख एव मानवीय सुख सभी ग वा दिये। उसी तरह अल्प मानवीय सुखों में आसक्त होकर प्राणी धर्म के आचरण से दूर रहता है, वह दैविक एव मोक्ष के स पूर्ण आन द को हार जाता है, जिस प्रकार राजा आम के पीछे सब कुछ हार गया। इसलिये मुमुक्षु प्राणियों को हानिलाभ को तौल कर मानव भव को पाकर धर्माचरण से उसे सार्थक करना चाहिये।

प्रश्न–५ : वणिकों के दृष्टा त से क्या समझाया गया है ?

उत्तर– तीन वणिक धन कमाने देशा तर गये। एक ने खूब लाभ कमाया। दूसरे ने कमाया जितना खर्च कर दिया, मूल पू जी कायम रखी। तीसरा मूल पू जी भी खो बैठा। इसे ही धर्म की अपेक्षा समझाया गया है कि जो प्रथम वणिक के समान मानव भव रूपी पू जी को व्रताचरण आदि से बढ़ाकर देव भव या मोक्ष का लाभ प्राप्त करता है वह सुखी हो जाता है। जो सद्गुणों के कारण पुनः मानव भव को प्राप्त करता है वह दूसरे वणिक के समान मूल धन रख पाने वाला है। जो दुर्गुणी बन कर नरक तिर्यंच गति को प्राप्त करता है वह तीसरे वणिक के समान मूल पू जी को भी खोने वाला है । वह सदा हारा हुआ है। उन गतियों से उसका बाहर निकलना दीर्घकाल तक भी दुर्लभ हो जाता है।

इन दृष्टा तों के उपरा त भी शास्त्रकार ने समझाया है कि मनुष्य का आयुष्य और भोग सुख देव की तुलना में अत्यल्प है। जलबि दु और समुद्र जितना दोनों में अ तर है। यह जान कर जो मानुषिक भोगसुखों से निवृत्त होकर आत्मसाधना कर लेता है वह उत्तम देवगति को प्राप्त करता है और फिर मानव भव को प्राप्त कर मोक्ष के अणुत्तर सुखों का भागी बनता है। पर तु जो यह सब कुछ जान–सुनकर भी भोगों से निवृत्त नहीं होता है उसका मानवभव प्राप्त करने का प्रयोजन नष्ट हो जाता है। वह मानवभव प्राप्त करके भी पथभ्रष्ट हो जाता है।

सार यह है कि बाल अज्ञानी जीव धर्म छोड़ कर अधर्म स्वीकार करते हैं वे दुर्गतिगामी बनते है और धीर–वीर पुरुष अधर्म को छोड़कर धर्म स्वीकार कर सद्गति के भागी बनते हैं वे मानवभव पाने का प्रयोजन सफल कर लेते हैं।

अध्ययन–८ : कापिलीय

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का विषय परिचय क्या है ?

उत्तर– इसमें दुर्गति एव दुःखों से मुक्ति के उपदेश वचन सूचित किये गये है, यथा– (१) स्नेह त्याग का (२) भोगों से अलिप्त रहने का (३) अहिंसक बनने का (४) रसाशक्ति त्याग (५) निमित्त ज्योतिष विद्याकथन त्याग (६) लोभ से सावधानी एव (७) स्त्री स ग त्याग।

प्रश्न–२ : ये उपदेश वचन किनसे स ब धित है ?

उत्तर– इस अध्ययन की अ तिम गाथा से ज्ञात होता है कि ये शिक्षा वचन कपिल केवली के द्वारा कहे गये है जिनका स कलन सूत्रकार श्री गणधर प्रभु ने किया है। अध्ययन का प्रार भ प्रश्न के माध्यम से किया गया है, उसी के उत्तर में पूरे अध्ययन के शिक्षा विषय कहे गये हैं।

प्रश्न–३ : उपदेश वचनों में क्या क्या समझाया गया है ?

उत्तर– (१) स पूर्ण स्नेहों का त्याग करने वाला दुःख से मुक्त हो जाता है। वह स्नेह इन्द्रिय विषयों का हो, धन परिवार का हो, शरीर का हो, यशकीर्ति का हो; सभी स्नेह त्याज्य ही है। **(२)** अधैर्यशील पुरुषों द्वारा काम भोग दुस्त्याज्य है। वे भोगासक्त प्राणी श्लेष्म में मक्खी की तरह स सार में फँस कर दुःखी होते हैं और हाथ कुछ नहीं आता है पर तु जैसे वणिक धन कमाने हेतु समुद्र को भी पार कर लेते हैं वैसे सुव्रती श्रमण दुष्त्याज्य भोग स सार को पार कर जाते हैं। **(३)** कई साधक अपने को श्रमण मानते हैं किन्तु प्राणियों को और प्राणिवध को पूर्ण रूप से जानते समझते नहीं है। वे दुर्गति प्राप्त करते है क्यों कि प्राणीवध का अनुमोदन करने वाला भी मुक्ति से दूर रहता है। अतः स पूर्ण जगत के चराचर प्राणियों का मनवचनकाया से हनन नहीं करना चाहिये। स पूर्ण अहिंसा पालन हेतु भिक्षु शुद्ध एषणाविधि से आहार प्राप्त

करता है। वह सावद्य भिक्षा आधाकर्म आदि भी ग्रहण नहीं करता। (४) निर्दोष प्राप्त भिक्षा में भी भिक्षु रसाशक्त न बने किन्तु जीवन निर्वाह के निये नीरस, शीतल, रूक्ष, सार हीन पदार्थों का सेवन करे। रसाशक्त होने से निर्दोष भिक्षा भी सदोष बन जाती है। (५) साधु किसी भी हेतु से लक्षण, स्वप्न आदि का फल बतावे नहीं, पापशास्त्रों का प्रयोग करे नहीं। (६) स सार के प्राणियों के ज्यों ज्यों लाभ बढ़ता है त्यों-त्यों लोभ आगे से आगे बढ़ता रहता है। इच्छाएँ आकाश के समान अन त है।अत: इच्छाओं को सदा निय त्रित करना चाहिये। यहाँ कपिल ब्राह्मण के जीवन की एक घटना स कलित है। वह दो मासा सोना राजा से ईनाम लेने को रात्रि में निकला था। सिपाही ने चोर समझ कर पकड़ लिया। राजा के सामने हाजिर किया गया। सत्य हकीकत कहने पर राजा ने प्रसन्न होकर इच्छित धन मा गने को कहा तो विचार करते करते लोभ बढ़ा और सारा राज्य मा गने का स कल्प हुआ। फिर कपिल स भल गया और इच्छाओं पर अ कुश लगा कर दीक्षित बना ।

(७) छद्मस्थ साधक को सदा स्त्री से भय बना रहता है। अतः भिक्षु को स्त्री सहवास एव अति परिचय का सदा वर्जन करना चाहिये ।यहाँ गाथा में साधक को साधना में सावधानी हेतु स्त्री को राक्षसी रूप में मानने की प्रेरणा दी गई है। सार यह है कि स्वय के मोहोदय प्रबल होने पर स्त्री स पर्क साधक को साधना से च्युत कर सकता है, अत: सावधानी आवश्यक है। कपिल मुनि अपने यौवनकाल में एक स्त्री के च गुल में फँस गये थे उसी की स्मृति में यह विशेष उपदेश वचन कहे गये हैं।

प्रश्न-४ : कपिल मुनि का यह उपदेश किसके लिये हुआ है ?

उत्तर- आगम अध्ययन का यह वर्णन देखते हुए सामान्यतः प्रत्येक मुमुक्षु साधक के लिये ये हितकारी शिक्षा वचन है। इस सूत्र के व्याख्याकार ने बताया है कि यह उपदेश-५०० चोरों को दिया गया था। वास्तव में कपिल मुनि ने ५०० चोरों को उपदेश देकर धर्म में जोड़ा होगा, वह उपदेश उनके योग्य होगा पर तु प्रस्तुत अध्ययन गत उपदेश के समस्त विषय ऐसे नहीं है। वे वचन सामान्य रूप से समस्त साधकों मुमुक्षुओं को लक्षित कर सूत्रकारों ने स कलित किये हैं। अ तिम गाथा में कपिल मुनि का स ब ध जोड़ा गया है पर तु चोरों का जिक्र यहाँ मूलपाठ में

नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र गणधर रचित है यह बात पहले प्रार भ के प्रश्न में समझा दी गई है।

अध्ययन-९ : नमिराजर्षि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- सती मदनरेखा(मयणरया)के पुत्र नमिकुमार स यम स्वीकार करने के लिये तैयार हुए थे। तब उनके वैराग्य की परीक्षा ब्राह्मण का रूप धारण कर स्वय शक्रेन्द्र ने की थी। नमि राजर्षि ने इन्द्र को यथार्थ उत्तर देकर स तुष्ट किया। दोनों का स वाद इस पूरे अध्ययन में १० प्रश्नोत्तरों के रूप में दिया गया है।

प्रश्न-२ : दस प्रश्न कौन कौन से किये गये ?

उत्तर- दीक्षा स्थल पर दीक्षा पच्चक्खाण के पूर्व ये प्रश्न किये गये थे, यथा- (१) मिथिलानगरी में कोलाहल क्यों हो रहा है ? (२) जलते हुए अ तःपुर की तरफ क्यों नहीं देखते हो ? (३) नगर को सुरक्षित अजेय बनाकर फिर दीक्षा लेना। (४) जलमहल आदि निर्माण कराकर फिर दीक्षा लेना। (५) चोर ड़ाकुओं से नगर की रक्षा कर फिर दिक्षित होना। (६) उद् ड़ राजाओं को वश में करके फिर दीक्षित होना। (७) यज्ञ, दान, ब्राह्मण भोजन-दक्षिणा देकर फिर दीक्षा लेना। (८) घोर गृहस्थाश्रम है उसी में रहकर व्रताराधन करना । (९) सोने चा दी से कोष-भ ड़ार भराकर फिर दीक्षित होना। (१०) वर्तमान प्राप्त सुखों को छोड़कर भावी सुखों की कामना करना योग्य नहीं है। नहीं मिलने पर पश्चात्ताप होगा ।

प्रश्न-३ : इन प्रश्नों के उत्तर नमि राजर्षि ने क्या दिये ?

उत्तर- (१) नगरी के लोग अपने स्वार्थ के कारण रोते हैं । (२) जहाँ मेरा कुछ नहीं है वहाँ भवनों के जलने से मेरा कोई नुकशान नहीं है। (३) श्रद्धा तप-स यम आदि से आत्मा को कर्मशत्रुओं से अजेय बनाया जायेगा। (४) महल एव घर, स सार भ्रमण के बीच नहीं बनाकर शाश्वत घर मोक्षस्थान को प्राप्त करना श्रेयस्कर है। (५) राजनीति में अन्याय-न्याय हो जाता है, चोर ड़ाकु में झूठे बच जाते है, सच्चे द ड़ित हो जाते है।

अतः यह दोषयुक्त है ।(६) राजाओं को वश में करने की अपेक्षा एक आत्मा को ही वश में करना श्रेष्ठ है। युद्ध भी आत्म दुर्गुणों के साथ करना। बाह्य स ग्राम से कोई लाभ आत्मा को नहीं होता है। आत्म-विजय से ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। (७) प्रति मास १० लाख गायों के दान की अपेक्षा कुछ दान नहीं करते हुए स यम साधना करना श्रेष्ठ है। (८) घोर या कठिन जीवन निर्वाण या मोक्ष का एका त हेतु नहीं है किंतु ज्ञान और विवेक के साथ स यम आचरण मुक्ति का सही हेतु है। (९) सोने चा दी के पहाड़ खड़े कर देने पर भी स तोष एव त्याग के बिना इच्छाएँ पूर्ण होने वाली नहीं है। अतः इच्छाएँ छोड़कर स यमाचरण करना श्रेष्ठ है। (१०) आगामी भोगों की चाहना से स यम साधना नहीं की जाती है। भोगों की चाहना मात्र भी दुर्गति दायक होती है। अतः मोक्ष हेतु स यम साधना करने में पश्चात्ताप या स कल्प विकल्प में दुःखी होने की बात ही नहीं है।

प्रश्न-४ : इस अध्ययन का उपस हार किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- नमि राजर्षि के उत्तरों से स तुष्ट हुए शक्रेन्द्र ने ब्राह्मण के रूप का त्याग किया और अपने असली रूप से उपस्थित होकर नमि राजर्षि के वैराग्य की, गुणों की, प्रश सा एव स्तुति की और भक्ति पूर्वक व दन नमस्कार करके आकाशमार्ग से देवलोक में चला गया। नमि राजर्षि ने स यम अ गीकार कर आत्म कल्याण किया। प्रस्तुत अध्ययन में भाव दीक्षित की अपेक्षा दीक्षा पच्चक्खाण के पूर्व भी शास्त्रकार ने नमि कुमार को नमि राजर्षि कहा है। तथा इन्द्र के द्वारा तो उन्हें राजा एव क्षत्रिय ही कहा गया है।

अध्ययन-१० : द्रुमपत्रक

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का स क्षिप्त परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें मनुष्य जीवन की अस्थिरता, च चलता, दुर्लभता बताकर जीवन में धर्माचरण कर पाना भी दुर्लभ कहा है। अतः सभी सु दर स योग पाकर मुमुक्ष को धर्म पुरुषार्थ करने में तनिक भी आलस्य प्रमाद नहीं करने की प्रेरणा प्रत्येक गाथा में की गई है। अवस्था विशेष से इन्द्रियों की शक्ति में क्षीणता, रोगात क से शरीर की अनित्यता विनश्वरता का

वर्णन किया गया है। **"गौतम!"** स बोधन पूर्वक प्रत्येक गाथा होते हुए भी हकीकत में समस्त मुमुक्षु प्राणियों को स बोधन कर प्रमाद नहीं करने की प्रेरणा दी गई है।

प्रश्न-२ : जीवन की क्षणभ गुरता किन दृष्टा तों से समझाई है ?

उत्तर- यहाँ दो दृष्टा त दिये गये है- (१) वृक्ष का पत्ता जो पीला पड़ गया है वह कब गिर कर पड़ सकता है, यह कोई निश्चित नहीं है। उसी प्रकार मनुष्य का आयुष्य कभी भी क्षय को प्राप्त हो सकता है। प्रथम गाथा में कहे इसी प्रथम दृष्टा त के आधार से अध्ययन का नाम "द्रुमपत्रक" रखा गया है। (२) घास के अग्र भाग में रही और लटकती ओस की बिन्दु हवा के झटके से कभी भी गिर सकती है। उसी प्रकार मनुष्य का आयुष्य कभी भी नष्ट हो सकता है। ऐसा क्षणभ गुर जीवन होते हुए भी वह अनेक स कट की घड़ियों से परिपूर्ण है। अतः प्राप्त सुस योग में धर्म पुरुषार्थ कर लेना चाहिये। उसमें क्षण मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

प्रश्न-३ : मनुष्य भव दुर्लभ कैसे कहा गया है ?

उत्तर- स सार में जीव के भव भ्रमण करने के अनेक स्थान है। उनमें से पृथ्वीकाय में जीव चला जाय तो वहाँ लगातार उत्कृष्ट अस ख्य भव कर सकता है। उसी तरह अप्काय(पानी)में, तेउकाय(अग्नि)में और वायुकाय में जीव चला जाय तो वहाँ भी उत्कृष्ट अस ख्य भव अर्थात् अस ख्य काल तक लगातार जन्ममरण कर सकता है। यदि वनस्पतिकाय में चला गया तो वहाँ उत्कृष्ट अन तभव-अन तकाल तक जीव जन्म-मरण कर सकता है। इसी तरह तीन विकलेन्द्रिय-बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय में हजारों (स ख्याता)भव और तिर्यंच प चेन्द्रिय में ७-८ भव एव नरक देव में एक-एक भव जन्ममरण करते हुए स सार चक्र में घूमते हुए जीव को कभी पुण्य स योग से मानव भव प्राप्त होता है। उसमें भी फिर आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, परिपूर्ण इन्द्रिय, निरोग शरीर, धर्मश्रवण और धर्म में प्रतीति का मिलना उत्तरोत्तर दुर्लभ होता है क्यों कि मानवभव पाकर भी कईयों को अनार्य क्षेत्र, चोर ड़ाकू, कसाई, मा साहारी कुल, अ धापन, बहेरापन आदि हीना ग, कुष्टरोग आदि युक्त शरीर प्राप्त हो जाता है। कुतीर्थी(अशुद्ध धर्म प्रणेताओं)की

स गति एव विपरीत मान्यता की बुद्धि तथा मिथ्यात्व की प्राप्ति हो जाती है जिससे वे सही जिनधर्म को समझ भी नहीं पाते ।

अतः ज्ञानी कहते है कि हे मुमुक्षु ! सभी सु दर स योगों से युक्त मानव भव प्राप्त हो जाने पर धर्म पुरुषार्थ में तनिक भी आलस्य नहीं करना चाहिये।

प्रश्न-४ : अन्य शिक्षा प्रेरणाएँ इस अध्ययन में क्या क्या कही गई है ?

उत्तर- जीवन बीतता जाता है, अवस्थाएँ बदलती जाती है जिससे इन्द्रियों की शक्ति, कान, आ ख आदि पाँचों इन्द्रिय तथा स पूर्ण शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है, बुढ़ापा आने पर कितनी ही परवशता जीव को बढ़ जाती है और रोगात क कभी भी शरीर को नष्ट भ्रष्ट कर सकता है, अतः हे गौतम! (मुमुक्षु प्राणी) क्षणमात्र भी प्रमाद में समय नहीं खोना चाहिये। धन परिवार के ममत्व ब धन का त्याग कर स यम का स्वीकार यथासमय कर लेना चाहिये। स सार में अनेक मार्ग कुतीर्थ आदि क टका-कीर्ण है। जिनमार्ग मोक्षमार्ग सुविशाल एव विशुद्ध है। इसे प्राप्त कर धैर्य के साथ पार पहुँचने में पुरुषार्थ रत रहना चाहिये। निर्बल भारवाहक धैर्य खोकर मार्ग में भार को छोड़ देता है तो उसे पीछे पछताना पड़ता है। अतः धैर्य के साथ प्राप्त स यम-तप में आगे से आगे बढ़ने में प्रमाद नहीं करना चाहिये। स यम, स सार समुद्र का किनारा है। यहाँ पहुँचकर रुकना भी नहीं, शीघ्र स सार को पार कर लेना चाहिये ।

अध्ययन-११ : बहुश्रुत पूजा

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें बहुश्रुतज्ञानी श्रमण का महात्म्य वर्णित है। ज्ञानी श्रमण बनने वाले को विनय स पन्न होना जरूरी है। अतः अध्ययन के प्रार भ में विनीत-अविनीत के लक्षण एव ज्ञानप्राप्ति की योग्यता आदि सूचित किये गये हैं।

प्रश्न-२ : विनीत-अविनीत और ज्ञान प्राप्ति के अयोग्य योग्य किसे कहा गया है ?

उत्तर- (१) विद्याहीन, अभिमानी, सरस आहार के लोलुपी, अजितेन्द्रिय एव अस बद्ध प्रलापी या अतिभाषी ये अविनीत होते हैं । (२) मानी, क्रोधी, प्रमादी(अनेक अन्य कार्यों में, इच्छापूर्ति में व्यस्त) रोगी और आलसी ये शिक्षा-श्रुत अध्ययन लाभ नहीं कर सकते। (३) १. हास्य न करने वाला २. इन्द्रिय मन पर काबू करने वाला ३. मार्मिक वचन न बोलने वाला ४. सदाचारी ५. दुराचरणों का त्यागी ६. रसलोलुपता रहित ७. क्रोध स्वभाव रहित एव ८. सत्यपरायण हो वह शिक्षा (अध्ययन) प्राप्ति के योग्य होता है। (४) जो बार-बार क्रोध करता है, क्रोध भाव को लम्बे समय तक टिकाये रखता है, मित्रों को ठुकराता है, श्रुत का घमण्ड करता है, अत्यल्प भूल होने पर ही किसी का तिरस्कार कर देता है, मित्रों पर कुपित होता है, मित्र की भी पीठ पीछे निन्दा करता है, जो द्रोही है, अस विभागी और अप्रीतिकर स्वभाव वाला है, वह अविनीत कहा जाता है एव वह निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता है। (५) इन अवगुणों को दूर कर गुणों को धारण करने वाला एव नम्रवृत्ति, अचपल अमायावी अकुतूहली, लड़ाई झगड़ों से दूर रहने वाला, कुलीन, लज्जावान, बुद्धिमान मुनि सुविनीत कहा जाता है। (६) गुरुकुल वास में रहकर शिष्य को उक्त गुण सम्पन्न बनना चाहिये। प्रिय कर और प्रियवक्ता शिष्य श्रुत का विशाल अध्ययन कर बहुश्रुत हो जाता है।

प्रश्न-३ : बहुश्रुत ज्ञानी मुनि के लिये कौन कौन सी उपमाएँ दर्शाई गई है ?

उत्तर- इस अध्ययन में बताया गया है कि बहुश्रुत ज्ञानी मुनि स घ में अत्यधिक शोभायमान होते है उनके लिये कही गई विभिन्न उपमाएँ इस प्रकार है- (१) वे श ख में रखे गये दूध के समान शोभायमान होते हैं। (२) उत्तम जाति के अश्व के समान मुनियों में श्रेष्ठ होते हैं। (३) पराक्रमी योद्धा के समान अजेय होते हैं। (४) हथनियों से घिरे हुए बलवान हाथी के समान अपराजित होते हैं। (५) तीक्ष्ण सींग एव पुष्ट स्क ध वाले बैल के अपने यूथ में सुशोभित होने के समान वे साधु समुदाय में अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और ज्ञान से पुष्ट होकर सुशोभित होते हैं। (६) उसी प्रकार पशुओं में निर्भय सि ह के समान। (७) अबाधित बल में वासुदेव के समान। (८) राजेश्वर्य में चक्रवर्ती के समान (९)

देवताओं में शक्रेन्द्र के समान। (१०) अज्ञाना धकार नाश करने में सूर्य के समान। (११) ताराओं में प्रधान परिपूर्ण चन्द्र के समान। (१२) परिपूर्ण कोठारों (भ डारों) के समान। (१३) श्रेष्ठ जम्बू सुदर्शन वृक्ष के समान। (१४) नदियों में सीता नदी(सबसे विशाल नदी) के समान विशाल। (१५) पर्वत में ऊँचे म दर मेरु पर्वत के समान। (१६) समुद्रों में स्वय भूरमण समुद्र के समान विशाल एव ग भीर होते हैं।

ऐसे श्रेष्ठ गुण एव उपमाओं से स पन्न बहुश्रुत भगवान स घ में श्रुत प्रदानकर्ता, श का-समाधान कर्ता एव चर्चावार्ता में सर्वत्र अजेय होते हैं। अतः मोक्ष के इच्छुक स यम पथिक प्रत्येक साधक को लक्ष्य रखकर आगम अनुसार यथाक्रम से श्रुत अध्ययन करने में पुरुषार्थशील होना चाहिये। प्राप्त श्रुत से अहं का पोषण आदि दुरुपयोग नहीं करके स्व-पर का कल्याण करना चाहिये।

अध्ययन-१२ : हरिकेशी मुनि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- अध्ययन की प्रथम गाथा के अनुसार इसमें चा ड़ाल कुलोत्पन्न उत्तमोत्तम गुणों के धारक हरिकेशीबल नामक जितेन्द्रिय महा तपस्वी मुनि का वर्णन है। जो भगवान महावीर स्वामी के शासन में मोक्ष गये।

प्रश्न-२ : हरिजन चा ड़ाल आदि हीनकुलोत्पन्न को दीक्षा दी जा सकती है ?

उत्तर- सामान्य साधु इनको दीक्षा नहीं दे सकते। जाति स्मरण ज्ञान आदि के स योग से ये स्वय ही दीक्षा ले सकते हैं अथवा आगम विहारी आदि विशिष्ट ज्ञानी पुरुष इन्हें दीक्षा दे सकते हैं। फिर वे अकेले विचरण कर सकते हैं। कर्म क्षय कर मोक्ष भी जा सकते हैं अर्थात् जिन शासन में मोक्ष प्राप्त करने में जातिवाद बाधक नहीं है। मोक्ष के द्वार सदा सभी के लिये खुले हैं। स सार व्यवहार का विवेक अवश्य रखा जाता है। अतः उन्हें समूह में नहीं रखा जाता है, वे स्वत त्र अकेले विचरण करते हुए कभी श्रमणों के पास आ जा सकते हैं। मुनि दर्शन को कोई भी मानव आ सकता है और प्रवचन भी सुन सकता है।

प्रश्न-३ : यक्ष का और मुनि का क्या स ब ध था ? उसे किसी ने रखा था ?

उत्तर- व्य तर देव कुछ कुतूहली और कुछ भद्रिक परिणामी भावुक भी होते हैं। इसी कारण कभी स योग मिलने पर वह यक्ष स्वय मुनि का भक्त बनकर सेवा में रहने लगा था।

प्रश्न-४ : भिक्षा देना या नहीं देना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है, वहाँ जैन मुनि के विवाद की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर- यक्ष को मुनि ने बुलाया भी नहीं था। उसने स्वतः गुप्त रहकर बोलना शुरु कर दिया था। मुनि का शरीर यक्षाविष्ट हो चुका था, अतः उनका वहाँ से चले जाना या नहीं बोलना स्ववश नहीं था अर्थात् वह सब प्रक्रिया जवाब-सवाल यक्ष का ही था। यक्ष ने भी बहुत सालीनता से भिक्षा देने का निवेदन और मुनि का परिचय दिया था।

प्रश्न-५ : तो फिर विवाद बढ़कर मामला गर्मी में क्यों आया?

उत्तर- दान के योग्य उत्तम क्षेत्र एका त रूप से ब्राह्मण ही है ऐसा ब्राह्मणों के कहने पर यक्षने कहा- तुमने वेद तो पढ़े है परन्तु उसका अर्थ मर्म नहीं समझते ! जो हिंसादि क्रोधादि पापों के त्यागी होते हैं वे सच्चे ब्राह्मण होते हैं, तुम तो ज्ञान का मात्र बोझा ढ़ोते हो। इससे ब्राह्मणों को गुस्सा आने लगा और स्पष्ट मना कर दिया। तब भी यक्ष ने मुनि के गुण बताकर कहा कि तुम्हें यज्ञ का क्या फल होगा जो मुझे भिक्षा नहीं दोगे। दोनों तरफ का दुराग्रह हो जाने से मामला उग्र हो गया। इसमें जैन मुनि का कोई दोष नहीं है। यक्षाविष्ट व्यक्ति परवश हो जाता है। मुनि के बोलने का यक्ष ने कोई अवसर ही नहीं दिया।

प्रश्न-६ : भद्रा का मुनि से पूर्व परिचय क्या था ?

उत्तर- भद्रा वर्तमान में पुरोहित की पत्नि थी। पूर्व में कौशल देश के राजा की राजकुमारी थी। बाल्यकाल में एक बार म दिर में सहेलियों के साथ खेल रही थी। वहाँ पर भी हरिकेशी मुनि एक तरफ ध्यान में खड़े थे। खेल ही खेल में उसने मुनि पर थूक दिया था। तब भी यक्ष ने उसे द ड़ित किया था। राजा ने आकर मुनि से क्षमायाचना की, तब यक्ष ने उसे ठीक किया था। फिर राजा ने पुरोहित(ब्राह्मण) को कन्या दान में दी थी। इसलिये यहाँ भद्रा ने मुनि को पहिचान लिया और बालकों

को उपद्रव करने से रोकने लगी थी और मुनि के गुणों का वर्णन किया तथा यह भी बताया कि राजा ने मुझे पहले मुनि को दान में दी थी किन्तु मुनि ने मुझे स्वीकार नहीं किया था।

प्रश्न-७ : भद्रा ने बालकों को रोकते हुए कौन सी उपमाओं का कथन किया था ?

उत्तर- बालको को उपाल भ देते हुए उसने कहा कि जो तुम मुनि की अवहेलना कर रहे हो वह तुम पर्वत को नाखुनों से खोदने के समान, लोहे को दा तो से चबाने के समान, अग्नि को पाँवों से कुचलने के समान मूर्खता कर रहे हो। भिक्षाकाल में भिक्षु का अपमान करना पत ग सेना का अग्नि में गिर कर भस्म होने के समान है। फिर भद्रा ने पुरोहित के साथ मुनि का अनुनय विनय कर यक्ष को शा त किया। उपद्रव दूर हुआ और उन्होंने मुनि को आदर पूर्वक आहार दिया।

प्रश्न-८ : पाँच दिव्य कौन से हैं और वे कब प्रगट होते हैं ?

उत्तर- महा तपस्वी के मासखमण का पारणा हो, किसी को केवलज्ञान उत्पन्न हो और निकट में देव स योग मिल जाय तो पाँच दिव्य देव प्रकट करते हैं। ज्ञातासूत्र वर्णित धर्मरुचि अणगार के मास खमण के पारणे में पाँच दिव्य की वृष्टि नहीं हुई थी क्यों कि वहाँ दाता के भाव पवित्र नहीं थे। इस अध्ययन वर्णित पाँच दिव्य-(१) सुग धी जल (२) अचित्त पुष्प वृष्टि (३) धन की वर्षा (४) दुन्दुभी नाद (५) आकाश में **अहो-दान -अहोदान** की घोषणा। यज्ञशाला में पाँच दिव्य वृष्टि होने से लोगों में यह स्पष्ट हो गया कि जाति की अपेक्षा से कहीं अधिक महत्त्व तप, स यम, शील का है अर्थात् द्रव्य यज्ञ कर्ताओं की अपेक्षा मुनि का भावयज्ञ विशेष प्रभावक रहा ।

प्रश्न-९ : मुनि ने ब्राह्मणों को सच्चा यज्ञ और स्नान का स्वरूप क्या समझाया ?

उत्तर- पुरोहित के द्वारा जिज्ञासा प्रगट करने पर मुनि ने उपदेश की भाषा में समझाया- अग्नि और पानी के द्वारा बाह्य शुद्धि से आत्म उन्नति नहीं होती है अपितु पापकर्म का स ग्रह होता है। छकाया के जीवों की किंचित भी हिंसा नहीं करना, नहीं कराना, झूठ अदत्त का त्याग कर स्त्री परिग्रह एव क्रोधमान माया आदि से निवृत्त होना यही सच्चा

महा यज्ञ है। इस भावयज्ञ में आत्मा ज्योति स्थान है। तप ज्योति(अग्नि) है। मन वचन काया घी ड़ालने के चाटु है, शरीर क ड़े हैं और कर्म काष्ठ है। स यम योग स्वाध्याय ध्यान आदि शा तिपाठ है। यह ऋषियों का प्रशस्त यज्ञ(होम)है ।

सच्चा स्नान- अकलुषित एव प्रशस्त लेश्या वाला स यम ही धर्मजल का हौद है। ब्रह्मचर्य शा ति तीर्थ है। प्रशस्त अध्यवसाय निर्मल जल है। जिसमें स्नान कर मुनि शीतलता-कर्म मल रहित अवस्था रूप मोक्ष गति को प्राप्त करते हैं। यह ऋषियों का प्रशस्त महास्नान है।

प्रश्न-१० : मुनि का स्वरूप बालकों के शब्दों में और भद्रा के शब्दों में किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- बालकों के शब्दों में- अरे! यह दैत्य-राक्षस रूप में कौन आ रहा है, काले र ग वाला विकराल अर्थात् काला कलूटा रूप वाला,चपटी नाक वाला अर्थात् दबी नासिका है जिसकी। जीर्ण वस्त्रों वाला, धूल-मैल से पिशाच जैसा बना हुआ तथा उकरड़ी पर फेंकने योग्य वस्त्र गले में पहने हुए तथा अदर्शनीय-जिसका मुख भी देखने लायक नहीं है।

भद्रा के शब्दों में- नरेन्द्र देवेन्द्रों से पूजित व दित, ऋषि, उग्र तपस्वी, महात्मा, जितेन्द्रिय, स यति, ब्रह्मचारी, महायशस्वी, महानुभाग- महा प्रभावशाली, घोर व्रतों का पालन करने वाले, घोर पराक्रमी ।

आगम शब्दों में- जितेन्द्रिय भिक्षु, पाँच समितिव त, तीन गुप्ति युक्त, स यत सुसमाधिव त-श्रेष्ठ समाधि भाव में रहने वाले श्रमण।

अध्ययन-१३ : चित्त स भूति

प्रश्न-१ : प्रस्तुत अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें अनेक भवों के साथी दो सगे भाइयों का वर्णन है। उनका यहाँ नाम चित्त और स भूति कहा गया है। इस भव में दोनों का जन्म अलग-अलग क्षेत्र में हुआ। चित्त श्रेष्ठि कुल में आकर यथासमय दीक्षित हो गया। स भूति हस्तिनापुर में चक्रवर्ती राजा बना। यहाँ इसका नाम ब्रह्मदत्त रखा गया। विचरण करते हुए चित्त मुनि हस्तिनापुर पहुँच गये। यहाँ स योगवश दोनों का मिलन हो गया।

प्रश्न-२ : पूर्व में दोनों ने कौन कौन से भव साथ में किये ?

उत्तर- पूर्व के पाँच भव इस प्रकार है- (१) दशार्ण देश में दोनों भाई सेवक-दास थे। (२) कालि जर पर्वत पर दोनों मृग बने। (३) मृतग गा नदी के किनारे दोनों हंस बने। (४) काशी में दोनों चा ड़ाल कुल में जन्में। वहाँ दीक्षा लेकर तप स यम का उत्कृष्ट आचरण किया । (५) दोनों देवलोक में महर्द्धिक देव बने। इस प्रकार पाँच भव तक दोनों का साथ रहा था।

प्रश्न-३ : इस भव में दोनों का साथ क्यों छूट गया था ?

उत्तर- स भूति मुनि पूर्व भव में स यम साधना करते हुए कुछ विचिलत हुए और चक्रवर्ती बनने का नियाणा कर लिया। चित्त मुनि ने बहुत समझाया किन्तु नियाणा की आलोचना शुद्धि नहीं की । इसी कारण एक चक्रवर्ती बना और दूसरा आराधक होकर चित्तमुनि बने। नियाणा के कारण दोनों की दिशा विभिन्न हो जाने से बिछुड़ना हो गया।

प्रश्न-४ : निदान का फल ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को क्या मिला ?

उत्तर- इस भव में उसे चक्रवर्ती पद मिल गया। चित्त मुनि ने सार गर्भित उपदेश भी दिया। अपने को कीचड़ में फँसा हुआ मानने पर भी वह कामभोगों का त्याग नहीं कर सका। आखिर निदान के कारण ही वह नरक गति में गया। चित्तमुनि ने पहले स यम ग्रहण करने की प्रेरणा की और अ त में आर्यकर्म करने का अर्थात् दान एव पुण्य कर्म की प्रेरणा की किन्तु चक्रवर्ती का कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। जातिस्मरणज्ञान के कारण वह सम्यग्दृष्टि अवश्य बना। किंतु भोगों की आसक्ति का त्याग नहीं कर सका।

प्रश्न-५ : दोनों के मिलन पर आत्मीयता किस रूप में प्रगट की गई ?

उत्तर- चित्त मुनि ने भाई को स सार से तारने का प्रयत्न किया और चक्रवर्ती ने भाई को भोग सुख समृद्धि का निम त्रण एव आग्रह किया। दोनों ही अपनी मेहनत में निष्फल रहे। मुनि अपने स यमधर्म में स्थिर रह कर मोक्ष गये और चक्रवर्ती धर्माचरण कर नहीं सकने से नरक में गये। दोनों भाइओं के मिलन का उद्देश्य निष्फल हुआ ।

अध्ययन-१४ : भृगु पुरोहित

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का स क्षिप्त परिचय क्या है ?

उत्तर- पूर्व भव में ६ जीव स यम तप का पालन करके देवलोक में गये। वहाँ का आयुष्य पूर्ण करके ४ जीव इक्षुकार नगरी में राजा राणी और पुरोहित और पुरोहित पत्नी बने। काला तर से शेष दो जीव भी च्यवकर पुरोहित के दो पुत्र बने।सर्व प्रथम पुत्रों को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ जिससे स यम स्वीकार करने की भावना से मातापिता के साथ वैराग्य युक्त स वाद हुआ । उसके बाद पुरोहित भी विरक्त हो गया। उसके साथ पत्नि का दीक्षा लेने स ब धी स वाद है। अ त में राजा-राणी का स यम प्रेरक स वाद है। अ त में सभी प्रबुद्ध हो जाते हैं। छहों दीक्षा लेकर स पूर्ण कर्म क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि स यम ग्रहण करने के लिये माता पिता की आज्ञा लेना आवश्यक होता है एव पति-पत्नि को भी परस्पर आज्ञा लेना होता है । जब कि कहीं कहीं शास्त्र में आज्ञा लेने का वर्णन भी नहीं आता है ? ऐसा क्यों ?

उत्तर- शास्त्र में वर्णन कहीं स क्षिप्त कहीं विस्तृत दोनों तरह से होता है। उस कारण से आज्ञा लेने स ब धी वर्णन छूट जाता है। उसी तरह कथानकों के वर्णन में भी कहीं आज्ञा लेने की बात स्पष्ट नहीं होती है तथापि जैनश्रमण किसी को भी बिना आज्ञा-अदत्त नहीं ले सकते। दीक्षा देने में शिष्य को ग्रहण करना होता है, अतः जिसका भी हक पहुँचता हो उसकी आज्ञा लेना सर्वत्र समझ ही लेना चाहिये।

यथा- नमिराजर्षि के वर्णन में आज्ञा लेने की बात नहीं है । मृगापुत्र के वर्णन में आज्ञा लेने के लिये ल बा स वाद है। कथाओं में धन्ना मुनि आठ पत्नियों को छोड़ कर चल दिये ऐसा वर्णन आता है। शालीभद्र रोजाना एक पत्नि को समझाते थे परन्तु इस सभी जगह वर्णन के तरीकों का ही कारण है। आज्ञा लेने की विधि सर्वत्र समझना ही उपयुक्त है। यही जिनशासन की पद्धति है। भगवान महावीर के पूर्व माता-पिता ने प्रवचन के बाद वहीं दीक्षा ले ली। अर्जुन माली ने भी प्रवचन के बाद दीक्षा ले ली, ऐसा स क्षिप्त वर्णन

है। फिर भी कोई भी निकट के व्यक्ति की या स घ की आज्ञा लेकर जैन साधु शिष्य ग्रहण कर सकते है, अतः आज्ञा लेना जरूरी ही समझना चाहिये। कोई प्रत्येकबुद्ध या स्वय बुद्ध जिन्हें एकाकी ही विचरण करना हो तो उन्हें आज्ञा की आवश्यकता नहीं होती है फिर भी स भक्तः सभी अपने परिवार को अनुमत कर लेते है या परिवार के लोग उनकी उत्कृष्ट भावना से स्वतः अनुमत हो जाते हैं। तीर्थंकर से बड़ा तो दुनिया में कोई होता नहीं है फिर भी भगवान महावीर स्वामी ने भाई की आज्ञा के लिये दो वर्ष का समय घर में बिताया था। अतः स क्षिप्त वर्णनों से उलझन में नहीं पड़ना चाहिये।

प्रश्न-३ : पिता-पुत्र के स वाद में तत्त्व एव बोध क्या झलकता है?

उत्तर- (१) पिता की प्रेरणा का उत्तर देते पुत्रों ने कहा कि वेदों का अध्ययन मात्र त्राण-शरणभूत नहीं हो सकता। ब्राह्मणों को भोजन देने से ही नरक गमन से मुक्ति नही हो सकती। एव स तानोत्पति हो जाने से वह स तान कोई सद्गति नहीं कर सकते। वास्तव में सावद्य योग का त्याग कर स यम पालन से ही आत्मा सुखी एव मुक्त हो सकती है। (२) कामभोगों के क्षणमात्र के सुख बहुकाल व्यापी दुःख देने वाले हैं और ये दुःख रूप अनर्थों की खान के समान है। मुक्ति के ये पूर्ण विरोधी है, अतः कामभोगों के लिये स सार में रुक कर समय बिताना योग्य नहीं है। (३) कामभोगों से अतृप्त मानव रात दिन धन की खोज में कमाने में लगा रहता है पर तु वह भी जरा और मृत्यु से घिर जाता है, अतः क्षणमात्र भी स सार प्रमाद में फँसने की आवश्यकता नहीं है। (४) धर्माचरण के लक्ष्य में धन कुटुम्ब भोगसामग्री का कोई वास्ता नहीं है। धर्माचरण तो स पूर्ण कर्म क्षय करने एव भव पर परा नष्ट करने के लिये किया जाता है, आत्मा की पूर्ण शुद्ध अवस्था प्रगट करने हेतु तपस यम अ गीकार किया जाता है अतः कोई यह न समझ ले कि देवी सुखों के लिये स यम लिया जाता है। (५) अरणी लकड़ी से अग्नि और तिलों से तेल और दूध से घी उत्पन्न होता है वैसे आत्मा शरीर से उत्पन्न नहीं होती है वह तो अरूपी तत्व है, इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है। अतः अमूर्त होने से आत्मतत्त्व शाश्वत है, उत्पन्न होना विनष्ट होना वह अमूर्त पदार्थों का स्वभाव नहीं है। (६) सारा स सार मृत्यु

से पीड़ित है, जरा से घिरा हुआ हुआ है। व्यतीत होने वाले रात दिन मनुष्य की उम्र पर अमोघ शस्त्र रूप पड़ रहे हैं। (७) व्यतीत होने वाले दिन पुनः नहीं आते। धर्माचरण कर लेने वाले का वह समय सफल हो जाता है। (८) जिसकी मौत के साथ दोस्ती हो, मौत से भाग निकलने की शक्ति हो और जिसे उम्र का निश्चय ज्ञान हो वही व्यक्ति धर्माचरण को कल के भरोषे छोड़ सकता है अर्थात् मौत से बचने की शक्ति तो किसी के पास होना स भव नहीं है। अतः धर्माचरण तो समय पर ही कर लेना चाहिये।

प्रश्न-४ : अध्ययन के अन्य स वाद से क्या तत्त्व उभर आता है ?

उत्तर- (१) सर्प शरीर की खोली(त्वचा)को त्याग कर मुक्त भाव से चला जाता है उसी तरह विरक्तात्मा स सार के समस्त स योगों को और भोगों को छोड़ देते हैं। **(२)** रोहित मत्स्य जाल काट कर बाहर निकल जाता है उसी प्रकार विरक्तात्मा धीर पुरुष मोहजाल को त्याग कर मुक्तविहारी श्रमण बन जाते हैं। **(३)** धन एव कामभोगों को छोड़ कर जीव को अवश्य अकेले जाना पड़ता है। कुछ भी साथ नहीं चलते। मात्र स ग्रहित कर्म साथ जाते हैं। **(४)** जो यह भौतिक सुखस पन्नता है वह पक्षी के लिये मा स के टुकड़े दुःखदायी होने के समान है। मा स के टुकड़े का त्याग कर पक्षी कलह झपट से मुक्त हो जाता है उसी प्रकार परिग्रह मुक्त मुनि परम सुखी हो जाता है। **(५)** एक दूसरे के निमित्त से भी स यम धर्म की प्राप्ति हो जाती है। अतः किसी भी निमित्त से मिलने वाले सु दर अवसर पर स यमधर्म के लाभ का स्वीकार कर लेना चाहिये। प्रस्तुत अध्ययन में पुत्रों से पुरोहित को, फिर पुरोहित पत्नि को, फिर राणी और राजा को स यम का अवसर प्राप्त हुआ।

अध्ययन-१५ : सभिक्षु

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- गुणस पन्न भिक्षु कौन होता है, यह परिचय इस अध्ययन में भिक्षु के अनेक आचारों एव गुणों तथा विशिष्ट गुणों के सूचन द्वारा दर्शाया गया है।

यहाँ कहे गये अधिकतम गुण प्रत्येक श्रमण में होने जरूरी है और कई गुण ऐसे भी है जो आदर्श रूप है और जिनको धारण करने वाले श्रेष्ठ, विशिष्ट एव आदर्श श्रमण होते है जो जिनकल्पी या पड़िमाधारी की कोटि में आते हैं। सामान्य स्थविरकल्पी श्रमणों में अल्प क्षमता, अल्पज्ञान, अल्पअभ्यास वाले श्रमण भी होते हैं जिन्हें क्रमशः उन विशिष्ट गुणों की साधना में क्रमशः आगे बढ़ना होता है। स क्षेप में इस अध्ययन में भिक्षु के विविध गुणों का स कलन है।

प्रश्न-२ : वे विशिष्ट एव सामान्य गुण कौन से हैं ?

उत्तर- **(१)** भिक्षु सरलात्मा, ज्ञानादि से सहित-अन्य स्थविर स तों के साथ रहने वाला, रात्रि विहार से उपरत, आत्मरक्षक, मूर्च्छा रहित होता है। व दन प्रश सा का अनाका क्षी, आत्मार्थी, तपस्वी, मोही पुरुषों की स गति न करने वाला और कुतूहल रहित भिक्षु होता है। **(२)** पाप शास्त्रों का अर्थात् ज्योतिष म त्र, त त्र, औषध, भेसज का प्रयोग नहीं करने वाला। एहिक प्रयोजन से राजाओं, शिल्पियों एव गृहस्थों से अधिक स पर्क परिचय नहीं करने वाला, भिक्षु होता है। **(३)** गृहस्थ द्वारा आहारादि देने पर या निषेध कर देने पर तटस्थ रहने वाला, सामान्य आहार मिलने पर निंदा न करने वाला भिक्षु है। **(४)** जीवों के खेद को जानने वाला, उन्हें आत्मवत् समझने वाला, किसी को अपमानित खिंसित न करने वाला, म द कषायी, अल्पभोजी घर छोड़कर एकत्व भाव में लीन रहकर विचरण करने वाला भिक्षु होता है। ये सामान्य गुण सभी को धारण करने योग्य है।

विशेष गुण-(१) स कल्पों का छेदन करने वाला, परिचय एव इच्छाओं को नहीं बढ़ाने वाला। अज्ञात भिक्षाजीवी, आक्रोश या वध को सम्यग् सहन करने वाला, आकुलता हर्ष शोक न करने वाला, शयन, आसन, शीत-उष्ण, ड़ा स-मच्छर आदि परीषहों से व्यग्र न होने वाला भिक्षु होता है। (२) रोगात क आने पर किसी वैद्य आदि की शरण और चिकित्सा का परित्याग करता हुआ स यम पालन करता है, वह भिक्षु है। (३) सामान्य घरों में भिक्षार्थ जाने वाला, भयानक स्थानों एव शब्दों से भी भयभीत न होने वाला, आगम ज्ञान में कोविद, परीषह विजेता, उपशा त भिक्षु कहलाता है। ये विशिष्ट साधक या अभ्यस्त श्रमणों के

आदर्श गुण है। भिक्षु का लक्ष्य इन उपरोक्त सभी गुणों को धारण कर पूर्ण गुण स पन्न बनने का होना चाहिये।

अध्ययन-१६ : ब्रह्मचर्य समाधि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- श्रमणों के पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत विशेष महत्त्व रखता है। उस ब्रह्मचर्य की सु दर सम्यग् साधना आराधना के लिये आभ्य तर विचारों का भावों का पवित्र एव विकार मुक्त होना आवश्यक है। अत: ब्रह्मचर्य की सुरक्षा हेतु कुछ बाह्य सावधानियाँ रखनी जरूरी होती है। जिसको आगमकारों ने यहाँ समाधि स्थानों के रूप में वर्णित की है। व्यवहार प्रचलन में उन्हीं सावधानी के नियमों को ब्रह्मचर्य की बाड़ के नाम से कहा जाता है। ये सावधानियाँ प्रत्येक श्रमण श्रमणी एव ब्रह्मचारी को ध्यान में रखना, समझना एव आचरण में अभ्यास में रखना अत्य त हितावह है। जिससे उनका ब्रह्मचर्य व्रत पालन निराबाध एव सहज सफलता को प्राप्त करता है।

प्रश्न-२ : प्रस्तुत अध्ययन में कही गई ब्रह्मचर्य महाव्रत की सावधानियाँ कौन सी है ?

उत्तर- यहाँ श्रमणों के योग्य सावधानियाँ कही गई है, उसे श्रमणियों के लिये भी योग्य शब्द फेर करके समझ लेना चाहिये अर्थात् स्त्री शब्द की जगह पुरुष शब्द प्रयोग स्वीकार कर भाव समझ लेना। (१) स्त्री आदि के साथ एक मकान में नहीं रहना। (२) रागवृद्धि करने वाली, स्त्री स ब धी वार्ताएँ नहीं करना, नहीं सुनना। (३) स्त्रियों के साथ बार बार वार्ता एव अधिक स पर्क न करना। (४) स्त्रियों के अ गोपा ग देखने में दृष्टि नहीं टिकाना, तत्काल हटा लेना। (५) स्त्री के रुदन, हास्य, गीत, क्र दन आदि शब्द सुनने में आसक्त-लीन नहीं होना। उनकी चर्चा नहीं करना। (६) पूर्व अनुभूत स्त्री विषयों का, स पर्कों का, हाव- भावों का चि तन, मनन, स्मरण नहीं करना। (७) शीघ्र कामवासना वृद्धि करने वाले उत्तेजक पौष्टिक खाद्यपदार्थ, रसायन औषधियों का सेवन नहीं करना। दूध-घी आदि विगयों का अमर्यादित या सदानिर तर

सेवन नहीं करना ।(८) भरपेट भोजन नहीं करना या ठूँस कर भोजन नहीं करना। (९) शरीर का वस्त्रादि से श्रृ गार शोभा नहीं करना, विभूषावृत्ति का त्याग करना। (१०) शब्द, रूप, ग ध, रस, स्पर्श पाँचों मनोज्ञ विषयों की आसक्ति का त्याग करना। पाँचों इन्द्रियों का निग्रह करना। इनके विषयों से विरक्त एव उदासीन रहना। इस प्रकार ब्रह्मचर्य-स यम के जितने भी बाधक-श का स्थान हैं, उनका त्याग करना। इस तरह सावधानियों के साथ भाव समाधि युक्त विशुद्ध ब्रह्मचर्य पालक श्रमण देव, दानव, मानव सभी के लिये नमस्करणीय हैं और उनके पालन से जीव स यम की आराधना कर मुक्त हो जाते हैं।

अध्ययन-१७ : पापी श्रमण

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- जो श्रमण स यम स्वीकार करने के बाद लक्ष्य की कमी, आलस्य एव प्रकृति दोष से आगम समाचारी का यथार्थ पालन नहीं करते हैं, उपेक्षा करते हैं, उन्हें इस अध्ययन में **पापी श्रमण** की स ज्ञा दी गई है।

प्रश्न-२ : पापी श्रमण कहलाने योग्य वे दूषण कौन-कौन से कहे गये हैं ?

उत्तर- जो स यम स्वीकार करने के बाद लक्ष्य एव साधना से च्युत होकर अन्यथा आचरण करते हैं वे इस अध्ययन में **पापी श्रमण** की स ज्ञा से सूचित किए गये हैं। (१) जो श्रुत अध्ययन में तल्लीन नहीं रहते हैं। (२) निद्राशील होते हैं दिन में भी खाकर के सो जाते हैं। (३) आचार्य उपाध्याय के कुछ सूचना प्रेरणा करने पर सामने बोलते हैं, उनका सम्यग् विनय, सेवा-भक्ति नहीं करते हैं, घमण्ड़ी बने रहते हैं।(४) जीव रक्षा एव यतना का लक्ष्य नहीं रखते हैं। (५) बिना देखे या बिना पूजे कहीं भी बैठ जाते हैं, सो जाते हैं। (६) शीघ्र एव चपल गति से चलते हैं या कूद कर चलते हैं। (७) प्रतिलेखना की विधि का पालन नहीं करते हैं। (८) मायावी, लालची, घमण्ड़ी, वाचाल, मन एव इन्द्रियों का निग्रह नहीं करने वाले, अस विभागी एव अप्रिय स्वभाव वाले हैं। (९) विवाद, कलह एव कदागृह शील होते हैं। (१०) इधर-उधर चक्कर लगाते रहने वाले अर्थात् अस्थिर आसन वाले हैं। (११) सोने की विधि का

पालन नहीं करते हैं। (१२) विगयों का बार बार सेवन करते हुए भी तपश्चर्या नहीं करते हैं। (१३) सुबह से शाम तक कुछ न कुछ खाते ही रहते हैं। (१४) अस्थिर चित्त होकर गणगच्छ का बारम्बार परिवर्तन (त्यागना एव स्वीकारना) करते रहते हैं। (१५) निमित्त शास्त्र, य त्र-त त्र-म त्र, विद्या आदि का प्रयोग करते हैं, गृहस्थों को बताते हैं। (१६) सामुदानिक भिक्षा नहीं करते हैं या एक ही घर में आहार कर लेते हैं।

प्रश्न-३ : इस अध्ययन के उपस हार में क्या क्या कहा गया है ?

उत्तर- वे पापी श्रमण इसलोक में निंदा के पात्र होते हैं। साधु-समुदाय में भी वे उच्च दृष्टि से नहीं देखे जााते। आगे बढ़कर वे शिथिलाचारी भी कहे जाते हैं। वे अपना दोनों लोक(भव)बिगाड़ते हैं। किन्तु इसके विपरीत जो शुद्ध स यम-समाचारी का पालन करते हैं प्रस्तुत सूत्रोक्त दोषों का त्याग करते हैं वे सुव्रती मुनि अमृत के समान पूजित होते हैं और परलोक के भी आराधक होते हैं।

अध्ययन-१८ : स यति मुनि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इस अध्ययन में मुख्यत: स यति राजा का वर्णन है जो शिकार करने के निमित्त से गुरु गर्दभाली अणगार से बोध पाकर, दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करते हैं। प्रस गोपात उनके हितैषी मुनि क्षत्रिय राजर्षि की भावनाओं का प्रेरक उद्बोधन भी है। जिसमें मोक्षगामी अनेक राजाओं का यशोगान किया गया है।

प्रश्न-२ : गर्दभाली अणगार के द्वारा स यति राजा को दिये उपदेश वचनों का सार क्या है ?

उत्तर- क पिलपुर नगर का राजा **स जय** शिकार खेलते हुए एक मृग के पीछे घोड़े पर चलते कपिल उद्यान में ध्यानस्थ गर्दभाली मुनि के पास पहुँच गये। हिरण को मुनि के पास देखकर राजा घबराया और मुनि से क्षमायाचना, अनुनय-विनय करने लगा। अवसर देखकर मुनि ने राजा को 'अभय' वचन कहकर उपदेश दिया,जिसका सार इस प्रकार है- (१) दूसरे निरपराध प्राणियों को मारते समय व्यक्ति को तनिक भी

विचार नहीं होता है किन्तु जब खुद के लिए तनिक भी आपत्ति की स भावना हो तो घबराकर दीनता स्वीकार कर लेता है। (२) अनित्य (इस)जीवन में स्वय को भी मरना अवश्य है, कोई अमर तो हो ही नहीं सकता। अतः हिंसादि में तल्लीन होने से कोई लाभ नहीं है। (३) सब कुछ छोड़ कर एक दिन जाना पड़ेगा। जीवन बिजली की चमक के समान च चल है। फिर भी प्राप्त राज्यादि में आशक्त होकर परलोक का विचार नहीं करना, यह अज्ञानदशा ही है। (४) सगे-सम्ब धी आदि भी जीते हुए जीव के साथ है, मरने पर केवल शुभाशुभ कर्म ही साथी होते है। पारिवारिक लोग फिर घर में भी नहीं रखते। राजा प्रतिबुद्ध हुआ और विधि सहित यथासमय दीक्षित हुआ।

प्रश्न-३ : क्षत्रिय राजर्षि कौन थे और उन्होंने स यति मुनि के प्रति किस प्रकार आत्मीयता का व्यवहार किया ?

उत्तर– सूत्र में क्षत्रिय राजर्षि का कुछ भी परिचय नहीं दिया गया है किन्तु वर्णन से ऐसा ज्ञात होता है कि वे कोई स्नेहल प्रकृति के ही श्रमण होंगे अतः स यति मुनि को देखकर स्वाभाविक आत्मीयता के भाव हुए होंगे। उन्होंने पहले स यति मुनि का गुणगान कर फिर उन्हें स यम में सावधान रहने के लिये अन्य मतों-सिद्धा तों का परिचय दिया। फिर उत्साह वृद्धि हेतु जिनशासन में मुक्त हुए अनेक राजा चक्रवर्तीओं का वर्णन किया।

प्रश्न-४ : क्षत्रिय राजर्षि के उद्बोधन का स क्षिप्त भाव क्या है ?

उत्तर– (१) स सार में अनेक एकान्तवादी धर्म सिद्धा त हैं, एकान्त होने से उनका कथन युक्ति स गत नहीं है। अतः सम्यग् तत्त्वों की श्रद्धान के साथ सम्यग् धर्म में स्थिर रहना चाहिये। सार यह है- कोई भी सिद्धा त वाले हो जो हिंसादि पापकार्यों में तल्लीन रहते हैं वे दुर्गति प्राप्त करते हैं और जो पाप का त्याग कर अहिंसक, दयामय, आर्यधर्म का आचरण करते हैं, वे दिव्यगति प्राप्त करते हैं। (२) विभिन्न एका त-सिद्धा त मिथ्या एव निरर्थक है, यह जानकर स्याद्वादमय सम्यक् निष्पाप सिद्धा त का अनुसरण करना चाहिये। (३) दस चक्रवर्ती राजाओं ने भी स पूर्ण राज्यलक्ष्मी का त्याग कर स यम-तप की आराधना से मुक्ति प्राप्त की, दो चक्रवर्ती(आठवें, बारहवें) स यम धारण न करने से नरक में

गये। (४) दशार्णभद्र राजा, नमि राजा, करक डु, दुर्मुख, नगति राजा, उदायन राजा, श्वेत राजा, विजय, महाबल इत्यादि बड़े-बड़े राजाओं ने स यम धारण कर आत्मकल्याण किया।

यह जानकर सूरवीर मोक्षार्थी साधक को मोक्षमार्ग में दृढ़ता पूर्वक पराक्रम करना चाहिये ।

अध्ययन-१९ : मृगा पुत्र

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर– पूर्व भव में प च महाव्रत धारी एक आराधक श्रमण का जीव देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर सुग्रीव नगर के बलभद्र और बलश्री राजा-राणी के यहाँ मृगापुत्र नामक राजकुमार रूप में उत्पन्न हुआ। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान के शासन का समय था। मृगापुत्र ने यौवनवय में मानुषिक सुखों को भोगते हुए एक समय अचानक मार्ग में जाते मुनि को देखा। विचार करते उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। जिससे वह अपना देव भव, मानवभव, स यममार्ग एव अतीत के नरक आदि के भवों को स्पष्ट जानने लगा। वैराग्य भावना स्वतः जागृत हुई और माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा मा गने पहुँच गया। उसके बाद माता-पिता के साथ हुआ स वाद यहाँ शास्त्रकार ने बहुत ही रोचक और विस्तृत एव परिपूर्ण चित्रित किया है। जिससे यह अध्ययन कथाप्रधान होते हुए भी उपदेश का, स यम माहात्म्य का, नरक दुःख वर्णन का खजाना सा बन गया है। इस अध्ययन के श्रवण, चि तन, मनन से कई भव्य जीव इस प चम काल में भी वैराग्य प्राप्त कर दीक्षित बनते हैं, ऐसा इस अध्ययन का स्पष्ट प्रभावक वर्णन है। साधु-साध्वी भी इस अध्ययन को बहुधा अपने प्रवचन का विषय बनाते हैं एव श्रोतागणों को वैराग्य भाव से सि चित कर खुद भी महानिर्जरा को प्राप्त करते हैं। मृगापुत्र अणगार ने एकाकी विचरण कर अनेक वर्षों की स यम पर्याय का पालन कर एक महीने के स थारे से सर्व कर्म क्षय कर मोक्ष गति को प्राप्त किया।

प्रश्न-२ : जातिस्मरण ज्ञान किस कर्म के क्षयोपशम से होता है ?

उत्तर– अध्यवसायों की विशुद्धि से या किसी वस्तु-घटना के अनुप्रेक्षण से ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से तथा साथ में मोहनीय कर्म के क्षय-क्षयोपशम से जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होता है। मोहनीय कर्म का क्षय क्षयोपशम नहीं हो और जीव मिथ्यादृष्टि हो तो उसे जातिस्मरण अज्ञान होता है। ज्ञान होने के लिये मोहनीय कर्म का क्षय-क्षयोपशम भी जरूरी है। इसी कारण सूत्र में **मोह गयस्स स तस्स** कहा गया है। इसमें ज्ञानावरणीय भी स्वतः समझ लेना। इस ज्ञान से कभी एक भव का, कभी अनेक भवों का तथा उन भवों के आचरणों का, स्थानों का एव स यम विधियों का भी ज्ञान हो जाता है।

प्रश्न–३ : मृगापुत्र ऋषभदेव के शासन में हुए, यह कैसे कह सकते हैं ?

उत्तर– उन्होंने पूर्व भव में पाँच महाव्रतों का पालन किया था और देवलोक की अस ख्य वर्ष की उम्र भी पूर्ण करके आये थे और इस भव में भी पाँच महाव्रत स्वीकार किये थे। मध्यम तीर्थंकरों के शासन में और महाविदेह में पाँच महाव्रत धर्म नहीं होकर चातुर्याम धर्म होता है। प्रथम तीर्थंकर का शासन आधा क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम करीब चलता है उसमें जीव देवलोक में जाकर पुनः वापिस आ सकता है। अतः ऋषभ-देव भगवान के शासन में मृगापुत्र के होने की बात युक्ति स गत है।

प्रश्न–४ : मृगापुत्र और माता पिता के स वाद से उपदेश वचन क्या प्रगट होते हैं ?

उत्तर– **(१)** विषयभोग, विष फल एव किंपाकफल की उपमा वाले हैं अर्थात् दिखने में एव भोगने में लुभावने हैं किन्तु इनका परिणाम कटुक है, दुःखदाई है। **(२)** यह शरीर अनित्य है, अशुचिमय है, अशाश्वत और क्लेशों का भाजन है। इसे पहले या पीछे अवश्य छोड़ना पड़ेगा। पानी के झाग या बुदबुदों के समान यह जीवन क्षणभ गुर है। यह शरीर रोगों का घर है और बुढ़ापे से घिरा हुआ है। **(३)** स सार में जन्म, जरा-बुढ़ापा, रोग और मरण ये चार मोटे दुःख है। बाकी तो यह सारा स सार दुःखमय ही है। **(४)** स सार अटवी में बिना धर्म की खर्ची लिये जाने वाले प्राणी व्याधि रोग आदि दुःखों से पीड़ित होते हैं।

प्रश्न–५ : स यम जीवन की दुष्करता किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर– समस्त प्राणियों के प्रति तथा विरोधभाव रखने वालों के प्रति भी समता भाव धारण करने रूप अहिंसा का पूर्ण पालन करना दुष्कर है।सदा अप्रमत्त भाव से हितकारी एव सत्य, उपयोग पूर्वक बोलना भी दुष्कर है। पूर्ण रूप से अदत्त का वर्जन और निर्वद्य एव एषणीय आहारादि का ग्रहण करना भी कठिन है। कामभोगों का पूर्णतया त्याग करना एव सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह और ममत्व का परित्याग करना अति दुष्कर है। बावीस परीषह सहना एव लोच करना तथा पैदल विहार करना अति कष्टमय है।

प्रश्न–६ : स यम जीवन के पालन के महत्त्व को उपमाओं से किस प्रकार बताया गया है ?

उत्तर– जीवनभर बिना विश्राम के इन सभी स यम गुणों को धारण करना मानो–१. लोहे के बड़े भार को सदा उठाये रखना है। २. ऊपर से गिरती हुई ग गा नदी के प्रतिश्रोत में चलना है। ३. भुजाओं से समुद्र पार करना है। ४. बालू रेत का कवल चबाना है।५. तलवार की धार पर चलना है। ६. लोहे के चने चबाना है। ७. दीप्त अग्नि शिखा को पीना है। ८. कपड़े की थेली को हवा से भर देना है। (९) मेरुपर्वत को तराजू में तोलना है अर्थात् ये उक्त सभी कार्य अति दुष्कर है इनके समान ही स यम पालन करना भी अत्यन्त दुष्कर है।

प्रश्न–७ : स वाद में वर्णित नरक के दुःखों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– अग्नि की उष्णता से भी नरक की गरमी अनन्तगुणी है। यहाँ की ठ ड से नरक की ठ ड़ी अनन्त गुणी है। वहाँ नैरयिक को बार बार जलाया पकाया जाता है, करवत से काटा जाता है, मुदगरों से टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया जाता है। तीक्ष्ण का टों में खींचा जाता है। घाणी में पील दिया जाता है। छेदन भेदन किया जाता है। बलपूर्वक उष्ण ज्वाजल्यमान रथ में जोत दिया जाता है। तीक्ष्ण धारा वाली वैतरणी नदी में प्यास लगने पर ड़ाल दिया जाता है। मारमार कर, चूर-चूर कर दिया जाता है। उबाला हुआ लोहा शीशा ताम्बा पिला दिया जाता है।

तुम्हें मा स प्रिय था यह कर कर अग्नि के समान लाल करके खुद का मा स खिलाया जाता है। "तुम्हें मदिरा बहुत प्रिय थी" यह

कहकर वसा(चर्बी)और खून गर्म करके पिला देते हैं। नरक में कुछ वेदना स्वभाविक होती है और कुछ परमाधामी देवकृत होती है वैक्रिय शरीर और लम्बी उम्र होने से वे नैरयिक मरते नहीं है किन्तु पारे के समान उनका शरीर पुनः जुड़ जाता है। इस प्रकार यहाँ यह बताया गया है कि स यम के कष्ट से अनन्त गुणा कष्ट जीव नरक में उठाता है। नरक का विशेष वर्णन जीवाभिगम, सूयगड़ांग सूत्र आदि अनेक सूत्रों में है ।

प्रश्न-८ : मुनि जीवन की कुछ विशेषताएँ दर्शाकर अध्ययन का उपस हार किस प्रकार किया है ?

उत्तर-मुनि जीवन में रोग का उपचार नहीं करना यह ध्रुव मार्ग है। उसके लिये मृग आदि ज गल के पशु का दृष्टा त दिया गया है कि वे रुग्ण होने पर आहार छोड़ कर विश्राम करते हैं एव स्वस्थ होने पर आहार पानी ग्रहण करते हैं। मुनि भी इसी प्रकार मृगचर्या से स यम की आराधना करें।

मुनि लाभालाभ, सुख-दु:ख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रश सा, मान-अपमान में सदा एक समान ही भाव रखे। हास्य शोक से दूर रहें। च दन वृक्ष के समान रहे अर्थात् बुरा करने वाले के प्रति शुभ एव हितकर अध्यवसाय रखे ।

अ तिम गाथा में कहा गया है कि- धन दु:खों की वृद्धि करने वाला है, ममत्व ब धन महा भय को प्राप्त कराने वाला है और धर्माचरण-व्रत, महाव्रत धारण करना अणुत्तर सुखों को देने वाला है।

अध्ययन-२० : अनाथी मुनि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें गुणसु दर नाम के श्रेष्ठिपुत्र के दीक्षा लेने का घटना क्रम वर्णित है। श्रेणिक राजा के साथ की वार्ता में मुनि ने अपने को अनाथ बताया था। फिर आगे की वार्ता में अनाथ और सनाथ का वास्तविक अर्थ तात्पर्य बताया था। इसलिये इस अध्ययन का नाम और मुनि का नाम भी अनाथी मुनि प्रसिद्ध हुआ है। गुणसु दर नाम कथानक में मिलता है ।

प्रश्न-२ : श्रेणिक राजा तो बौद्धधर्मी था उसकी मुनि के साथ वार्ता कैसे हुई ?

उत्तर-एक बार घूमते हुए श्रेणिक राजा बगीचे में जाता है। वहाँ वह अनाथी मुनि को बैठे हुए देखता है। मुनि के रूप, यौवन, सौम्यता, वैराग्य को देखकर उसे आश्चर्य होता है। वह योग्य शिष्टाचार व दन करके पूछ बैठता है कि- आपको दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता पड़ी ? मुनि से उत्तर मिलता है- मैं अनाथ था। पुनः श्रेणिक ने कहा कि "मैं आपका नाथ बनता हूँ, चलिए राज्य में" । तदनन्तर मुनि अपनी अनाथता का रहस्य बताते हैं। जिससे श्रेणिक बोध प्राप्त करता है और धर्मानुरक्त हो जाता है ।

प्रश्न-३ : जीव की अनाथता वास्तव में क्या समझाई गई है ?

उत्तर- प्रभूतधन एव माता-पिता, भाई-बहिन और पत्नी के होते हुए भी इस जीव की मौत से एव रोग से सुरक्षा कोई नहीं कर सकता, इसी कारण राजा हो या सेठ सभी अनाथ हैं, क्यों कि हजारों देव, हजारो स्त्रियाँ, हजारों राजा एव करोड़ों का परिवार १४ रत्न, नव निधान, ये सब कुछ होते हुए भी चक्रवर्ती अकेला असहाय होकर मौत आते ही नरक में चला जाता है अर्थात् ये सब पदार्थ मृत्यु और दुर्गति एव दु:खों से रक्षा नहीं कर सकते और जिसका कोई रक्षक नहीं होता है वह अनाथ होता है ।

प्रश्न-४ : सनाथ किस को बताया गया है ?

उत्तर-धर्म-स यम स्वीकार करने वाला मानव सनाथ हो जाता है। धर्म उसे दु:ख में भी सुखी रहने का प्रेरक बनता है एव मृत्यु के समय भी महोत्सव के आनन्द सा अनुभव कराता है और अन्त में कभी भी दुर्गति में नहीं जाने देता है। अत: ऐसे स यम धर्म से युक्त आत्मा सनाथ बन जाता है ।

प्रश्न-५ : स यम ले लेने वाले भी सभी सनाथ नहीं होते, इसे किस तरह समझाया गया है ?

उत्तर-कई व्यक्ति स यम साधना को स्वीकार करने के उपरा त भी अनाथ बने रह जाते हैं, वह दूसरे प्रकार की अनाथता है अर्थात् अनेक स यमधारी होकर भी अपनी आत्मा की दुर्गति से रक्षा करने में समर्थ नहीं हो पाते। यथा- १. जो महाव्रतों का सम्यक् प्रकार से पालन

नहीं करते हैं। २. मन, इन्द्रिय एव कषाय का निग्रह नहीं करते । ३. रसों में आसक्त रहते हैं। ४.चलने में, बोलने में, गवेषणा में या खाने में जो भी स यम की मर्यादाएँ है उनका ध्यान रखकर पालन नहीं करते अर्थात् समिति गुप्ति का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं करते हैं ।

जो लोगों को निमित्त बनाते हैं, हस्तरेखा लक्षण, स्वप्न आदि का फल बताते हैं, विद्याम त्र से चमत्कार बताते हैं, सावद्य अनुष्ठानों में एव गृहकार्यों में भाग लेते हैं।जो औद्देशिक (साधु के निमित्त तैयार किये) खाद्यपदार्थ आदि लेते हैं अथवा एषणीय अनेषणीय जो मिले सो ले लेते हैं। इस प्रकार जो उत्तमार्थ-स यम की विराधना करते हैं, वे भी अनाथ है अर्थात् दूषणों से युक्त बना हुआ उनका वह स यम दुर्गति से एव दुःखों से उन्हें नहीं बचा सकता। इसलिये वे साधु होकर के भी अनाथ ही हैं।

प्रश्न-६ : स यम की शुद्ध पालना नहीं करने वाले के लिये उपमाओं द्वारा किस प्रकार समझाया है तथा अध्ययन का उपस हार क्या है?

उत्तर-सूत्र में उस साधु की नग्नता, मुण्ड़न आदि को मोक्षार्थ साधने में निरर्थक बताया है। का च के टुकड़ों के समान खोटा बताया है और दोनों लोक में स क्लेश प्राप्त करने वाला एव कर्मो का नाश नहीं करने वाला बताया है। पिया गया विष, उल्टा ग्रहण किया शस्त्र और अविधि से साधा गया देव सुखदाई नहीं होकर दुःखदाई बनता है। उसी प्रकार स यम की विधियों से विपरीत आचरण उसका हित करने वाला नहीं होता।

इस प्रकार धर्म(स यम धर्म) स्वीकार करना पहली सनाथता है और स यम का, जिनाज्ञा का ईमानदारी पूर्वक पूर्ण पालन करना दूसरी सनाथता है। दोनों प्रकार की सनाथता धारण करने पर ही जीवन सफल एव आराधक होता है।

अध्ययन-२१ : समुद्रपाल

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- जिनमत में कोविद पालित श्रावक के समुद्रपाल नामक पुत्र था। एक बार उसने अपने भवन में बैठे चोर को मृत्युद ड़ के लिए ले जाते

हुए देखा और अशुभ कर्मों के कटु फल का चिन्तन करते हुए वह विरक्त हो गया एव स यम स्वीकार कर उसने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त किया ।

प्रश्न-२ : प्रस्तुत अध्ययन में स यम आराधना स ब धी उपदेश प्रेरणा वचन क्या है ?

उत्तर- (१) मुनि त्रस स्थावर सभी जीवों के प्रति पूर्ण अनुक पा भाव रखे। सावद्य योगों का पूर्णतः (तीन करण-तीन योग से) त्याग करे । (२) अपने बलाबल को जानकर मुनि स यम में विचरण करे और तप धारण करे। (३) सि ह के समान सदा निर्भीक रहे। (४) परीषहों को सम्यक् सहन कर कर्म क्षय करे किन्तु घबरावे नहीं। (५) आश्रवों का सदा निरोध करे। अकिंचन एव अममत्वी बने अर्थात् परिग्रह एव ममत्व से मुनि सदा दूर रहे ।

अध्ययन-२२ : अरिष्टनेमि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- बावीसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि का जीवन परिचय है। उनके पिता समुद्रविजय, माता शिवादेवी, कृष्ण वासुदेव उनके चचेरे बड़े भाई थे। उन्होंने राजीमती के साथ अरिष्टनेमि कुमार का विवाह तय किया। पशुओं की करुण पुकार सुनकर अरिष्टनेमि कुमार ने बरात वापिस लौटा दी। वर्षीदान देकर दीक्षा ली। यथासमय भगवान के भाई रथनेमि और राजीमतीने भी दीक्षा ली। भगवान का दीक्षा महोत्सव कृष्ण वासुदेव ने बड़े ही धूमधाम के साथ किया तथा दीक्षा पर आशीर्वचन भी कहे।

रथनेमि एक बार गुफा में वर्षा के कारण वस्त्र रहित राजीमती साध्वी को अकेली देखकर विचलित हो गये पर तु राजीमती के शिक्षा वचनों से पुनःसावधान बने। फिर कर्म क्षय कर मुक्त हुए। यह सर्व कथा वर्णन अध्ययन में विस्तार से दिया गया है ।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन में विशेष ज्ञातव्य क्या है ?

उत्तर- (१) तीर्थंकर के शरीर के लिये १००८ लक्षणों से युक्त होने

का कथन है। ऐसा वर्णन प्रश्नव्याकरण, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि शास्त्रों में भी है पर तु १००८ लक्षणों का स्पष्टीकरण किसी शास्त्र या ग्र थों में देखने को नहीं मिलता है । ये लक्षण हाथ पाँव मस्तक तथा अन्य समस्त अ गोपा गों से स ब धित होते हैं। **(२)** चरम शरीरी जीवों के वज्रऋषभनाराच स घयण होता है स स्थान कोई भी हो सकता है किन्तु तीर्थंकरों के समचौरस स स्थान और सुड़ोल सु दर शरीर आकृति होती है। वर्ण कोई भी हो सकता है। अरिष्टनेमि का श्याम वर्ण था। **(३)** भोगाशक्त व्यक्ति भी मनुष्य भव को दुर्लभ कह कर मनुष्य सम्बन्धी भोगों में आन द मानता है जबकि मोक्षार्थी साधक भोगों को प्रत्येक भवों में प्राप्त होने वाला जानकर मनुष्य भव की दुर्लभता को मोक्ष प्राप्ति के हेतुभूत समझता है। क्यों कि भोगों की सुलभता अन्य गतियों-भवों में भी होती है किन्तु स यम और मोक्ष की आराधना केवल मनुष्य भव में ही होती है। अतः दुर्लभ मनुष्य भव का उपयोग ज्ञानी आत्मा मुक्ति की साधना में ही समझते हैं बाकी अन्य सभी कर्तव्यों को वह मनुष्य भव का दुरुपयोग रूप समझता है।

(४) स्व-पर की एकान्त हित भावना से कहे गये कटु वचन भी सुभाषित वचन होते हैं। **(५)** शब्दों को प्रभावशाली बनाकर उच्चारण करना गुस्से और घम ड़ से भिन्न है। **(६)** कषाय का त्याग कर, इन्द्रियों को वश कर एव गुप्तियों से युक्त होकर दृढ़ता से स यम नियमों का पालन करने से जीव आराधना करके आत्मकल्याण साध लेता है।

इन्हीं गुणों के आसेवन एव धारण से रथनेमि मुनि एव राजीमति सती ने आत्म कल्याण साध लिया।

अध्ययन-२३ : केशी गौतम

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर गौतम स्वामी एव पार्श्वनाथ भगवान के परम्परा के अवधिज्ञानी श्रमण केशी स्वामी अपनी-अपनी शिष्य म ड़ली सहित श्रावस्ति नगरी में पधार कर अलग-अलग उद्यान में ठहरते हैं। गमनागमन, भिक्षाचरी आदि में दोनों के श्रमण

एक दूसरों को देखते हैं एव कुछ परिचय पाते हैं। कुछ आचारादि की भिन्नता होने से शिष्यों में चर्चा जिज्ञासाएँ उत्पन्न होती है। उनका समाधान करने हेतु उचित अवसर देखकर दोनों प्रमुख श्रमण एकत्रित होकर प्रश्नोत्तर आदि वार्तालाप का प्रोग्राम बनाते हैं। तदनुसार गौतम स्वामी केशी श्रमण के पास शिष्य परिवार सहित जाते हैं। परस्पर सम्यक् विनय व्यवहार आसन(दर्भादि) आदान-प्रदान किया जाता है। वहाँ अन्य अनेक दर्शक श्रोता तथा अनेक जाति के देव भी आते हैं। केशी स्वामी **"महाभाग"** स बोधन द्वारा गौतम स्वामी से पृच्छा करते हैं और गौतम स्वामी **भ ते!** स बोधन पूर्वक केशी स्वामी को अनुमति और उत्तर देते हैं। अ त में केशी स्वामी चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के शासन में समर्पित हो जाते हैं।

प्रश्न-२ : केशी स्वामी और गौतम स्वामी के बीच कितने प्रश्नोत्तर हुए ?

उत्तर- अध्ययन की उपस हार गाथाओं से ऐसा ज्ञात होता है कि दोनों का वार्ता सम्मेलन अनेक दिनों तक चला होगा और उसमें अनेकों श का समाधान हुए होंगे। ये प्रश्नचर्चा ज्ञान गोष्ठी खुले रूप में सभी प्रकार की अर्थात् देव-मानव की परिषद में होती थी। प्रस्तुत अध्ययन में मुख्य १२ प्रश्नोत्तरों का स कलन उपलब्ध है।

प्रश्न-३ : वे १२ प्रश्न कौन से थे ?

उत्तर- (१) वस्त्रों में अ तर क्यों दिखता है ? (२) चातुर्याम धर्म और पाँच महाव्रत यों व्रतस ख्या के कथन में अ तर क्यों है ? (३) अनेक शत्रुओं को कैसे परास्त किया है ? (४) अनेक ब धनों से तुम मुक्त कैसे होते हो ? (५) विष लता को जो हृदय में उत्पन्न होती है उसे कैसे उखाड़ा है ? (६) भय कर अग्नि को तुमने कैसे शा त किया है? (७) उद्द ड़ घोड़े को तुमने कैसे काबु में रखा है ? (८) अनेक कुपथ स सार में है उनसे तुम कैसे बचते हो ? (९) स सार समुद्र में डूबते प्राणियों के लिये द्वीप शरण क्या है ? (१०) समुद्र में ड़ावाड़ोल बनती नौका से आप कैसे समुद्र पार करते हो ? (११) जगत में घोर अ धकार(अज्ञान) छा रहा है उसे प्रकाश कौन देगा ? (१२) दुःख भरे इस स सार में शाश्वत सुख स्थान कौन सा है ?

प्रश्न-४ : इन प्रश्नों के समाधान जो गौतम स्वामी ने दिये उसका सार क्या है ?

उत्तर- (१) पार्श्वनाथ भगवान के साधुओं का सचेल धर्म होता है और भगवान महावीर स्वामी के साधुओं का अचेल धर्म होता है। यहाँ सचेल धर्म का अर्थ है-यथेच्छ परिमाण एव मूल्य के वस्त्र धारण कर सकना और अचेल धर्म का अर्थ है-मर्यादित परिमाण में (अल्प-अल्पतम) अल्प मूल्य एव केवल श्वेत वर्ण के वस्त्र ही रखना। स यम यात्रा एव ज्ञानादि के लिये एव प्रतीति(परिचय)के लिए किसी भी लि ग(वेष) का प्रयोजन होता है जो व्यवस्था एव आज्ञानुसार होता है। निश्चय में तो मोक्ष के मुख्य साधन ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्रतिज्ञा में सभी तीर्थंकरों के शासन में कोई अ तर नहीं है।

(२) इसी प्रकार चतुर्याम धर्म और प च महाव्रत धर्म का अ तर है। यह अ तर केवल स ख्या से सम्बन्धित है। इन दोनों अ तर का कारण यह है कि मध्यम बाईस तीर्थंकरों के समय काल प्रभाव से मनुष्य सरल और प्रज्ञा स पन्न अधिक होते हैं। प्रथम और अ तिम तीर्थंकर के शासनकाल के मनुष्य उक्त गुणसम्पन्न अत्यल्प होते हैं। वक्र जड़ों की स ख्या ही अधिक होती है।

(३) आत्मा, ४ कषाय और ५ इन्द्रियों(इन दस) को जीतने में ही पूर्ण विजय है अर्थात् आत्म परिणति को भगवदाज्ञा में समर्पित कर देना, ज्ञानात्मा से कषायात्मा को शिक्षित कर निय त्रित करना एव समभाव में रहना, वैराग्य भावों की उत्कटता से इन्द्रियों की च चलता को शा त करना एव इच्छाओं को शा त करना, इस प्रकार सभी आत्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करना है।

(४) राग द्वेष और स्नेह, ये ही स सार में ब धन और जाल है। इनका छेदन करना चाहिये अर्थात् आत्मा को इन परिणामों से मुक्त रखने का प्रयत्न करना चाहिये। ज्ञान के द्वारा विवेक सावधानी रखने से रागद्वेष और स्नेह परिणामों से मुक्त बना जा सकता है।

(५) तृष्णा-इच्छाएँ, लालसाएँ ये ही हृदय में विष बेलें-लताएँ हैं। अतः मोक्षार्थी को समिति से गुप्ति की और अग्रसर होते हुए सम्पूर्ण ऐहिक, पारलौकिक, लालसाओं से क्रमशः मुक्त होना चाहिये।

प्रश सा, प्रतिष्ठा, सम्मान की लालसाएँ भी मुनि जीवन में समूल उखाड़ फेंकने की आवश्यकता है, तभी विष भक्षण से मुक्ति स भव है।

(६) कषाय, आत्म गुणों को जलाने में अग्नि के समान है। अतः गुस्सा, घम ड, कपट, चालाकी और चाहनाओं को श्रुत, सदाचार, तप के द्वारा शा त बनाने में प्रयत्नशील रहना चाहिये।

(७) मन एक बिना लगाम का उद्द ड घोड़ा है। इसे धर्मशिक्षा से अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, विवेक, आत्मस्वरूप चि तन, कर्म स्वरूप चि तन से वश में रखना चाहिये। श्रुत-रस्सी की लगाम ही इसका निग्रह करने में सर्वश्रेष्ठ साधन है। अतः साधु को सदा श्रुत अध्ययन, पुनरावर्तन, अनुप्रेक्षा आदि में लीन रहकर मन की स्वच्छ दता और उद्द ड़ता को नष्ट करने में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

(८) वीतराग, सर्वज्ञ दर्शित-स्याद्वादमय मार्ग ही न्याय स गत मार्ग है। इस उत्तम मार्ग की आराधना से जीव स सार भ्रमण से मुक्त हो सकता है।

(९) स सार समुद्र में डूबते हुए प्राणियों के लिये धर्म ही त्राण-शरणभूत द्वीप है।

(१०) मानव शरीर ही नावा है, जीव नाविक है। यदि यह देह स यम तप से इधर-उधर भटकना चाहता है या इसकी क्षमता स यमतप की नहीं है तो यह छिद्रों वाली नावा के समान है। ऐसे असहायक शरीर रूपी नौका से समुद्र पार नहीं किया जा सकता। अपितु जो शरीर स यम-तप की वृद्धि में सहायक है इधर-उधर नहीं भटकता है, वह निश्छिद्र नावा के समान है। उससे जीव रूपी नाविक स सार समुद्र पार कर मुक्त हो सकता है।

(११) इस जगत के भाव अ धकार को दूर कर ज्ञान प्रकाश फैलाने वाले सूर्य तीर्थंकर प्रभु होते हैं। वे समस्त प्राणियों को ज्ञान का प्रकाश देते हैं।

(१२) सिद्धशिला से कुछ ऊपर लोकाग्र में क्षेमकारी, कल्याणकारी, ध्रुवस्थान है, वहाँ व्याधि, वेदना एव जन्म मरण नहीं है। शारीरिक मानसिक दुःख भी नहीं है। उस स्थान को प्राप्त करने वाले मुनि भवभ्रमण के स क्लेश से सदा के लिये मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न-५ : मध्यम तीर्थंकर के श्रमणों की वेशभूषा की विशेषता क्या थी?

उत्तर– अ तिम तीर्थंकर के साधु अल्प मूल्य के, सामान्य, एव रेजे के या कोरपाण के वस्त्रों का उपयोग करते थे। मध्यम तीर्थंकर के श्रमणों के वस्त्र स्वच्छ, कीमती एव दिखने में विशेष सु दर होते थे। जैसे आज श्रमणों में भी कहीं कहीं अ तर दिखता है। उस प्रकार समझना ।

र ग का अ तर कहने की प्रथा गलत है। किसी भी शास्त्र के मूलपाठ में ऐसी बात नहीं है। क्यों कि दो जैन श्रमणों के वस्त्र में एक के काले लाल-पीले हों और एक के सफेद हो तो ऐसा तो किसी धर्म में नहीं होता है। ऐसा होना अव्यवहारिक होता है। बाजार में एक साथ चलते हुए श्रमणों की वेशभूषा मुखवस्त्रिका लाल, पीले, नीले र ग की हो तो कितना खराब लगेगा। इसका विचार कर र ग की बात को आग्रह में नहीं ड़ालना चाहिये ।

प्रश्न-६ : महाव्रतों की स ख्या का अ तर भी क्या जरूरी है ?

उत्तर– महाविदेह क्षेत्र में धर्म शाश्वत है। वहाँ सदा चातुर्याम धर्म का ही निरूपण होता है। भरत ऐरवत क्षेत्र में २० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम में से साधिक एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम जितने समय में ही श्रमणधर्म होता है। २४ तीर्थंकर क्रमशः होते है उसमें एक तीर्थंकर के श्रमण अति सरल भोले होते है और एक तीर्थंकर के श्रमणों में वक्रता-जड़ता ज्यादा होती है। अतः उन दो तीर्थंकरों के श्रमणों के लिये पाँच महाव्रत स्पष्ट करने आवश्यक होते हैं। और मध्यम तीर्थंकरों के शासन में बुद्धिमान और योग्य समझ वाले अधिक होते है। अत: महाविदेह के समान चातुर्याम धर्म रखा जाता है। केवल दो तीर्थंकरों के शासन में प च महाव्रतारोपण कर स्पष्टीकरण किया जाता है। उसका कारण समग्र साधुओं का हित सावधानी रूप है ऐसा समझना चाहिये। छेदोपस्थापनीय चारित्र भी दो तीर्थंकरों के शासन में ही होता है। शेष सर्वत्र सामायिक चारित्र ही होता है। जिसमें सावद्य योग त्याग में १८ ही पाप का त्याग आ जाता है और वे स क्षेप में ही विस्तार समझ जाते हैं ।

अध्ययन-२४ : अष्ठ प्रवचनमाता

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में पाँच समिति और तीन गुप्ति का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। समिति और गुप्ति स यम का प्राण है। अतः द्वादशा ग रूप स पूर्ण जिन प्रवचन इसमें ही समाविष्ट माना गया है। अर्थात् प्रवचन का ध्रुव लक्ष्य है मोक्ष, मोक्ष का प्रधान साधन है स यम, और स यम में प्रमुख स्थान पाँच समिति, तीन गुप्ति का है। अतः इसे **अष्ट प्रवचनमाता** कहा है। इसलिये प्रस्तुत अध्ययन का नाम भी अष्ट प्रवचनमाता रखा गया है ।

प्रश्न-२ : पाँच समिति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर– पाँच समिति के नाम– (१) ईर्या समिति (२) भाषा समिति (३) एषणा समिति (४) आदान-निक्षेपणा समिति (५) उच्चार प्रश्रवण परिठावणिया समिति ।

(१) ईर्या समिति– साधु के गमनागमन करने का समय दिन का ही है। युगमात्र भूमि को देखते हुए एकाग्रचित से स यम के प्रयोजन से यानि ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव शरीर तथा सेवा के आवश्यक प्रयोजन होने पर शा त गति से छःकाया के जीवों की रक्षा करते हुए मौनपूर्वक चलना, यह ईर्या समिति है ।

(२) भाषा समिति– कषायों से रहित और अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन हो, ऐसी भाषा बोलना चाहिये। क्रोध, मान, माया, लोभ युक्त भाषा, हास्य, भय, वाचालता और विकथा प्रेरित भाषा, कठोरकारी, कर्कशकारी, छेदकारी, भेदकारी, मर्मकारी, सावद्यकारी, निश्चयकारी एव असत्य, मिश्र भाषा नहीं बोलना चाहिये। किन्तु सोच-विचार पूर्वक शा ति से हितकारी, प्रियकारी, सत्य एव व्यवहार भाषा बोलना चाहिये-यह भाषा समिति है ।

(३) एषणा समिति– आहारादि की निष्पत्ति में साधु का कोई भी निमित्त हो ऐसे उद्गम स ब धी दोष युक्त आहारादि न लेना, आहार प्राप्ति के लिये कोई भी गृहस्थ प्रवृत्ति या दीनवृत्ति न करना, आहारादि ग्रहण करते समय किसी प्रकार की जीव विराधना न हो ऐसा आहारादि ग्रहण करना एव परिभोगेषणा के पाँच मुख्य दोष एव अन्य अनेक दोषों का परित्याग करते हुए आहारादि का उपयोग करना-यह एषणा समिति है ।

(४) आदान-निक्षेपणा समिति– आवश्यक उपधि या परिस्थितिक

उपधि-वस्त्र,पात्र,रजोहरण,पुस्तक,द ड़ आदि भूमि को स्पर्श करते हुए रखना चाहिये अर्थात् ऊँचे से गिराते हुए नहीं रखना। साथ ही पहले उस भूमि को आ खों से देखना फिर रखना। इसी प्रकार सोने, उठने, बैठने में या किसी वस्तु को उठाने में शीघ्रता एव आलस्य नहीं होना चाहिये, यह आदान-निक्षेप समिति है ।

(५) उच्चार प्रश्रवण परिठावणिया समिति- मल-मूत्र आदि परठने योग्य पदार्थों को यतना पूर्वक परठना। परठने का स्थान जीवों से रहित एव अचित्त हो और किसी को भी पीड़ाकारी न हो ऐसा विवेक रखना, यह परिष्ठापनिका समिति है।

प्रश्न-३ : तीन गुप्ति का क्या स्वरूप है ?

उत्तर- स यम जीवन एव शरीर के आवश्यक कार्यों को यतना से करना समिति है और मन वचन काया की प्रवृत्तियों को अल्प, अल्पतम करना उत्तरोत्तर सीमित करते रहना यह **गुप्ति** है। **(१) मनगुप्ति-**चार प्रकार के सत्य असत्यादि मन से तथा मन स ब धी आर भ समार भ से निवृत्त होना, मनगुप्ति है। **(२) वचनगुप्ति-** सत्य आदि चार प्रकार वचन से और वचन स ब धी आर भ समार भ को घटाना या उससे पूर्ण निवृत्त होना, मौन रखना वचनगुप्ति है। **(३) कायगुप्ति-** उठना, बैठना, चलना, उल्ल घन करना आदि काया की प्रवृत्ति घटाना निय त्रण करना तथा काया से स र भ समार भ आर भ का त्याग करना कायगुप्ति है। अ त में गाथा-२६ में बताया गया है कि ये पाँच समितियाँ चारित्र की प्रवृत्ति रूप है और गुप्ति स पूर्ण अशुभ से निवृत्ति रूप है। इनका सम्यक् आराधन करने वाला प ड़ित पुरुष शीघ्र स सार से मुक्त हो जाता है ।

अध्ययन-२५ : जयघोष-विजयघोष

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इस अध्ययन में जयघोष और विजयघोष ब्राह्मण का वर्णन है। दोनों सगे भाई थे। बड़े भाई जयघोष ने दीक्षा ले ली और विजयघोष ब्राह्मण धर्म का पालन करता था। एक बार जयघोष मुनि भाई की यज्ञ शाला में भिक्षा लेने आये। आहार-दान के विषय में दोनों भाईयों में

वार्तालाप हुआ। मुनि ने सच्चे ब्राह्मण का स्वरूप समझाया। अ त में विजयघोष आहार देने को तैयार हुआ। मुनि ने कहा मुझे भिक्षा लेने से कोई प्रयोजन नहीं है। तूँ शीघ्र स यम ग्रहण कर, यही मेरा उद्देश्य है। मुनि ने उपदेश दिया और बोध पाकर विजयघोष भी मुनि बन गया। दोनों भाई मोक्षगामी हुए ।

प्रश्न-२ : दोनों में आहार-दान स ब ध में क्या चर्चा हुई ?

उत्तर- जयघोष मुनि के मासखमण का पारणा था। फिर भी विजयघोष भाई ने स्पष्ट कह दिया आप अन्यत्र जाओ, मैं आपको भिक्षा नहीं दूँगा। यह यज्ञ का भोजन नियमानुसार ब्राह्मणों को दिया जाता है जो वेदों के ज्ञाता, यज्ञार्थी, ज्योतिषा ग के ज्ञाता और धर्म के पारगामी हो तथा स्व-पर का कल्याण करने में समर्थ हो उसी को यज्ञ का भोजन दिया जाता है।

मुनि ने अपने भाई के कल्याण के लिये कहा कि- तुम वेद की, यज्ञ की, नक्षत्रों की तथा धर्म की मुख्यता-प्रमुखता को जानते ही नहीं हो। अगर जानते हो तो बोलो। इस आक्षेप वचन से विजयघोष ब्राह्मण ठ ड़ा पड़ गया, बोला कि मैं तो कुछ भी उत्तर नहीं जानता, आप ही सब कुछ बतावें। मुनि ने कहा- तप एव ध्यान रूपी अग्नि में कर्मों की आहुति देना ही सच्चा अग्नि होम है। ऐसा भाव यज्ञ का करने वाला यज्ञार्थी ही वेद में प्रमुख है, ज्योतिष म ड़ल में प्रमुख चन्द्र है और धर्म में प्रमुख वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रभु है ।

प्रश्न-३ : सच्चे ब्राह्मण का स्वरूप जयघोष मुनि ने किस प्रकार समझाया ?

उत्तर- जो किसी भी व्यक्ति में स्नेह आसक्ति नहीं रखता है किन्तु आर्यवचन-स यम की आज्ञाओं में रमण करता है। निर्मल हृदय होकर रागद्वेष और भय से दूर रहता है। कषायों और शरीर को कृश करता है, हिंसा, झूठ, अदत्त, कुशील का सर्वथा त्याग करता है। कमल के समान भोगों से अलिप्त रहता है, वह ब्राह्मण है। अलोलुप, निर्दोष भिक्षा जीवी, अकिंचन(स यमोपकरण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रखने वाला) और गृहस्थों के परिचय तथा आसक्ति से रहित है, वह ब्राह्मण है।

वेद पशुवध का विधान करते हैं और यज्ञ तो हिंसाकारी स्पष्ट

है। अतः दुर्गति में जाते हुए प्राणी की रक्षा नहीं कर सकते। केवल सिर मुंड़न से कोई श्रमण नहीं हो जाता और ओम-ओम करने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता किन्तु समभाव धारण करने से श्रमण और ब्रह्मचर्य धारण करने से ब्राह्मण होता है। ज्ञान का अध्ययन करने से मुनि एव निष्काम तप करने से तपस्वी होता है। यदि किसी दिवाल पर गीले और सूखे मिट्टी के ढ़ेलों को फैंका जाय तो जो गीला है वह दीवाल पर चिपक जाता है और सूखा है वह नहीं चिपकता है, इसी प्रकार काम लालसा वाले जीव स सार में फँसते हैं, विरक्त जीव स सार से मुक्त हो जाते हैं। इस स पूर्ण उपदेश से विजयघोष को वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह भाई मुनि के पास दीक्षित हो गया।

अध्ययन-२६ : समाचारी

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें श्रमणों की दस प्रकार की नियमित समाचारी का (समाचरणों का)कथन करके सूर्योदय से सूर्यास्त तक एव सूर्यास्त से सूर्योदय तक यों पूरे अहोरात्र की दैनिन्दिनी कही गई है। उसमें भी प्रतिलेखना स ब धी विधिदोष, आहार करने के एव आहार छोड़ने के ६-६ कारणों का स्पष्टीकरण किया गया है। देनिन्दिनी भी पोरसी काल के आधार से कही गई है। अतः पोरसी काल को जानने का ज्ञान भी दिया गया है।

प्रश्न-२ : दस प्रकार की समाचारी कौन सी कही गई है ?

उत्तर- (१) भिक्षु को उपाश्रय से बाहर जाते समय **आवस्सहि** शब्द का उच्चारण करना, जिसका अर्थ है कि मैं स यम के आवश्यक प्रयोजन से ही बाहर जा रहा हूँ।(२) उपाश्रय में प्रवेश करते समय **निस्सहि** शब्द का उच्चारण करना चाहिये अर्थात् मैं अपने कार्य से निवृत होकर आ गया हूँ।(३-४) स्वय का या अन्य का प्रत्येक कार्य गुरु की आज्ञा लेकर करना। (५) प्राप्त आहारादि का अन्य को निम त्रण करना।(६) ज्ञानादि ग्रहण करना हो तो गुरु आदि से ऐसा कहना कि आपकी इच्छा हो तो मुझे ज्ञान आदि दीजिए। (७) भूल हो जाय तो ज्ञात होने पर "मिच्छामि दुक्कड़ं" बोलना।(८) गुरु के वचनों को सुनते समय **त्तहत्ति** शब्द उच्चारण करना एव उन्हें स्वीकारना।(९) गुरु की सेवा के लिये

सदा तत्पर रहना।(१०) श्रुत अध्ययन के लिये किसी भी आचार्य-उपाध्याय के समीप निरन्तर रहकर अध्ययन करना।

प्रश्न-३ : पूरे अहोरात्र की दिनचर्या किस प्रकार बताई है ?

उत्तर- भिक्षु को सुबह में अर्थात् रात्रि के चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करना चाहिये। फिर लाल दिशा होने के समय प्रतिक्रमण करना चाहिये। सूर्योदय होने के पश्चात् प्रतिलेखन कर गुरु आज्ञा लेकर अन्य कोई सेवा कार्य न हो तो प्रथम प्रहर तक स्वाध्याय करना। प्रथम प्रहर के अन्त में पात्र प्रतिलेखन करना। दूसरे प्रहर में ध्यान करना अर्थात् स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण या आत्म अनुप्रेक्षा करना। तृतीय प्रहर में भिक्षादि शारीरिक कर्तव्यों से निवृत्त होना। चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में पात्र प्रतिलेखन कर उन्हें बा ध कर रख देना एव अन्य उपकरणों की प्रतिलेखना करना। चतुर्थ प्रहर के अ त में रात्रि के लिये शयनभूमि एव मल-मूत्र त्यागने की भूमि का प्रतिलेखन करना। सूर्यास्त के समय से लेकर लाल दिशा रहे उस समय तक प्रतिक्रमण करना। प्रतिक्रमण समाप्ति पर दिशावलोकन कर स्वाध्याय का समय आ जाने पर प्रथम प्रहर तक स्वाध्याय करना। द्वितीय प्रहर के प्रार भ में ध्यान करके विधि पूर्वक शयन करना। तृतीय प्रहर के अ त में निद्रा एव शयन से निवृत हो जाना एव ध्यान आदि करके स्वस्थ हो जाना। फिर चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करना। यह भिक्षु की स क्षिप्त दिनचर्या है।

प्रश्न-४ : प्रतिलेखना स ब धी विधि दोष क्या कहे गये हैं ?

उत्तर- इस अध्ययन की गाथा २३ से ३१ तक प्रतिलेखना स ब धी विधि दोषों का वर्णन इस प्रकार है- (१) सर्व प्रथम मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करे। फिर पू जणी की और रजोहरण की फलियों को अ गुलियों के बीच ले-ले कर प्रतिलेखन करे फिर वस्त्रों की चद्दर आदि की प्रतिलेखन करे ॥२३॥(२) उकड़ू आसन से बैठना, वस्त्र को भूमि से ऊँचा रखना, वस्त्र को स्थिर पकड़ना, उतावल नहीं करना, वस्त्र को ध्यान से देखना, जरूरत लगे तो हलका सा ख खेरना या पू जना **॥२४॥** (३) वस्त्र को ज्यादा हिलाना-नचाना नहीं, वस्त्र बीच में मुड़ा (सलयुक्त)नहीं रहे, अयतना से झटके नहीं, दिवाल के नहीं लगने दे, पूरी चादर को ६ विभाग में देखे, एक विभाग में ऊपर नीचे बीच में यों

तीन दृष्टि करे, तो तीन विभाग में ९ दृष्टि(९ खोड़ा) और पूरी चद्दर में १८ खोड़ा(दृष्टि) करे। जरूरी हो तो कोई जीव आदि को हाथ से दूर करे ॥२५॥ **(४)** विधि सहित पूरी नहीं करे, अधूरी प्रतिलेखना करे, प्रतिलेख्यमान वस्त्र को शरीर-हाथ-पाँव के नीचे दबावे, वस्त्र को इधर उधर स्पर्श करावे, किसी के अड़ावे, वस्त्र को झटके, फटके, फेंके । योग्य आसन से नहीं बैठे। ये प्रमाद प्रतिलेखन है॥२६॥

(५) वस्त्र को ढ़ीला पकड़े, वस्त्र टेढ़ामेढ़ा लटकता रहे, शरीर हाथ जमीन को वस्त्र रगड़ते चले, एक दृष्टि में स पूर्ण वस्त्र को देख ले, अत्यधिक झाटके अर्थात् पू जणी-हाथ का उपयोग नहीं करे। दृष्टि, विभाग के प्रमाण में आलस करे, पहले एकाग्रचित नहीं रखे फिर गिनती करके याद करे ॥२७॥ ये दोष हैं। **(६)** वस्त्र प्रतिलेखन की जो विधि है उसमें विभाग-दृष्टि में कम, अधिक, विपरीत नहीं करे ॥२८॥**(७)** प्रतिलेखना के समय किसी से बातें नहीं करे। उपदेश और प्रत्याख्यान देना आदि नहीं करे। वाचना स्वाध्याय भी नहीं करे ॥२९॥**(८)** उपर कही अविधि-प्रमाद से प्रतिलेखन करने में ६ काय जीवों की विराधना स भव है और सही विधि पूर्वक उपयोग युक्त करने में ६ काय जीवों की रक्षा होती है ॥३०-३१॥

प्रश्न-५ : मुनि के आहार करने एव छोड़ने के कितने कारण है ?

उत्तर- ६ कारण उपस्थित लगने पर मुनि आहार करे, वे कारण इस प्रकार है-(१) भूख लगने से (२-३) आ खों की रोशनी बराबर रखने हेतु-ईर्या समिति के सम्यक् पालन के लिये (४) स यम नियमों के बराबर पालन के लिये या क्षमता कायम रखने के लिये (५) जीवन रक्षा हेतु (६) धर्मचि तन आराधन की स्फूर्ति के लिये ।

६ कारण से मुनि आहार त्याग करे, वे इस प्रकार है- (१) रोगात क आने पर (२) उपसर्ग-आफत आने पर (३) ब्रह्मचर्य की समाधि-सुरक्षा के लिये (४) जीवोत्पत्ति ज्यादा हो जाय या वर्षा हो तो जीव रक्षा के लिये आहार के लिये न जावे (५) तपस्या करना हो तो (६) स लेखना-स थारा करना हो तो ।

प्रश्न-६ : मुनि पोरसी का परिज्ञान किस प्रकार करे ?

उत्तर- दिन में सूर्य के आकाश में गमन क्षेत्र से अथवा अपने घुटने

तक के पाँव की छाया के माप से पोरसी के समय का ज्ञान करे एव रात्रि में नक्षत्रों के आकाश में गमन क्षेत्र के अनुमान से करे ।

अषाढ़ महीने में घुटने तक के पैर की छाया दो पाँव के बराबर होती है। जो प्रत्येक सप्ताह में एक अ गुल बढती है, महीने में ४ अ गुल और तीन महीनों में १२ अ गुल =१ पाँव जितनी बढ़ती है। इसलिये आसोज महीने में तीन और पोष महीने में ४ पाँव की छाया बनती है। पोष महीने के बाद फिर एक-एक अ गुल क्रमशः घटती है, जिससे चैत्र महीने में तीन पाँव की और पुनः अषाढ़ महीने में दो पाँव प्रमाण छाया होती है। छाया मापने के लिये दक्षिण दिशा तरफ मुख करके खडे रहा जाता है और पूर्व-पश्चिम में घुटने तक के पैर की छाया को चिन्हित करके मापा जाता है। आजकाल **घडियों** की सुविधा हो जाने से यह मापने की पद्धति का ज्ञान-अभ्यास कम हो गया है ।

नक्षत्र २८ है, उसमें से एक एक नक्षत्र क्रमशः स पूर्ण रात्रि में आकाश में पूर्व से पश्चिम दिशा तरफ गमन करते हैं। उन्हें रात्रिवाहक नक्षत्र कहा जाता है। उनके गमनक्षेत्र-आकाश के माप से समय का अनुमान किया जाता है। इस अनुमान का ज्ञान गुरुगम से और अनुभव से किया जाता है। रात्रिवाहक नक्षत्रों का खुलासा सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र से जानना चाहिये। वहाँ पर एक वर्ष के दिनों को २८ नक्षत्रों में बा टा गया है। जिसे याद रखकर उस उस नक्षत्र को उस महिने के दिनों में आकाश में रात्रि में देखा जाता है। इस प्रकार दिन में सूर्य के आधार से और रात्रि में नक्षत्रों के आधार से पोरसी का ज्ञान किया जाता है ।

अध्ययन-२७ : गर्गाचार्य

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- स्थविर गर्गाचार्य के अशुभकर्म के उदय से सभी शिष्य उनके लिये असमाधि उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं। उनकी आज्ञा पालन एव चित्त आराधन करने में एक भी साधु सफल नहीं होता है। अत में निराश होकर गर्गाचार्य शिष्यों को छोड़कर अकेले ही स यम की

आराधना करते हुए परम शा ति का अनुभव करते हैं एव कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करते हैं ।

प्रश्न-२ : गर्गाचार्य के वर्णित जीवन से क्या निष्कर्ष निकलता है?

उत्तर- गलियार बैल और गाड़ीवान जिस प्रकार दोनों ही परस्पर दु:खी हो जाते हैं उसी प्रकार अविनीत शिष्य और गुरु दोनों ही दु:खी हो जाते हैं। उनके माया, झूठ, कलह, मारपीट आदि प्रवृत्तियों से स यम का नाश हो जाता है। अतः अशुभ कर्मों का या अनादेय नामकर्म का तीव्र उदय जानकर ऐसे समय में योग्य अवसर देखकर एकाकी विहार कर आत्मकल्याण साधना ही हितकर होता है ।

अविनीत साधु कोई घम ड़ी होते हैं, तो कोई दीर्घ क्रोधी होते हैं, कोई भिक्षार्थ जाने में आलसी होते हैं, कोई कुछ भी शिक्षा प्रेरणा सुनना ही नहीं चाहते, कोई बीच में बोलते, कोई सामने जवाब देते हुए कुतर्क करते हैं, कोई सदा प्रतिकूल वर्ताव करते रहते हैं। ऐसे कुलक्षणों का मोक्षार्थी मुनि को सदा परित्याग करना चाहिये तथा ऐसे कुलक्षणी साथियों का भी त्याग कर देना चाहिये।

अध्ययन-२८ : मोक्षमार्ग

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप चतुर्विधि धर्म से स युक्त यह मोक्ष मार्ग है। इन चारों की युगपत् आराधना करना ही मोक्ष प्राप्ति का राजमार्ग है। इस अध्ययन में इन चारों का विश्लेषण किया गया है। इसलिये अध्ययन का नाम भी मोक्षमार्ग रखा गया है ।

प्रश्न-२ : ज्ञान के स्वरूप में यहाँ क्या दर्शाया गया है ?

उत्तर- मति आदि ज्ञान के ५ भेद गिनाये हैं। द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप बताया है। गुणों का आश्रय-आधार वह द्रव्य है। एक द्रव्य के आश्रय में अनेक गुण रहते है और पर्यायें, द्रव्य-गुण दोनों के आश्रय से रहती है। ६ द्रव्यों का स क्षिप्त परिचय दिया है जिसमें जीव-अजीव का लक्षण स्पष्ट किया गया है। जीव का लक्षण भी दो अपेक्षाओं से कहा है- (१) सामान्य जीव उपयोग लक्षण वाला, ज्ञान-दर्शन गुण वाला,

सुख-दु:ख का अनुभव करने वाला है। अपेक्षा से ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये गुण भी स सारी जीव की अपेक्षा होते हैं। (२) शब्द, अ धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप और वर्णादि ये पुद्‌गल द्रव्य के लक्षण है। मिलना, बिछुड़ना, स ख्या, स स्थान, स योग, विभाग ये पर्यव के लक्षण है।

प्रश्न-३ : दर्शन के स्वरूप में किस प्रकार समझाया है ?

उत्तर- जीवादि नव पदार्थों को जान कर उनकी यथार्थ श्रद्धा करना, यही समकित है। यह समकित भी जीव को १० प्रकार से प्राप्त होती है- (१) स्वभाविक खुद के ज्ञान चि तन से (२) उपदेश-प्रेरणा- समझाइस से (३) बड़े बुजुर्गों की आज्ञा से कि यह अपना धर्म है अथवा ज्ञानियों की आज्ञा समझ कर स्वीकारना (४) शास्त्र के अभ्यास से (५) बीज रुचि-थोड़े ज्ञान से एव उसका विस्तार होने से (६) श्रुत का निर तर पूर्ण अध्ययन से (७) सर्व द्रव्य, सर्व दृष्टि, सर्व नय, निक्षेप, प्रमाणचर्चा सहित विस्तार रुचि से होने वाली समकित (८) क्रिया- आचार पालन से सामायिक आदि व्रत-नियम, त्याग करते करते श्रद्धा होना (९) स क्षेप में अपना धर्म समझ कर श्रद्धा रखना, ज्ञानचर्चा का उपयोग नहीं लगाना (१०) अस्तिकाय धर्म अर्थात् षट द्रव्य, श्रुतधर्म और चारित्र धर्म वगैरह जिनशासन में अनुपम समझकर श्रद्धा करना ऐसा धर्म अन्यत्र स भव नहीं है ऐसा मान कर श्रद्धा करना ।

समकित महत्त्व- परमार्थ परिचय आदि समकित की पुष्टि के चार प्रकार है । समकित के बिना अकेला चारित्र हो नहीं सकता। दोनों साथ में हो सकते हैं। अकेली समकित, बिना चारित्र के एक दो भव तक रह सकती है ज्यादा नहीं रहती ।

समकित के आठ अ ग- (१) निश कित रहना (२) आका क्षाओं रहित होना (३) धर्म फल में स देह रहित रहना (४) ज्ञान वृद्धि करना (५) सुस गति से श्रद्धा पुष्ट करना (६) स्वय स्थिर-दृढ़ होना, दूसरों को भी स्थिर करना (७) धर्म का प्रेम बढ़ाना (८) धर्म की दलाली प्रेरणा प्रभावना प्रचार करना।

प्रश्न-४ : चारित्र एव तप रूप मोक्षमार्ग में क्या समझाया है ?

उत्तर- सामायिक आदि ५ चारित्र कहे है, जिसमें छद्मस्थ और केवली

दोनों के चारित्र है। **चयरित्त कर** –कर्मों के स ग्रह को कम करने वाले चारित्र कहे जाते हैं। तप बाह्य आभ्य तर दो प्रकार का होता है। चारित्र और तप का विस्तार भगवती आदि सूत्रों में होने से यहाँ स क्षिप्त में ही कह दिया गया है।

उपवास आदि बाह्यतप एव स्वाध्याय आदि आभ्य तर तप में यथाशक्ति यथावसर क्रमशः वृद्धि करते रहने का प्रयत्न करना, शरीर के ममत्व को दूर कर कर्म क्षय करने में स पूर्ण आत्मशक्ति को झोंक देना, **"देह पातयामि कार्यं साधयामि"** अथवा **"देह दुक्ख महाफल "** के सिद्धा त को आत्मशात कर देना **'तपाराधना'** है। ध्यान के बाद अ तिम तप **व्युत्सर्ग** है इसमें मन, वचन, काया, कषाय, गण समूह आदि का एव शरीर के ममत्व का तथा आहारादि का व्युत्सर्जन (त्याग) किया जाता है ।

ज्ञान से तत्त्वों को, आश्रव-स वर को जानना । दर्शन से उनके विषय में यथावत श्रद्धान करना, चारित्र से नये कर्म ब ध को रोकना और तप से पूर्व कर्मों का क्षय करना, इस प्रकार चारों के सुमेल से ही मोक्ष की परिपूर्ण साधना होती है। किसी भी एक के अभाव में साधना की सफलता सम्भव नहीं है। महर्षि कर्मक्षय करने के लिये चतुर्विध मोक्ष मार्ग में पराक्रम करते हैं ।

अध्ययन-२९ : सम्यक् पराक्रम

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें सम्यक् पराक्रम करने योग्य ७३ प्रश्नोत्तर द्वारा अनेक महत्त्व पूर्ण धर्म आराधना के तत्त्वों का (गुणों का) माहात्म्य समझाया है। इस अध्ययन के नाम के विषय में दो पर पराएँ है- (१) सम्यक्त्व पराक्रम और (२) सम्यक् पराक्रम । यहाँ समझना यह चाहिये कि **पराक्रम** सम्यक् या असम्यक् दो तरह का हो सकता है। मोक्षमार्ग में जो पराक्रम होता है वह सम्यक् होता है। यहाँ मोक्ष आराधना के तत्त्वों के फल-परिणाम की पृच्छा की गई है इसलिये **सम्यक् पराक्रम** यह नाम प्रास गिक और सुस गत है।

प्रश्न-२ : ७३ सम्यक् पराक्रम के बोल और उनका आध्यात्मिक फल स क्षिप्त में किस प्रकार है ?

उत्तर- (१) वैराग्य भावों की वृद्धि करने एव स सार से उदासीन बनने से- (१) उत्तम धर्म श्रद्धा की प्राप्ति होती है (२) उससे पुनः वैराग्य की वृद्धि होती है (३) तीव्र कषाय भावों की समाप्ति एव (४) नये कर्मब ध की अल्पता हो जाती है (५) सम्यक्त्व की उत्कृष्ट आराधना करने वाले कई जीव उसी भव में और कई जीव तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

(२) निवृत्ति की वृद्धि और त्याग व्रत की वृद्धि करने से - (१) पदार्थों के प्रति अनाशक्ति भाव पैदा होता है (२) इन्द्रिय विषयों में विरक्ति भाव हो जाता है (३) हिंसादि प्रवृत्तियों का त्याग होता है (४) एव स सार का अ त और मोक्ष की उपलब्धि होती है ।

(३) धर्म की सच्ची श्रद्धा हो जाने पर- (१) सुख सुविधा के प्रति लगाव की कमी होती है (२) स यम को स्वीकार किया जाता है (३) शारीरिक मानसिक दुःखों का विच्छेद हो जाता है और (४) बाधारहित सुख की प्राप्ति होती है।

(४)गुरु एव साधुओं की सेवा से- (१) कर्तव्य का पालन होता है (२) आशातनाओं से आत्मा की रक्षा होती है (३) आशातना नहीं होने से दुर्गति का निरोध होता है (४) उनकी गुण कीर्ति, भक्ति-बहुमान करने से सद्गति की प्राप्ति या सिद्ध गति की प्राप्ति होती है (५) विनयमूलक अनेक गुणों की उपलब्धि होती है (६) और अन्य जीवों के लिये विनय सेवा का आदर्श उपलब्ध होता है।

(५) अपने दोषों की आलोचना करने से- (१) मोक्षमार्ग में विघ्न करने वाले और अन त स सार की वृद्धि करने वाले ऐसे माया, निदान और मिथ्यात्व रूप तीन शल्यों का नाश होता है । सरल भावों की उपलब्धि होती है।

(६) आत्मनिन्दा अर्थात् अपनी भूलों के प्रति खेद अनुभव करने से- (१) पश्चाताप होकर विरक्ति भाव की वृद्धि होती है (२) उससे गुणस्थानों की क्रमशः बढ़ोतरी होकर मोह कर्म का क्षय होता है ।

(७) दूसरों के समक्ष अपनी भूल प्रकट करने से- जीव अपने अनादर

असत्कारजन्य कर्मों की उदीरणा करता है और क्रमशः घातीकर्मों का क्षय करता है।

(८) सामयिक स्वीकार करने से- पाप प्रवृत्तियाँ छूट जाती है ।

(९) लोगस्स पाठ(२४ तीर्थंकर की स्तुति)करने से- सम्यक्त्व की विशुद्धि होती है ।

(१०) व दन विनय करने से- (१) पापकर्मों का क्षय एव पुण्यकर्मों का उपार्जन होता है (२) उसकी आज्ञा को लोग शिरोधार्य करें ऐसे सौभाग्य को और जनप्रियता को प्राप्त करता है।

(११) प्रतिक्रमण करने से- (१) लिये हुए व्रत प्रत्याख्यानों की शुद्धि होती है (२) जिससे चारित्र शुद्ध होता है (३) समिति गुप्ति रूप अष्ट प्रवचनमाता में जागरुकता बढ़ती है (४) भाव युक्त प्रतिक्रमण करने से स यम में तल्लीनता की वृद्धि होती है एव (५) मानसिक निर्मलता की उपलब्धि होती है।

(१२) कायोत्सर्ग करने से अर्थात् मन वचन तथा शरीर का पूर्णतः व्युत्सर्जन कर देने से- (१) भार नीचे रख देने वाले भारवाहक के समान वह साधक हल्का हो जाता है (२) प्रशस्त ध्यान में लीन होकर उत्तरोत्तर सुख पूर्वक विचरण करता है।

(१३) प्रत्याख्यान करने से- आश्रवों का निरोध होता है जिससे कर्मब ध कम हो जाता है।

(१४) सिद्ध स्तुति-णमोत्थुण का पाठ करने से- (१) ज्ञान दर्शन चारित्र स ब धी विशिष्ट बोधि(ज्ञान)की प्राप्ति होती है (२) एव ऐसी बोधि से स पन्न जीव आराधना के योग्य बनता है।

(१५) प्रायश्चित्त ग्रहण करने से- (१) चारित्र निरतिचार हो जाता है (२) पापाचरणों का विशोधन हो जाता है (३) सम्यग् ज्ञान की उपलब्धि और चारित्र की सम्यग् आराधना हो जाती है।

(१६) स्वाध्याय काल आया या नहीं यह जानकारी करने से एव अस्वाध्याय के कारणों की निर्णित जानकारी करने से- ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय होता है।

(१७) क्षमा याचना कर लेने से- (१) आल्हादपूर्ण मनोभाव हो

जाता है अर्थात् चित्त की प्रसन्नता हो जाती है (२) सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव की उपलब्धि होती है (३) मन की निर्मलता हो जाने पर वह प्राणी सर्वत्र निर्भय बन जाता है।

(१८) स्वाध्याय से- ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा होती है।

(१९) वाचना-आचार्य या उपाध्याय से मूल पाठ एव अर्थ की वाचना लेने से- (१) सर्वतोमुखी कर्मों का क्षय होता है (२) वाचना लेने वाला श्रुत की उपेक्षा दोष से और आशातना दोष से बच जाता है अर्थात् सूत्रों की वाचना लेने वाले की श्रुत के प्रति भक्तिभाव की वृद्धि होती है और सम्यग् शास्त्र वा चना लेकर बहुश्रुत हो जाने से उनके द्वारा सहसा अज्ञान दोष से श्रुत की आशातना नहीं होती है (३) वह सदा श्रुतानुसार सत्य निर्णय करने वाला बन जाता है तथा (४) वह भगवान के शासन का अवल बन भूत बन जाता है (५) जिससे उसको महान निर्जरा लाभ और मुक्ति लाभ होता है।

(२०) सूत्रार्थ के विषय में प्रश्न पूछकर समाधान प्राप्त करने से- (१) सूत्रार्थ ज्ञान की विशुद्धि होती है (२) स शयों का निराकरण हो जाता है फलतः मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का क्षय होता है ।

(२१) सूत्रों की परावर्तना करने से- (१) स्मृति की पुष्टि होती है (२) भूला हुआ ज्ञान स्थिर हो जाता है (३) पदानुसारिणी बुद्धि का विकास हो जाता है अर्थात् एक पद के उच्चारण से अगला पद स्वतः याद आ जाता है।

(२२) सूत्रा तरगत तत्त्वों की मन में विचारणा चि तवना करने से- (१) कर्म शिथिल बनते हैं, स क्षिप्त होते हैं, म द हो जाते है और अल्प हो जाते हैं (२) कर्मब ध से और स सार से शीघ्र मुक्ति हो जाती है ।

(२३) धर्मोपदेश देने से- (१) स्वय के कर्मों की महान निर्जरा होती है (२) जिनशासन की भी महति प्रभावना होती है (३) आगामी भवों में महाभाग्यशाली होने के कर्मों का उपार्जन करता है।

(२४) श्रुत की सम्यक् आराधना करने से- (१) अज्ञान का क्षय हो जाता है और (२) वह ज्ञानी कहीं भी स क्लेश-चित्त की असमाधि नहीं पाता है।

(२५) मन को एकाग्र करने से– चित्त की च चलता समाप्त होती है।

(२६) स यम लेने से– प्रमुख आश्रवकर्म आने के रास्ते ब द हो जाते हैं अर्थात् हिंसादि बड़े-बड़े पापों का लगभग पूर्णतया त्याग हो जाता है।

(२७) विविध(१२ प्रकार की)तपस्या करने से– पूर्व बद्ध कर्म आत्मा से अलग हो जाते हैं ।

(२८) अल्पकर्मा हो जाने से–वह क्रमशः योग निरोध अवस्था को प्राप्त करता है। फिर शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

(२९) शा तिपूर्वक अर्थात् उतावल उद्वेग के बिना मन वचन एव काया की प्रवृति करने से– (१) जीव उत्सुकता रहित एव शा ति प्रिय स्वभाव और व्यवहार वाला बनता है (२) शा ति पूर्वक प्रवृति करने वाला ही वास्तव में प्राणियों की पूर्ण अनुक पा कर सकता है (३) ऐसा वह अनुक पा पालक साधक, हाय-हाय और भड़ाभड़ युक्त प्रवृत्तिएँ नहीं करता है (४) जिससे वह शोक मुक्त रहता है और (५) चारित्र मोहकर्मों का विशेष रूप से क्षय करता है।

(३०) मन की अनाशक्ति हो जाने से– (१) प्राणी बाह्य स सर्गों से और उससे उत्पन्न होने वाली परिणतियों से मुक्त हो जाता है (२) ऐसा साधक सदा एकत्व भाव में ही तल्लीन बन उसी में दत्तचित्त रहता है (३) वह रात दिन (प्रतिक्षण)प्रतिब धों से रहित होकर आत्मभावों में रहता है एव अप्रमत्त भावों से युक्त रहकर सदा अ तर्मुखी रहता है।

(३१) जनाकुलता एव स्त्री आदि से रहित एका त स्थान के सेवन से– (१) चारित्र की रक्षा होती है (२) ऐसा चारित्र रक्षक साधक पौष्टिक आहार का त्याग करता है (३) दृढ़ चारित्र वाला बनता है (४) एकान्त में ही रमण करने वाला होता है (५) अ तःकरण से मोक्ष पथिक बन कर कर्मों की गाँठ को तोड़ देता है

(३२) इन्द्रियों और मन को विषयों से दूर रखने से– (१) जीव नये-नये पापकर्म नहीं करने में ही स तुष्ठ रहता है अर्थात् वह पापाचरण करने में उत्साह रहित हो जाता है (२) पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय करके स सार अटवी को पार कर मुक्त हो जाता है।

(३३) सामुहिक आहार पानी का त्याग करने से– (१) श्रमण परावल बन से मुक्त होता है (२) स्वावलम्बी बनता है (३) वह

स्वय के लाभ से स तुष्ट रहने में अभ्यस्त हो जाता है (४) परलाभ की आशाओं से मुक्त हो जाता है (५) स यम ग्रहण करना जीवन की प्रथम सुख शय्या है,तो उसमें सामुहिक आहार का त्याग करना जीवन की दूसरी सुखशय्या है अर्थात् स यम की साधना के साथ सामुहिक आहार का त्याग करके साधक अनुपम सुख समाधि प्राप्त करता है।

(३४) स यम जीवन में शरीरोपयोगी वस्त्रादि उपकरणों को अल्प रखने या त्याग करने से– (१) जीव को उपधि स ब धी लाना, रखना, स भालना, प्रतिलेखन करना एव समय पर उनके स ब धी अनेक सुधार स स्कार आदि कार्यों के करने से मुक्ति मिलती है (२) जिससे प्रमाद और विराधना घटती है (३) स्वाध्याय की क्षति का बचाव होता है (४) उपधि स ब धी आका क्षाएँ नहीं रहती है (५) ऐसे अभ्यस्त जीव को उपधि की अनुपलब्धि होने पर कभी स क्लेश नहीं होता है।

(३५) आहार त्याग करते रहने से अथवा आहार को घटाते रहने से– (१) जीने के मोह का क्रमशः छेदन होता है (२) वह जीव आहार की अनुपलब्धि होने पर स क्लेश को प्राप्त नहीं होता है किन्तु (३) उस परिस्थिति में भी प्रसन्नचित्त रह सकता है (४) दीन नहीं बनता है।

(३६) कषायों के प्रत्याख्यान का अभ्यास करते रहने से– (१) प्राणी वीतराग भाव के समकक्ष भावों की उपलब्धि करता है (२) ऐसा जीव सुख-दुःख दोनों अवस्था में समपरिणामी रहता है अर्थात् हर्ष और शोक से वह अपनी आत्मा को अलग रख लेता है।

(३७) योग प्रवृत्तियों को अल्पतम करने या त्याग करने से– (१) जीव योग रहित और आश्रव रहित अर्थात् (२) कर्मब ध रहित अवस्था को प्राप्त करता है (३) पूर्व कर्मों का क्षय कर देता है।

(३८) शरीर का पूर्णतया त्याग कर देने से– (१) प्राणी आत्मा को सिद्ध अवस्था के गुणों से युक्त बना लेता है एव (२) लोकाग्र में पहुँच कर आत्म स्वरूप में स्थिर हो जाता है (३) जन्म-मरण एव स सार भ्रमण से सदा के लिये छूट जाता है।

(३९) किसी भी कार्य में दूसरों का सहयोग लेने का त्याग कर देने से अर्थात् समूह में रहते हुए भी अपना समस्त कार्य स्वय करने रूप एकत्वचर्या में रहने से– (१) साधक सदा एकत्व भाव

में रमण करता है। एकत्व की साधना से अभ्यस्त हो जाता है (२) अनेक प्रकार की अशा ति से एव कलह, कषाय, कोलाहल और तू -तू आदि की प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है (३) उसे स यम, स वर और समाधि की विशिष्टतम उपलब्धि होती है ।

(४०) आजीवन अनशन करने से अर्थात् मृत्यु समय निकट जानकर स्वतः स थारा धारण कर लेने से– भव परम्परा की अल्पता हो जाती है अर्थात् वह प्राणी भव भ्रमण घटाकर अत्यल्प भवों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।

(४१) सम्पूर्ण देहिक प्रवृत्तियों का निरोध करने से अर्थात् देह रहते हुए भी देहातीत बन जाने से– वह केवलज्ञानी योग निरोध अवस्था को प्राप्त कर चार अघाति कर्म क्षय करके मुक्त हो जाता है ।

(४२) वेश के अनुसार ही आचार विधि का ईमानदारी पूर्वक पालन करने से अथवा अचेलता धारण करने से– (१) साधक हल्केपन को प्राप्त करता है (२) स्पष्ट एव विश्वस्त लि ग वाला होता है (३) अप्रमत्त भावों की वृद्धि होती है (४) वह साधक जितेन्द्रिय, समितिव त एव विपुल तप वाला हो जाता है (५) सभी प्राणियों के लिये विश्वसनीय हो जाता है ।

(४३) साधुओं की सेवा सुश्रुषा करने से–तीर्थंकर नामकर्म ब ध रूप पुण्योपार्जन होता है ।

(४४) विनयादि सर्व गुणों से स पन्न हो जाने से– (१) जीव उत्तरोत्तर मुक्ति गमन के निकट हो जाता है (२) शारीरिक मानसिक दु:खों का भागी नहीं बनता है ।

(४५) वीतराग भावों में रमण करने से– (१) जीव स्नेह एव तृष्णा के अनुब धनों से मुक्त हो जाता है (२) मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द रूप आदि के स योग होने पर भी सदा विरक्त भावों से निस्पृह बना रहता है।

(४६) क्षमा धारण करने से– व्यक्ति कष्ट उपसर्ग एव परीषहों के उपस्थित हो जाने पर दु:खी नहीं बनता अपितु परीषह जेता बनकर प्रसन्न रहता है ।

(४७) निर्लोभी बनकर रहने से– (१) प्राणी अकिंचन निष्परिग्रही और सच्चा स त(साधक) बन जाता है (२) ऐसे सच्चे साधक से अर्थ

लोलुपी लोग कुछ भी चाहना या याचना नहीं करते ।

(४८) सरलता धारण करने से– (१) भाषा में और काया में तथा भावों में सरलता एकमेक बन जाती है (२) ऐसे व्यक्ति का जीवन विवाद रहित बन जाता है (३) वह धर्म का सच्चा आराधक बनता है।

(४९) मृदुता, लघुता, नरमाई, कोमलता के स्वभाव को धारण करने से– (१) जीव उद्धत भाव या उद् ड़ स्वभाव वाला नहीं होता है (२) वह व्यक्ति आठ प्रकार के मद(घम ड़)के स्थानों का विनाश कर देता है ।

(५०) अ तरात्मा में सच्चाई धारण करने से– (१) जीव भावों की विशुद्धि को प्राप्त करता है (२) अर्हंत भाषित धर्म का और परलोक का आराधक होता है ।

(५१) ईमानदारी पूर्वक कार्य करने से– (१) जीव अपूर्व-अपूर्व कार्य करने की क्षमता को प्राप्त करता है (२) उसकी कथनी और करणी एक हो जाती है ।

(५२) मन वचन और काया की सच्चाई धारण करने से– जीव अपनी सभी प्रवृत्तियों को विशुद्ध करता है ।

(५३) मन का गोपन करने से अर्थात् अशुभ मन को रोक कर उसे शुभ रूप में परिणत करते रहने से– (१) जीव चित्त की एकाग्रता वाला बनता है (२) अशुभ स कल्पों से मन की रक्षा कर स यम की आराधना करता है ।

(५४) वचन का गोपन करने से अर्थात् मौनव्रत धारण करने से– (१) जीव विचार शून्यता को प्राप्त करता है अर्थात् घाटघड़ों से मुक्त बनने में अग्रसर होता है (२) उससे अध्यात्म योग और शुभ ध्यान की प्राप्ति होती है ।

(५५) काया के गोपन से अर्थात् अ गोपा गों के स गोपन से– (१) कायिक स्थिरता को प्राप्त करता है (२) एव पापाश्रवों का निरोध करता है ।

(५६) मन को आगम कथित भावों में भलीभाँति लगाने से– (१) जीव एकाग्रता और ज्ञान की विशिष्ट क्षमता को प्राप्त करता है (२) वह सम्यक्त्व की विशुद्धि और मिथ्यात्व का क्षय करता है ।

(५७) वाणी को स्वाध्याय में भलीभाँति लगाने से– (१) भाषा से स ब धित सम्यक्त्व के विषय की विशुद्धि होती है (२) उसे सुलभ बोधि की प्राप्ति होती है और दुर्लभ बोधि का क्षय होता है ।

(५८) स यम योगों में काया को भलीभाँति लगाने से– (१) चारित्र की विशुद्धि होती है और सर्व दु:खों से मुक्ति की प्राप्ति होती है ।

(५९) आगम ज्ञान से सम्पन्न बनने से– (१) साधक विशाल तत्त्वों का ज्ञाता बन जाता है (२) सूत्र ज्ञान से सम्पन्न जीव ड़ोरे युक्त सूई के समान स सार में सुरक्षित रहता है अर्थात् कहीं भी खोता या भटकता नहीं है (३) सिद्धा तो में कोविद बना हुआ वह ज्ञानी लोगों में प्रामाणिक एव आल बन भूत पुरुष माना जाता है ।

(६०) जिन प्रवचन में गाढ़ श्रद्धा सम्पन्न होने से– (१) प्राणी मिथ्यात्व का विच्छेद कर देता है (२) क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है अर्थात् उसका सम्यक्त्व रूपी दीपक कभी बुझता नहीं है तथा वह (३) ज्ञान दर्शन की उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ अणुत्तर ज्ञान दर्शन प्राप्त करता है।

(६१) चारित्र से सुसम्पन्न बनने से– जीव शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर अ त में मोक्ष प्राप्त करता है।

(६२-६६) पाँचों इन्द्रियों का निग्रह करने से–जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ इन्द्रिय विषयों के उपस्थित होने पर भी रागद्वेष और कर्मब ध नहीं करता।

(६७–७०) चारों कषायों पर विजय प्राप्त कर लेने से– (१) साधक क्रमश: क्षमा, नरमाई, सरलता और निर्लोभता गुण से सम्पन्न बन जाता है (२) तत्जन्य(तज्जन्य) कर्मब ध नहीं करता हुआ पूर्व कर्मों का क्षय करता है।

(७१-७३) रागद्वेष और मिथ्यात्व पाप पर विजय प्राप्त करने से अर्थात् इन परिणामों का क्षय कर देने से– (१) साधक रत्नत्रय की आराधना में उपस्थित होता है (२) फिर मोह कर्म आदि का क्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनता है (३) उसके केवल दो समय की स्थिति वाले शाता वेदनीय का ही ब ध होता है (४) अ तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर

केवली तीनों योग और श्वासोश्वास का निरोध करता है (५) जिससे उसके आत्मप्रदेश शरीर के दो तिहाई अवगाहना में स्थित हो जाते है अर्थात् फिर आत्म प्रदेशों का शरीर में भ्रमण भी ब द हो जाता है (६) अ त में स पूर्ण कर्म क्षय करके एव शरीर का त्याग करके वह जीव शाश्वत अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

सम्यक् पराक्रम नामक इस अध्ययन के इन स्थानों में साधक को यथाशक्ति यथासमय सम्यक् पराक्रम करते ही रहना चाहिये । ऐसा करने से ही स यम में उपस्थित होने वाला वह साधक आत्म कल्याण साध कर सदा के लिये कृतकृत्य बन जाता है।

प्रश्न–३ : इन ७३ प्रश्नों में मूलपाठ में कुछ क्रम–व्युत्क्रम है क्या?

उत्तर– इनमें १५, १६, १७ न बर के प्रश्न में व्युत्क्रम सा लगता है जो कभी लिपिकाल में लिपी दोष से होना स भव है । वास्तव में १६ को १५ एव १७ को १६ और १५ को १७ न बर पर रखना चाहिये, यथा– (१५) प्रायश्चित्त करणे (१६) खमावणया (१७) काल पड़िलेहणिया, इस तरह प्रश्नों का क्रम होना चाहिये। यह क्रम सही और तर्क स गत है एव प्रवृत्ति से भी स गत है। हम स्तव स्तुति म गल के बाद गुरु व दन करके प्रायश्चित्त लेते हैं फिर क्षमापना प्रत्यक्ष श्रमणों से की जाती है। उसके बाद ही स्वाध्याय काल की प्रतिलेखना की जाती है।

अध्ययन–३० : तपमार्ग

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर– इसमें तप का स्वरूप समझाकर फिर भेद प्रभेदों के द्वारा तप का कुछ विस्तृत वर्णन किया गया है। भगवती सूत्र के प्रश्नोत्तरों में तप के भेद–प्रभेदों का पूर्ण वर्णन दिया गया है। **देखें–प्रश्नोत्तर भाग-४ ।**

प्रश्न–२ : इस अध्ययन के प्रार भ में तप–स यम का महात्म्य किस प्रकार दर्शाया है ?

उत्तर– जिस प्रकार महा सरोवर में पानी आने के मार्ग ब द कर देने पर एव पानी को बाहर निकालते रहने से, सूर्य के ताप से क्रमश: उसका पानी खाली किया जा सकता है उसी प्रकार श्रमणों के स पूर्ण

नये पापकर्म का निरोध हो जाता है । फिर उत्तरोत्तर तप का आचरण करते रहने से करोड़ों भवों के स चित कर्म भी क्षय हो जाते हैं। अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह और रात्रिभोजन से सर्वथा निवृत्त, पाँच समिति तीन गुप्ति से युक्त, कषायों से मुक्त, जितेन्द्रिय, तीन गर्व और तीन शल्य से रहित मुनि कर्माश्रव रहित हो जाता है। अनशन आदि ६ प्रकार के बाह्य तप और प्रायश्चित्त स्वाध्याय ध्यान आदि आभ्य तर तप का अधिकाधिक आचरण करने से मुनि क्रमशः कर्मों से रहित हो जाता है ।

प्रश्न–३ : बारह प्रकार के तप का इस अध्ययन वर्णित स क्षिप्त भाव क्या है ?

उत्तर– (१) नवकारसी, पोरिसी, आय बिल, उपवास से लेकर ६ मास तक का तप एव अन्य अनेक श्रेणी, प्रतर तप **इत्वरिक अनशन** तप है। आजीवन स थारा करना भी शरीर के बाह्य परिकर्म युक्त और परिकर्म रहित दोनों प्रकार का होता है ।

(२) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्याय के भेद से ऊणोदरी तप पाँच प्रकार का है। भूख से कम खाना, द्रव्य उणोदरी है। शेष चार भेद अभिग्रह स ब धी है ।

(३) पेटी, अर्धपेटी आदि आठ प्रकार की गोचरी या सात प्रकार की पि ड़ेषणा या अन्य अनेक नियम अभिग्रह में से कोई भी अभिग्रह करके भिक्षा के लिये जाना भिक्षाचर्या तप है।

(४) पाँच–विगय में से किसी भी एक या अनेक विगयों का त्याग करना अथवा अनेक मनोज्ञ खाद्यपदार्थों का त्याग करना, रस परित्याग तप है ।

(५) वीरासन आदि अनेक कठिन आसन करना, रात्रि भर एक आसन करना, लोच करना, परीषह आदि सहन करना, ये सब कायक्लेश तप है।

(६) अरण्य, वृक्ष, पर्वत, गुफा, श्मसान, झोंपड़ी आदि एकान्त स्थान में आत्मलीन होकर रहना अथवा कषाय, योग, इन्द्रियों के प्रवर्तन का परित्याग करना, प्रतिस लीनता तप है।

(७) दस प्रकार के प्रायश्चित्त में यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करना, प्रायश्चित्त तप है ।

(८) खड़े होना, आसन निम त्रण करना, हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाना आदि गुरु भक्ति और भाव सुश्रुषा करना विनय तप है ।

(९) आचार्य, स्थविर, रुग्ण साधु या नवदीक्षित आदि दस की यथाशक्ति सेवा करना वैयावृत्य तप है।

(१०) स्वाध्याय–१.नये नये श्रुत के मूल एव अर्थ की वाचना लेना, क ठस्थ करना २.श काओं को पूछकर समाधान करना ३.श्रुत का परावर्तन करना ४.अनुप्रेक्षा करना ५.धर्मोपदेश देना, स्वाध्याय तप है।

(११) आत्म स्वरूप का, एकत्व, अन्यत्व, अशरण भावना आदि का, लोक स्वरूप का एकाग्र चित्त से आत्मानुलक्षी सूक्ष्म–सूक्ष्मतर चि तन करते हुए उसमें तल्लीन हो जाना ध्यान तप है। प्रथम अवस्था धर्म ध्यान है और उससे आगे की अत्य त सूक्ष्म अवस्था शुक्लध्यान है ।

(१२) व्युत्सर्ग– मन,वचन,काया के व्यापारों का निर्धारित समय के लिये पूर्ण रूप से परित्याग कर देना, योग–व्युत्सर्ग है। इसे प्रचलन की भाषा में कायोत्सर्ग कहा जाता है। इसी तरह कषायों का, कर्मों का, समूह–गण का, व्युत्सर्जन कर एकाकी रहना, ये व्युत्सर्जन तप के द्रव्य एव भाव भेदों के प्रकार हैं।

इन बाह्य और आभ्य तर तपों का यथाशक्ति जो मुनि सम्यक् आराधना करता है एव इनमें उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए आगे बढ़ता है, वह शीघ्र ही स सार से मुक्त हो जाता है।

अध्ययन–३१ : चरणविधि

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का परिचय एव विषय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में एक से लेकर तेतीस बोल तक आचार के विषयों का कथन है। जिसमें कई ज्ञेय है, कई उपादेय है और कई हेय हैं। समिति, गुप्ति, महाव्रत, श्रमण धर्म, प्रतिमा आदि उपादेय है। कषाय, द ड़, अस यम, ब धन, शल्य, गर्व, स ज्ञा, भय, मद आदि हेय है। छःकाया भूतग्राम, परमाधामी, सूत्रकृता ग–सूत्र, ज्ञातासूत्र,

दशाश्रुतस्क ध सूत्र आदि के अध्ययन ज्ञेय है। अ त में गुरु रत्नाधिक की तेंतीस आशातनाएँ कही है। इन बोलों का विस्तृत वर्णन अन्य सूत्रों में प्रायः आ गया है। उसके लिये प्रश्नोत्तर के भागों में यथायोग्य स्थल देखें।

अध्ययन-३२ : प्रमादस्थान

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इस अध्ययन में मैथुन भाव एव पाँच इन्द्रिय विषयों के स ब ध में विस्तार से कथन करते हुए इन्हें प्रमादाचरण समझाते हुए इनसे आत्मा को सावधान एव सुरक्षित रहने की प्रेरणा की गई है एव सुरक्षित रहने की विधि भी सूचित की है।

अध्ययन के प्रार भ में स यम की सु दर समाधि एव मोक्ष की सुखद प्राप्ति के लिये स क्षेप में महत्त्वपूर्ण तत्त्व दर्शाये हैं।

प्रश्न-२ : प्रार भिक महत्त्वशील तत्त्व क्या दर्शाये हैं ?

उत्तर- (१) स पूर्ण ज्ञान के प्रकट करने से, अज्ञान और मोह का त्याग करने से और रागद्वेष को क्षय करने से एका त सुख के स्थान रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(२) इसके लिये १. वृद्ध गुरुजनों की सेवा २. बालजनों की स गतिवर्जन ३. स्वाध्याय ४. एकान्त सेवन ५. सूत्रार्थ चिन्तन ६. परिमित-आहार ७. योग्य साथी ८. जनाकुलता रहित स्थान, इन बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(३) कदाचित् ऐसी रुचि का सहायक न मिले तो पापों का वर्जन करता हुआ और कामासक्त न होता हुआ अकेला ही विचरण करे।

(४) लोभ-तृष्णा एव मोह के त्याग से दुःखों का नाश शीघ्र स भव है।

(५) रागद्वेष और मोह ये कर्मों के मूल है और कर्म दुःख-स सार के मूल हैं।

प्रश्न-३ : ब्रह्मचर्य समाधि-सुरक्षा हेतु यहाँ क्या-क्या शिक्षा सूचन किये गये हैं ?

उत्तर- (१) मैथुन भाव के त्यागी को रसों का, विगयों का, अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना; पेट भर कभी नहीं खाना, स्त्री आदि के सम्पर्क रहित, निवास रहित एकान्त स्थान में रहना, स्त्री के हास्य, विलास, रूप, लावण्य आदि का श्रवण या अवलोकन नहीं करना; स्त्री स ब धी चिन्तन नहीं करना।

(२) विभूषित देवा गनाएँ भी ब्रह्मचर्य-लीन मुनि को स्खलित करने में समर्थ न हो, ऐसे साधक के लिये भी भगवान ने स्त्री आदि से रहित स्थान में ही रहना एकान्त हितकर कहा है।

(३) किंपाकफल-रस में, वर्ण में, खाने में, मनोज्ञ होता है किन्तु उसका परिणाम विषमय होता है। वैसे ही कामभोगों का परिणाम महा दुःखदायी है।

(४) स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष पर पक्षी भ्रमण करते रहते हैं, उसी प्रकार पौष्टिक भोजन करने वाले के चित्त में विकारवासना के स कल्प आते रहते हैं।

(५) जिस प्रकार अति ईंधन वाले वन में लगी अग्नि शा त होना कठिन है, उसी प्रकार अति-भोजन करना कामाग्नि की वृद्धि कराने वाला होने से ब्रह्मचारी के लिये किंचित् भी हितकारी नहीं है।

(६) बिल्ली के निवास स्थान पर चूहों का निवास प्राणों के स हार के लिये होता है उसी प्रकार स्त्री के स्थान में साधु का निवास अर्थात् साथ-साथ रहना, गमनागमन करना, सर्वथा अनुचित होता है।

प्रश्न-४ : पाँच इन्द्रिय विषयों के विकारों में सावधान रहने हेतु साधक को विस्तृत विविध प्रकार से बोध दिया गया है उसका सार क्या है ?

उत्तर- पाँचों इन्द्रियों के विषय में आसक्त बना जीव अनेक प्रकार के पापाचरण करता है। उन विषयों के स ग्रह में लालायित होकर रात-दिन दुःखी अशा त रहता है, झूठ-कपट, चोरी आदि करता है और अनेक प्रकार के कर्मब ध कर स सार वृद्धि करता है।

पाँचों इन्द्रिय और कामभोग की आसक्ति से जीवन नाश करने वाले प्राणियों का दृष्टा त देकर उसके द्वारा विषयों से विरक्ति धारण करने की प्रेरणा की गई है।

श्रोतेन्द्रिय में हिरण, चक्षुइन्द्रिय में पत गा, घ्राणेन्द्रिय में सर्प, रसनेन्द्रिय में मच्छ, स्पर्शेन्द्रिय में भेंसा और कामभोग में हाथी, प्राण ग वा देते हैं। मोक्षार्थी मुनि जल में कमलवत् इन सब विषयों से विरक्त रहकर स सार में अलिप्त रहता है। विरक्त, ज्ञानी और सतत सावधान साधक के लिये ये इन्द्रिय विषय कुछ भी दुःखदायी नहीं होते अर्थात् वह इनमें लुभावित होता ही नहीं है क्यों कि वह सदा इनके प्रति वीतराग भावों को उपस्थित रखता है।

अतः दुःख इन विषयों में नहीं है किन्तु आत्मा के रागद्वेष जन्य परिणामों में एव आसक्ति और अज्ञान में ही भरा हुआ है। ज्ञानी, विरक्तात्मा के लिये ये सब विषय किंचित् भी पीड़ाकारी नहीं हो सकते। ये इन्द्रिय विषय तो स्वतः सदा उस विरक्तात्मा से दूर ही भागते हैं। इस प्रकार मुनि निरन्तर विरक्त भावों की वृद्धि करके स कल्प विकल्पों से उपर उठे और सम्पूर्ण तृष्णा इच्छाओं से मुक्त बने।

अध्ययन-३३ : कर्मप्रकृति

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इस अध्ययन में मूल कर्म प्रकृति आठ और उत्तर प्रकृति इकहत्तर कही है। वेदनीय और नामकर्म के दो-दो भेद कह कर इनके पुनः अनेक भेद होना भी सूचित किया है। आठ कर्मों की जघन्य-उत्कृष्ट ब धस्थिति सूचित की गई है। कर्म स ब धी विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना पद-२३ में किया गया है।

प्रश्न-२ : आठ कर्मों के ७१ भेद यहाँ किस प्रकार किये हैं ? एव पूरे अध्ययन का स क्षिप्त सार क्या है ?

उत्तर- (१) ज्ञानावरणीय के-५ (२) दर्शनावरणीय के-९ (३) वेदनीय के-२ (४) मोहनीय के-२८ (५) आयुष्य के-४ (६) नामकर्म के-२, (७) गौत्रकर्म के-१६ (८) अ तरायकर्म के ५ ये कुल ७१ भेद है।

एक समय में अन त कर्म स्कन्ध ग्रहण होते हैं, छहों दिशाओं से ग्रहण किये जाते हैं और सर्व आत्मप्रदेशों पर उनका ब ध समान होता है। आठ कर्मों की ब धस्थिति इस प्रकार है-

कर्म	जघन्य	उत्कृष्ट
१. ज्ञानावरणीय	अ तर्मुहूर्त	तीस क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम
२. दर्शनावरणीय	अ तर्मुहूर्त	तीस क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम
३. वेदनीयय	अ तर्मुहूर्त	तीस क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम
४. मोहनीय	अ तर्मुहूर्त	सित्तर क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम
५. आयुष्य	अ तर्मुहूर्त	तेंतीस सागरोपम
६. नाम	अ तर्मुहूर्त	बीस क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम
७. गौत्र	अ तर्मुहूर्त	बीस क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम
८. अ तराय	अ तर्मुहूर्त	तीस क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम

मोक्षार्थी साधक को इन कर्मों को जान कर इनका ब ध नहीं करना एव पूर्व बद्ध को तप-स यम से क्षय करने में यत्न करना चाहिये।

अध्ययन-३४ : लेश्या

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें लेश्या स ब धी वर्ण,ग ध, रस, स्पर्श, परिणाम, स्थान, स्थिति आदि विविध वर्णन है ।सभी प्रकार का वर्णन प्रज्ञापना पद-१७ में कर दिया गया है। लेश्याओं के लक्षण यहाँ विशेष है।

प्रश्न-२ : लेश्या स ब धी स क्षिप्त परिचय और उनके लक्षण किस प्रकार है ?

उत्तर- कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या अशुभ है और तेजो, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्या शुभ है। अथवा तीन अधर्म लेश्याएँ हैं वे जीव को दुर्गति में ले जाने वाली है और तीन धर्म लेश्याएँ हैं वे जीव को सद्गति में ले जाने वाली है। लेश्याएँ द्रव्य और भाव दोनों प्रकार की होती है। भावलेश्या तो आत्मा के परिणाम अर्थात् अध्यवसाय रूप है, जो अरूपी है । द्रव्यलेश्या पुद्गलमय होने से रूपी है उसके वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श, परिणाम, स्थान, स्थिति आदि का यहाँ वर्णन किया गया है ।भावलेश्या की अपेक्षा-लक्षण, गति, आयुब ध का वर्णन किया गया है।

(१) कृष्ण लेश्या का लक्षण– पाँच आश्रवों में प्रवृत्त, अगुप्त, अविरत, तीव्र भावों से आर भ में प्रवृत्त, निर्दय, क्रूर, अजितेन्द्रिय, ऐसे व्यक्ति के परिणाम कृष्ण लेश्या के समझना चाहिये ।

(२) नील लेश्या का लक्षण– ईर्ष्यालु, कदाग्रही, अज्ञानी, मायावी, निर्लज्ज, गृद्ध, धूर्त, प्रमादी, रसलोलुप, सुखैशी, अविरत, क्षुद्र स्वभावी, ऐसे व्यक्ति के परिणाम नील लेश्या के समझना चाहिये ।

(३) कापोत लेश्या का लक्षण– वक्र, वक्राचरण वाला, कपटी, सरलता से रहित, दोषों को छिपाने वाला, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, ह सोड़, दुष्टवादी, चोर, मत्सर-भाव वाला, ऐसे व्यक्ति के परिणाम कापोतलेश्या के समझना चाहिये ।

(४) तेजो लेश्या का लक्षण– नम्रवृत्ति, अचपल, माया रहित, कुतूहल रहित, विनय, दमितात्मा, समाधिवान, प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी, ऐसे व्यक्ति के परिणाम तेजोलेश्या के समझना चाहिये ।

(५) पद्म लेश्या का लक्षण– क्रोध,मान,माया,लोभ अत्य त अल्प हों, प्रशा त चित्त, दमितात्मा, तपस्वी, अत्यल्प भाषी, उपशा त, जितेन्द्रिय, ऐसे व्यक्ति के परिणाम पद्मलेश्या के समझना चाहिये ।

(६) शुक्ल लेश्या का लक्षण– आर्तरौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म और शुक्लध्यान में लीन, प्रशा त चित्त, दमितात्मा, समितिव त, गुप्तिव त, उपशा त, जितेन्द्रिय, इन गुणों से युक्त, सराग हो या वीतराग, ऐसे व्यक्ति के परिणाम शुक्ललेश्या के समझना चाहिये ।

अध्ययन-३५ : अणगार मार्ग

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर– इसमें स यम धर्म के शुद्ध आराधन हेतु अनेक उपदेश वचन है।

प्रश्न-२ : इसमें वर्णित उपदेश वचन किस प्रकार है ?

उत्तर– (१) गृहवास का त्याग कर स यम स्वीकार करने वाले मुनि को हिंसादि का, इच्छा-लोभ का त्याग करना चाहिये । (२) मनोहर घरों में रहने की इच्छा भी नहीं करनी चाहिये । (३) किसी भी प्रकार के मकानों के निर्माण कार्य में किंचित् भी भाग नहीं लेना चाहिये ।

यह कार्य त्रस-स्थावर अनेक प्राणियों का स हारक होता है । इसकी अनुमोदना एव प्रेरणा भी महान पापकर्मों को पैदा करने वाली है । (४) उसी प्रकार आहार-पानी पकाने, पकवाने के कार्य भी अनेक पापों से युक्त है अर्थात् बहुत प्राणियों के विनाशकारी है । अतः मुनि उसमें भाग न ले एव मुनि के लिये कोई आहार पानी पकावे तो उसे ग्रहण करने की मन से भी चाहना न करे । (५) मुनि धन स पत्ति रखने की मन से चाहना न करे । पत्थर और सोने में समान भाव रखे। कुछ भी खरीदे खरीदावे नहीं, क्यों कि ऐसा करने वाला वणिक (गृहस्थ)होता है । (६) मुनि सामुदानिक(अनेक घरों से भ्रमण कर) प्राप्त भिक्षा से जीवन निर्वाह करे, लाभालाभ में स तुष्ट रहे । स्वाद के लिये कुछ भी न खावे। पूजा, प्रतिष्ठा, व दन, सन्मान की मन से भी चाहना नहीं करे अर्थात् इनके लिये कोई प्रवृत्ति नहीं करे । निर्ममत्वी और निरहंकारी होकर साधना करे । मृत्यु समय में आहार त्याग कर शरीर का ममत्व छोड़ देहातीत होकर शुक्लध्यान में लीन बने । इस प्रकार आराधना करने वाला केवलज्ञान प्राप्त कर परमनिर्वाण को प्राप्त करता है ।

अध्ययन-३६ : जीवाजीव विभक्ति

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर– प्रज्ञापना सूत्र पद-१ तथा जीवाभिगम प्रतिपत्ति पहली में जीवाजीव का वर्णन है । उन दोनों सूत्रों में विस्तार से कह दिया गया है । अ त में यहाँ पर का दर्पिक आदि वृत्तियों का तथा १२ वर्ष की स लेखना का क्रमशः विशिष्ट वर्णन है ।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन का स क्षिप्त सार क्या है ?

उत्तर– **(१)** इस अध्ययन में अरूपी और रूपी अजीव के भेद प्रभेद के साथ उनका स्वरूप बताया है । फिर जीव का वर्णन प्रार भ करते हुए सिद्धों के भेद और स्वरूप का कथन है । साथ ही सिद्धी स्थान, सिद्धशिला का वर्णन है । अ त में सिद्धों की अवगाहना एव उनके अतुल सुखों का कथन किया है । **(२)** पृथ्वीकाय का वर्णन करते हुए खर-पृथ्वी के ३६ और मृदु-पृथ्वी के सात भेद कहे हैं । फिर इनकी

स्थिति, कायस्थिति और अ तर काल कहा है ।(३) पृथ्वी के वर्णन के अनुसार शेष चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, नैरयिक जीव, तिर्यंच प चेन्द्रिय जलचर आदि, मनुष्य एव चारों जाति के देवों के भेद–प्रभेद, नाम, स्थिति, कायस्थिति एव अ तर–काल बताया गया है ।

(४) यह जीव अजीव का स्वरूप जानकर एव श्रद्धान करके मुनि स यम में रमण करे। क्रमशः स लेखना करे। वह स लेखना(स थारा करने के पूर्व की साधना)जघन्य ६ महिने, मध्यम एक वर्ष और उत्कृष्ट १२ वर्ष की होती है ।(५) मुनि किसी प्रकार का निदान न करे। हास्य विनोद वाली का दर्पिक वृत्ति, म त्र, निमित्त प्रयोग रूप अभियोगिक वृत्ति, केवली– धर्माचार्य–स घ या साधु के अवर्णवाद रूप किल्विषिक वृत्ति, रौद्र भाव रूप आसुरी वृत्ति और आत्मघात रूप मोही वृत्ति करके स यम की विराधना न करे ।(६) जिन वचन में अनुरक्त होकर भाव पूर्वक भगवदाज्ञा का पालन करने से जीव कर्ममल रहित एव स क्लेश रहित होकर क्रमशः सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है ।

प्रश्न–३ : बारह वर्ष की उत्कृष्ट स ंलेखना की विधि एव स्वरूप क्या है ?

उत्तर– द्रव्य से शरीर को तपस्या द्वारा और भाव से कषायों को कृश (पतले)करना स लेखना साधना है ।

स लेखना धारण कब और क्यों ?– जब शरीर अत्य त अशक्त, दुर्बल और रूग्ण हो जाय, धर्मपालन करना दुर्भर हो जाय, अथवा जब यह आभास हो जाय कि अब यह शरीर दीर्घकाल तक नहीं टिकेगा, तब स लेखना करना चाहिये। स यम ग्रहण करते ही शरीर सशक्त एव धर्मपालन में सक्षम हो तो स लेखना नहीं करना चाहिये। इसी अभिप्राय से शास्त्रकार ने गाथा २५० में स केत किया है–**तओ बहूणि वासाणि सामण्ण मणुपालिया ।**

किंतु शरीर अक्षम और धर्मपालन में असमर्थ हो जाय तब स लेखना करने में उपेक्षा या उदासीनता रखना योग्य नहीं होता है। तब मुनि विचार करे कि मैंने दीर्घ पर्याय तक स यम का पालन किया है। मैं शिष्यों को वाचना भी दे चुका हूँ, मेरा शिष्य परिवार बढ़ चुका है। अब मेरा कर्तव्य है कि मैं अ तिम आराधना करके अपना कल्याण

करूँ। इस प्रकार साधु को पिछली अवस्था में स घ समाज शिष्य-शिष्या उपकरण शरीर आदि का मोह ममत्व त्याग कर स लेखना अ गीकार करना चाहिये ।

स लेखना की प्रस्तुत अध्ययन में विधि– यहाँ उत्कृष्ट १२ वर्ष की स लेखना की विधि का क्रम दर्शाया गया है। १२ वर्ष में प्रथम चार वर्षों में धार विगयों का त्याग करना। दूसरे चार वर्षों में उपवास, बेला, तेला आदि यथेच्छ तपस्या क्रम या व्युत्क्रम से करना। फिर दो वर्ष(नवमा–दसवा) में एका तर आय बिल करना। फिर आधा वर्ष (१०॥) सामान्य तप करे, उत्कृष्ट तप नहीं करे(दो वर्ष आय बिल किया था इसलिये) उसके बाद आधावर्ष(१०॥ से ११वा वर्ष तक) उत्कृष्ट तप बेला तेला पाँच, अठाई आदि करना । इस ग्यारहवें पूरे वर्ष में परिमित यथास भव आय बिल करे । बारहवें वर्ष में आय बिल करे फिर यथावसर १५ दिन या मासखमण का तप स थारा हेतु करे अर्थात् विधि सहित भक्तप्रत्याख्यान तप स्वीकार करे। यह १२ वर्ष की अपेक्षा विधि है। मध्यम एक वर्ष–बारह मास की स लेखना में उपरोक्त तपस्या का यथोक्त समय विभाजित कर लेना। जघन्य स लेखना ६ महिने की कही है। उसे १२ पक्ष में उपरोक्त विभाजन कर लेना। अचानक अ तिम समय आने पर और भी छोटी स लेखना की जा सकती है अथवा तो स लेखना के बिना सीधा स थारा भी किया जा सकता है ।

॥ उत्तराध्ययन सूत्र स पूर्ण ॥

दशवैकालिक सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : इस सूत्र का मौलिक परिचय क्या है ?

उत्तर– यह सूत्र पूर्णतया साध्वाचार से स ब धित है। न दी सूत्र की आगम सूचि में इसका नाम अ गबाह्य उत्कालिक सूत्रों में है। इसमें **दस** अध्ययन है और उत्कालिक का पर्याय शब्द **वैकालिक** होता है, अतः इस शास्त्र का नाम **दशवैकालिक** रखा गया है। अ त में दो चूलिका है उसे अध्ययन स ख्या में नहीं गिना गया है। यह शास्त्र पद्यमय है किन्तु चौथे और नौवें अध्ययन में कुछ गद्य पाठ भी है। पाँचवें अध्ययन में **दो** और नौवें अध्ययन में **चार** उद्देशक है। शेष किसी में भी उद्देशक नहीं है।

चूलिका पर्वत पर भी होती है किन्तु पर्वत की ऊँचाई में उसकी गिनती नहीं कही जाती है। जैसे कि वैताढ्य पर्वत २५ योजन कहा है, मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा कहा गया है, जिसमें कूट और चूलिका पर्वत की ऊँचाई में नहीं गिने हैं। इसी प्रकार दशवैकालिक सूत्र के १० अध्ययन गिने गये हैं। चूलिका दो अलग है, फिर भी कूट और चूलिका भी पर्वत का अ ग ही होते हैं। वैसे ही चूलिका सहित ही दशवैकालिक की रचना मौलिक ही है। महाविदेहक्षेत्र से चूलिका लाने का ऐतिहासिक कथन कल्पित मात्र है। क्यों कि दशवैकालिक के चूर्णिकार श्री अगस्त्यसि ह सूरि ने चूलिका शय्य भवाचार्य कृत स्वीकारी है। महाविदेह से लाने की बात उन्होंने नहीं कही है।

उत्तराध्ययन सूत्र के समान दशवैकालिक सूत्र भी जैनस घ में बहुत प्रचलित शास्त्र है, क्यों कि साधु–साध्वी के लिये प्रार भिक एव अति उपयोगी होने से प्रायः प्रत्येक साधक इस सूत्र को क ठस्थ धारण करते हैं। इसकी गाथाएँ भी प्रायः सरल सुगम शैली में है। उत्तराध्ययन सूत्र की अपेक्षा यह बहुत छोटा शास्त्र है, इसे ७०० श्लोक परिमाण माना गया है।

इस शास्त्र पर अगत्स्यसि ह सूरि और जिनदासगणी आचार्यों की चूर्णि उपलब्ध है। हरिभद्रसूरि की प्राचीन टीका उपलब्ध है। बाद में इस

सूत्र पर अनेक टीकाएँ एव व्याख्याएँ रची गई है। इस सूत्र का मुद्रण भी अनेक स्थलों से हुआ है जो आज हजारों की तादाद में उपलब्ध है।

प्रश्न–२ : दशवैकालिक सूत्र की रचना शय्य भव स्वामी ने अपने पुत्र मनक के लिये की थी क्या ?

उत्तर– इतिहास में ऐसा कहा जाता है कि शय्य भव स्वामी ने अपने आठ वर्ष के पुत्र "मनक" को दीक्षा दी थी और ज्ञान से उसका ६ महीने आयुष्य जानकर उसके लिये दशवैकालिक सूत्र की रचना की थी। फिर उसके दिव गत हो जाने पर उस सूत्र को पुनः विलीन करने का स कल्प किया। तब स घ का अत्याग्रह होने से उसे रहने दिया। उसी के फल स्वरूप आज यह दशवैकालिक सूत्र उपलब्ध रहा है।

समीक्षा–मनक गर्भ में था तब शय्य भव स्वामीने दीक्षा ली थी। अतः मनक आठ वर्ष का दीक्षित हुआ, तब शय्य भव स्वामी की दीक्षा पर्याय आठ वर्ष हुई थी। उस समय प्रभव आचार्य मौजूद थे।तब आठ वर्ष की दीक्षा में शास्त्र बनाने और विलीन करने की सत्ता सब शय्य भव स्वामी के हाथ में मानना उपयुक्त नहीं लगता है। क्यों कि शास्त्र बनाना और मिटाना यह तो एक बच्चों का खेल जैसा हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि आठ वर्ष के मनक मुनि के लिये बनाये जाने वाले शास्त्र में रथनेमि–राजीमति की घटना का विषय तथा मद्य सेवन करने वाले कपटी साधुओं का वर्णन(पाँचवे अध्ययन में)आदि भी अप्रास गिक सा ही लगता है। अतः मनक स ब धी कथानक निर्युक्ति भाष्यों की रचना के सैकड़ों वर्ष बाद इतिहास की कल्पनाएँ करने वाले विद्वानों की उपज ही अधिक लगती है ।

प्रश्न–३ : आचार्य भद्रबाहु स्वामी के छेदसूत्रों की रचना के पूर्व दशवैकालिक सूत्र की रचना हो गई थी क्या ?

उत्तर– निर्युक्ति भाष्यों आदि व्याख्याओं में जहाँ नवदीक्षित साधु के अध्ययन क्रम का वर्णन है वहाँ बताया गया है कि आचारा ग–निशीथ के पूर्व ही दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र के पढ़ाने का क्रम है और उससे पहले **आवश्यक सूत्र** पढ़ाने का क्रम है। अतः यह स्पष्ट है कि ये दोनों सूत्र दीक्षार्थी और नवदीक्षित के प्रार भिक अध्ययन के उपयोगी सूत्र है और व्याख्याकारों ने इन्हें अध्ययन क्रम में नियुक्त भी किया है।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने व्यवहार सूत्र में साधुओं के अध्ययन का जो क्रम दिया है उसमें इन उपयोगी अति उपयोगी शास्त्रों का कथन नहीं किया गया है। इसका कारण यही हो सकता है कि ये दोनों सूत्र व्यवहार सूत्र की रचना के पूर्व नहीं बने होंगे। जिसमें उत्तराध्ययन सूत्र के नहीं बनने की बात तो स्पष्ट हो चुकी है कि वह प्रश्नव्याकरण सूत्र के एक अध्ययन(विभाग)के विभाजन से बना है परन्तु दशवैकालिक सूत्र के रचनाकार के रूप में शय्य भवाचार्य का नाम मिलता है जो कि भद्रबाहु स्वामी के दो पाट पहले हो चुके हैं।

इस उपलब्ध वर्णन धारणा के अनुसार दशवैकालिक सूत्र भद्रबाहु के समय उपलब्ध था। फिर भी इतने उपयोगी, अपने ही पूर्वज प्रामाण्य पुरुषों द्वारा रचित और स घ के आग्रह से जो सूत्र रखा गया था, ऐसे विशिष्ट शास्त्र का उल्लेख अध्ययन क्रम में भद्रबाहु स्वामी द्वारा नहीं रखना तथा खुद के रचे तीन छेद सूत्रों को अध्ययन क्रम में रख देना यह एक अत्य त विचारणीय प्रश्न है।

इसकी विचारणा से ही यह फलित होता है कि दशवैकालिक सूत्र भी भद्रबाहु स्वामी के बाद ही और न दीसूत्र के पूर्व किसी के द्वारा बनाया गया होगा किन्तु कथाओं में कभी किसी के द्वारा शय्य भव स्वामी और मनकमुनि के साथ जोड़ दिया गया। यह भी हो सकता है कि शय्य भव नाम के अन्य आचार्य हुए हों जिन्होंने दशवैकालिक की रचना की हो और नाम साम्यता से कथानकों में उसे प्राचीन १४ पूर्वी शय्य भवाचार्य से जोड़ दिया गया हो।

ऐसा होना अस भव भी नहीं है क्यों कि ग्यारहवीं शताब्दि में हुए द्वितीय भद्रबाहु और वराहमिहिर का कथानक और निर्युक्तियों की रचना को प्रथम भद्रबाहु(तीसरी शताब्दि के)से जोड़ दिया गया । इस बात को म दिरमार्गी धुर धर विद्वान आगमोद्धारक अन्वेषक श्रमण श्री पुण्यविजयजी म०सा०ने अपने बृहत्कल्प भाष्य की प्रस्तावना में स्वीकार किया है कि नाम साम्यता से कथानक घटनाएँ मिश्रित हुए हैं। १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी तीन छेद सूत्रों के कर्ता अलग है और निर्युक्तिओं की रचना करने वाले द्वितीय भद्रबाहु स्वामी अलग है, वे वीर निर्वाण की ग्यारहवी शताब्दि में हुए हैं।

अतः ऐतिहासिक कथाओं वर्णनों के स ब ध में अनुप्रेक्षण को सदा स्थान रखना चाहिये किन्तु किसी घटना इतिहास के विषय में आग्रह या दुराग्रह नहीं रखना चाहिये।

सार यह है कि उत्तराध्ययन एव दशवैकालिक सूत्र १४ पूर्वी भद्रबाहु के समय और व्यवहार सूत्र की रचना के समय उपलब्ध नहीं थे, बाद में ही इनकी रचना हुई है, यही अधिक स गत लगता है तथा शय्य भव नाम साम्यता से ऐसा कुछ इतिहास में स ब ध जुड़ गया हो या जोड़ा गया हो।

प्रश्न–४ : इस सूत्र के दस अध्ययनों का विषय परिचय किस प्रकार है और प्रश्नोत्तर प्रावधान में इसका क्रम अ तिम में(१०वें भाग में) क्यों रखा है ?

उत्तर– (१) पहले अध्ययन में धर्म का स्वरूप और माहात्म्य बताकर भिक्षु की भिक्षावृत्ति को भ्रमरवृत्ति की उपमा दी गई है। (२) दूसरे अध्ययन में स्त्री परीषह में नहीं हारने की प्रेरणा रथनेमि और राजीमती के घटित द्वारा की गई है। (३) तीसरे अध्ययन में श्रमणों के अनाचरणीय स्थानों का निरूपण है। (४) चौथे अध्ययन में ६ जीवनिकाय की हिंसा त्याग की स क्षिप्त प्रतिज्ञा कथन है तथा पाँच महाव्रतारोपण छट्ठा रात्रिभोजन व्रत सहित है। (५) पाँचवें पिंड़ेषणा अध्ययन में गोचरी स ब धी विधि नियम एव दोषों के वर्जन को विस्तार से दो उद्देशक और १५० गाथाओं में समझाया है। (६) छट्ठे अध्ययन में स यम के १८ स्थानों के, छोटे बड़े नियमों के पालन की प्रेरणा की गई है। (७) सातवें अध्ययन में भाषा के दोषों को स्पष्ट करके भाषा विवेक सिखाया गया है। (८) आठवें अध्ययन **आचार प्रणिधि** में स यम खजाने के अनेक महत्त्व पूर्ण विषयों पर प्रकाश ड़ाला है। (९) नवमें अध्ययन में चार उद्देशकों के विभाजन पूर्वक श्रमण के विनय धर्म को विस्तृत विविध प्रकार से समझाया है। (१०) दसवें अध्ययन में भिक्षु के विशिष्ट गुणों का निर्देश करते हुए आदर्श भिक्षु बनने की प्रेरणा दी गई है। उसके बाद प्रथम चूलिका में स यम भावों की स्थिरता रखने का एव दूसरी चूलिका में परिस्थितिवश एकलविहार चर्या का और उसमें सावधानियाँ रखने का स केत किया गया है।

इस प्रकार विविध स यम विषयों के विश्लेषण के साथ सूत्र पूर्ण होता है ।

स्थानकवासी मान्यता में ३२ आगमों के नाम प्रसिद्ध है । उसके अनुसार अ ग, उपा ग, छेद और मूल के क्रम से हमने १० पुस्तकों में प्रश्नोत्तर स कलन किये है जिससे आवश्यक सूत्र सहित ४ मूलसूत्र इस दसवें भाग में लिये गये हैं । छेद सूत्रों को हमने नवमें भाग के रूप में रखा है । उसके पहले आठ भागों में अ ग-उपा ग सूत्र पूर्ण किये हैं। इस प्रकार का क्रम लेने का निर्णय हमने प्रथम पुस्तक के दूसरे पृष्ठ में दर्शा दिया था। इसलिये उसी क्रम से अपने निर्णय को पूर्ण किया है।

अध्ययन-१ : द्रुम पुष्पिका

प्रश्न-१ : धर्म का स्वरूप और माहात्म्य किस प्रकार दर्शाया है ?

उत्तर- आत्मकल्याण की साधना के लिये स्वीकार किया जाने वाला धर्म अहिंसाप्रधान, स यमप्रधान एव तपप्रधान होना चाहिये ।

(१) एकेन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक एव पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक छोटे बड़े किसी भी प्राणी की हिंसा की प्रेरणा धर्म के नाम से न हो वह अहिंसाप्रधान धर्म है। (२) सतरह प्रकार के स यम की पालना पूर्ण रूप से की जाय वह स यमप्रधान धर्म है। एव (३) बारह प्रकार के तप से युक्त अनेक विशिष्ट साधना आराधनाएँ की जाती है वह तपमय-तपप्रधान धर्म है। इन तीनों प्रमुख गुणों के सुमेल वाला धर्म आत्मकल्याण का श्रेष्ठ मार्ग है। उसका भावपूर्वक पालन आराधन करने वाला आत्मकल्याण का लक्ष्य सफल कर सकता है एव ऐसा साधक देवों के लिये भी व दनीय पूजनीय बन जाता है ।

प्रश्न-२ : वृक्ष के फूलों से की जाने वाली भ्रमर वृत्ति की उपमा जैनश्रमण की भिक्षावृत्ति को किस प्रकार दी गई है ?

उत्तर- वृक्ष, फूलों में रस अपने स्वभाव से तैयार करता है। भ्रमर अनेक फूलों से अनेक वृक्षों से थोड़ा थोड़ा रस लेता है। उसी प्रकार भिक्षु गृहस्थों द्वारा **सहज बने** आहार आदि में से **थोड़ा-थोड़ा अनेक घरों** से ग्रहण करता है, इस प्रकार तीन बातों की भ्रमर वृत्ति से समानता है ।

प्रत्येक उपमा दृष्टा त एकदेशीय होते है। अतः कुछ असमानता भी भ्रमरवृत्ति और भिक्षावृत्ति में होती है, यथा- भ्रमर अदत्त लेता है, मुनि गृहस्थ के देने पर लेता है। श्रमण अपने एषणा समिति के स पूर्ण नियमों को ध्यान रखकर लेता है भ्रमर के कोई नियम नहीं होता है । भ्रमर सचित्त फूलों से सचित्त रस ग्रहण करता है श्रमण सचित्त का त्याग कर अचित्त पदार्थ लेता है। यों उपमा से श्रमण के लिये यह स्पष्ट किया गया है कि श्रमण किसी एक व्यक्ति पर अवल बित नहीं होकर **णाणा-पिंड़रया** स यम नियमों का ध्यान रखकर अनेक घरों से आहार **दिन में** ग्रहण करते हैं। इस प्रकार उपमा में समानता विशेषता दोनों ही होते हैं। फिर भी उपमा अपेक्षा विशेष से लगती है।

अध्ययन-२ : श्रामण्य पूर्वक

प्रश्न-१ : अध्ययन के नाम से यहाँ क्या फलित होता है ?

उत्तर- श्रामण्य याने साधुता। साधुता में सबसे पहले कामविकार से निवृत्ति आवश्यक है। इस अध्ययन में काम विकार से निवृत्ति का आदेश मुख्य है। अतः अध्ययन का नाम **श्रामण्य पूर्वक** रखा गया है। इस प्रकार स यम साधना मार्ग में आने वाले प्रत्येक साधक को अन्य गुणों में प्रधान गुण ब्रह्मचर्य पालन की भावना पूर्ण आवश्यक है। यही इस अध्ययन का घोष है।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन में त्यागी किसको कहा है ?

उत्तर- साधन स पन्न व्यक्ति त्याग वैराग्य एव ज्ञान से भावित होकर प्राप्त हुए वस्त्र, तेल फुलेल, इत्रादि एव स्त्री घर परिवार का त्याग करता है। वह त्यागी कहलाता है। जिसके त्याग की कोई भावना ही नहीं है, न कोई ज्ञान-वैराग्य है परन्तु साधन ही नहीं मिले हैं, इसलिये उपभोग नहीं कर पाता, तो वह त्यागी नहीं कहा जाता। साधन स पन्न में किसी के पास कम हो या ज्यादा, इसका सवाल नहीं है। महत्त्व की बात यह है उसको त्यागने की भावना एव ज्ञान वैराग्य होना जरूरी है। ऐसा ज्ञान प्राप्त वैरागी चाहे गरीब है तो कम त्याग करता है, अमीर है तो ज्यादा त्याग करता है। तथापि जो है उसे त्यागने की भावना प्रधान है। ऐसा सूत्र का आशय समझना

चाहिये अर्थात् त्यागने से त्यागी होता है त्याग की भावना से त्यागी होता है ।

प्रश्न–३ : विकारभावों पर विजय प्राप्त होवे इसके लिये साधक को यहाँ क्या स देश दिया गया है ?

उत्तर– स यम लेकर व्यवहार के नियम पालने के सिवाय खाना पीना मौज करना यह लक्ष्य साधक का नहीं होना चाहिये। उसे अधिक से अधिक त्याग, तप बढ़ाना चाहिये। अपनी क्षमता का विचार कर त्याग तप में आगे बढ़ते रहना चाहिये। त्याग तप में–ऊणोदरी, विगय त्याग, द्रव्य त्याग, उपवास, पोरसी आदि, फिर विशेष तप, आतापना में प्रयत्नशील होना चाहिये ।स यम नियम लोच, विहार, आत्मनिर्भर समस्त कार्य तथा सेवाकार्य आदि भावयुक्त क्षमतानुसार करते रहना चाहिये। जीवन तपोमय एव परिश्रमी रखना चाहिये। ऐसा साधक कामविकार के भावों से सदा सहज निवृत्त रहता है। यह शिक्षा इस अध्ययन की पाँचवीं गाथा से फलित होती है।

प्रश्न–४ : अग धन कुल और ग धन कुल से क्या तात्पर्य लिया गया है ?

उत्तर– इन शब्दों का प्रयोग राजीमती साध्वी ने रथनेमि को स बोधित करके किया था। इसमें सर्प के कुलों का कथन है– (१) अ गधन कुल के सर्प अग्नि में जलकर मरना स्वीकार कर लेते किन्तु छोड़े हुए विष को वापिस नहीं चूसते। (२) ग धनकुल के सर्प प्रस ग आने पर मृत्यु से ड़र कर छोड़ा हुआ विष वापिस चूस लेते हैं। साध्वी राजीमती ने रथनेमि अणगार को निर्देश किया कि तुम उच्चकुल खानदान के हो, तुम्हे ग धनकुल के सर्प के स्वभाव वाला बन कर छोड़े हुए भोगों की आका शा करना उचित नहीं है। तुम अपने त्याग में अग धन कुल के सर्प के समान दृढ़ प्रतिज्ञ रहो। तुम्हारे हमारे दोनों के कुल की महिमा का ध्यान रखो, अस्थिर आत्मा न बनो किन्तु आत्म परिणामों को स्थिर रखो। गाथा ६ से ९ तक यह निर्देशन है। दसवीं गाथा में यह बताया है कि रथनेमि अपने शीलधर्म में स्थिर हो गये। राजीमती ने बड़ी हिम्मत से दोनों के स यम की रक्षा कर ली।

प्रश्न–५ : राजीमती ने कुछ अनुचित कटु शब्द भी कहे थे ?

उत्तर– स्व–पर की एका त हित भावना से कहे गये कटु वचन भी सुभाषित वचन होते हैं। यहाँ दसवीं गाथा में राजीमति के शब्दों को सुभाषित वचन कहा गया है। शब्दों को प्रभावशाली बनाकर उच्चारण करना गुस्से और घम ड़ से भिन्न होता है। जिनशासन में ऐसे व्यवहारों के समय एका त नियम नहीं चलता है। प्रत्येक नियम उपनियम में हानि–लाभ की विचारणा से विकल्प भी होता है। अतः किसी की हित भावना से या उसे गलत मार्ग से बचाने के लिये कटु शब्दों का उच्चारण भी निर्दोष माना जाता है। अतः राजेमती साध्वी ने गाथा ७ के अनुसार रथनेमि श्रमण को कटु शब्द कहे थे उसे भी शास्त्रकार ने सुभाषित वचनों में समाविष्ट किया है। दोनों आत्माएँ उसी भव में मोक्षगामी बने।

अध्ययन–३ : क्षुल्लकाचार

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के नामकरण का आशय क्या है ?

उत्तर– अठारह स्थानों का विशाल वर्णन ६९ गाथाओं से छट्ठे अध्ययन में है, उसे **महाचार कथा** नाम दिया गया है। अतः १५ गाथा के इस लघु अध्ययन वर्णन को क्षुल्लक(छोटा)आचार नाम दिया गया है। इस अध्ययन में आचार अनाचार का स्वरूप स्पष्ट होता है। वास्तव में इस अध्ययन में श्रमणों के अनाचरणीय स्थानों का स क्षिप्त नाम निर्देश मात्र है और छट्ठे अध्ययन में १८ स्थानों को विस्तार से समझाया है।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में अनाचरणीय स्थान कौन से कहे है और उनकी स ख्या के विषय में क्या निर्देश है ?

उत्तर– गाथाओं में सामान्य रूप से अनाचरणीय स्थानों का स ग्रह किया गया है किन्तु इनकी स ख्या किसी भी गाथा में नहीं कही गई है। क्यों कि श्रमण के अनाचरणीय स्थानों का वर्णन अनेक शास्त्रों से स कलन किया जाय तो उनकी स ख्या सैकड़ों हजारों की में हो सकती है। तथापि पूवाचार्यों ने अर्थ विवेचन में इनकी **५२** स ख्या होने से **५२** अनाचार प्रसिद्ध किये हैं।

(१) साधु के निमित्त बना (२) खरीदा (३) सामने लाया

(४) नित्य निम त्रणा युक्त (५) राजपिंड़ (६) दानपिंड़ (७) शय्यातर पिंड़ (८) सचित्त या मिश्र आहार पानी (९) सचित्त-मूला, अदरक, इक्षुख ड़, कन्दमूल फल एव बीज आदि (१०) सचित्त-संचल, सेन्धव नमक, रोम नमक, सामुद्रिक नमक, काला नमक एव प सुखार आदि नमक। इन खाद्यपदार्थों का ग्रहण करना साधु के लिये अनाचार है ।

(११) रात्रि भोजन (१२) रात्रि स ग्रह (१३) गृहस्थ के बर्तन (१४) छत्र (१५) औषध उपचार (१६)जूते (१७) अग्नि जलाना (१८) मुड्ढा(दुष्प्रतिलेख्य आसन) (१९) पल ग(खाट आदि) (२०) गृहस्थ के घर में बैठना (२१) सुग धी-इत्र तेल (२२) पुष्प आदि की माला (२३) प खे आदि से हवा करना आदि ये सब साधु के लिये त्याज्य है । (२४) स्नान (२५) सम्बाहन-मर्दन (२६) द तप्रक्षालन (२७) देह अवलोकन(का च आदि में मुँह देखना) (२८) उबटन(पीठी) (२९) धूवण(नाक द्वारा जल प्राणायाम) (३०) वमन (३१) वस्तीकर्म (३२)विरेचन(जुलाब) (३३) अ जन (३४) म जन (३५) विभूषा । ये सब परिकर्म भिक्षु के लिये त्याज्य है। (३६) अष्टापद-खेल (३७) नालिका खेल (३८) गृहस्थ की सेवा (३९) निमित्तादि से आजिविका वृत्ति (४०) गृहस्थ शरण से रहना, ये कार्य स यम मर्यादा के योग्य नहीं है। भिन्न पद्धति से गिनने पर ये ४० ही ५२ हो जाते हैं।

प्रश्न-३ : अध्ययन का उपस हार करते हुए महर्षि, निग्रंथों के लिये क्या कहा गया है ?

उत्तर- मुनि पाँच आश्रवो के त्यागी, छ:काया के रक्षक, तीन गुप्ति को धारण करने वाले और पाँच इन्द्रियों का निग्रह करने वाले होते हैं। सुसमाधिव त मुनि ग्रीष्म ऋतु में आतापना लेते हैं, शीतकाल में निर्वस्त्र रहते हैं एव वर्षा में प्रवृत्तियों का स कोच करके एक स्थान पर रहते हैं। वे दुष्कर स यम तप का पालन करके, परीषह उपसर्ग सहन करके स पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्ध होते हैं।

अध्ययन-४ : छज्जीवनिकाय

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का वर्तमान में महत्त्व क्या है ?

उत्तर- इस स पूर्ण अध्ययन का उच्चारण परिषद के समक्ष करके

नवदीक्षित श्रमण को महाव्रतारोपण-बड़ीदीक्षा दी जाती है। जिससे वह मुनि सामायिक चारित्र से छेदोपस्थापनीय चारित्र वाला कहा जाता है। दोनों चारित्र की आचारविधि समाचारी में अनेक भिन्नताएँ होती है। इसी कारण बृहत्कल्प सूत्र में उद्देशक-६ में ६ प्रकार की कल्पस्थिति में दोनों चारित्र की अलग-अलग कल्पस्थिति होना कहा है।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन का विषय वर्णन किस क्रम से किया है ?

उत्तर- प्रार भ में ६ जीवनिकाय का परिचय सचित्त सजीव होने से दिया है। फिर पाँच महाव्रतों का तथा छट्ठा रात्रिभोजन विरमण व्रत स्वरूप, प्रतिज्ञापाठ के साथ बताया है। फिर छ काया का विस्तृत वर्णन प्रतिज्ञा पाठ के साथ दिया है। अ त में २९ गाथाओं के द्वारा यतना, ज्ञान और स यम का मुक्ति प्राप्ति तक महत्त्व दर्शाया गया है। अ तिम ४ गाथाओं में उपस हार करते हुए सुगति की सुलभता दुर्लभता तथा वृद्धावस्था में स यम लेने वालों की सुगति कैसे होती है इसका स्पष्टीकरण किया गया है।

प्रश्न-३ : इस अध्ययन का स क्षिप्त सार क्या है ?

उत्तर- इस अध्ययन में विषय सरल और विस्तार पूर्वक है और बहु प्रचलित विषय है अर्थात् महाव्रतों का स्वरूप आचारा ग एव प्रश्न-व्याकरण सूत्र में तथा ६ काया का स्वरूप अनेक तत्त्व शास्त्रों में आता है। अत: यहाँ स क्षेप में प्रतिज्ञाओं का तथा परिशेष विषयों का सार रूप में विवरण दिया जाता है ।

(१) सूक्ष्म एव स्थूल सभी प्रकार की हिंसा, झूठ, अदत्त, कुशील परिग्रह एव रात्रिभोजन का मन, वचन, काया से सेवन करना, कराना या अनुमोदन करना, जीवनपर्यंत के लिये भिक्षु त्याग करके प्रतिज्ञाबद्ध हो जाता है। **(२)** चार स्थावर एव त्रसकाय की स पूर्ण हिंसा को त्याग कर, वह प्रतिज्ञाबद्ध हो जाता है। **(३)** वायुकाय की अपेक्षा १. फूँक देने एव २. प खा आदि से हवा करने का वह त्याग करता है। शेष प्रवृत्तियाँ चलना, उठना, बैठना, बोलना, खाना, सोना आदि यतना से, सावधानी से अर्थात् वेग रहित शा ति से करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होता है। **(४)** नाड़ी के स्प दन मात्र से भी वायुकाय की हिंसा होती है अत: उक्त अपेक्षा से ही भिक्षु के वायुकाय सबधी

प्रतिज्ञा जीवन पर्यंत के लिये होती है। (५) इन सभी प्रतिज्ञाओं के ग्रहण करने में उसके स्व आत्मकल्याण का प्रयोजन होता है। जनकल्याण, स यम ग्रहण का प्रयोजन नहीं है, वह तो उसका स यम योग-स्वाध्याय प्रवृत्ति है। (६) स यम पालन करने में- स यम स ब धी सभी विधियों का, जीव-अजीव आदि तत्त्वों का, ज्ञान करना, चिन्तन करना एव अनुभव करना अत्य त आवश्यक है। इसके लिये सूचित गाथा का भाव हिन्दी पद्य में इस प्रकार है-

प्रथम ज्ञान पीछे क्रिया, यह जिनमत का सार ।
ज्ञानसहित क्रिया करे, तो उतरे भव पार ॥

(७) ज्ञान के बिना हिताहित का कर्तव्याकर्तव्य का बोध नहीं होता है, कर्मब ध और निर्जरा का ज्ञान भी नहीं होता है जिनका होना भी साधना में अत्य त आवश्यक है। (८) सुखशील, निद्राशील, प्रक्षालन (धोने की) प्रवृत्ति शील, साधु की सद्गति होना दुर्लभ है।(९) तप-गुणों की प्रधानता वाले, सरल बुद्धि, क्षमादि धर्मों का पालन करने वाले, परीषह विजेता, भिक्षु की सद्गति होना सुलभ है।(१०) पिछली वय-वृद्धावस्था में भी दुर्लभ स यम को प्राप्त करके जो तप स यम, क्षमा, ब्रह्मचर्य में लीन रहता है, वह भी शीघ्र कल्याण कर लेता है अर्थात् अल्प समय का भी शुद्ध भावपूर्वक पालन किया हुआ स यम सद्गति को प्राप्त करा देता है ।

प्रश्न-४ : यह स पूर्ण चौथा अध्ययन परिषद में बड़ी दीक्षा पर वा चन किया जाता है, तो सज्झाय-असज्झाय स ब धी कुछ दोष लगेगा क्या ?

उत्तर- यह स पूर्ण अध्ययन मूलपाठ एक साथ नहीं पढ़ा जाता है लेकिन थोड़ा पाठ पढ़कर फिर उसका अर्थ विश्लेषण भी किया जाता है। अतः सामुहिक वाचना के समान स्वाध्याय-अस्वाध्याय का समझ लेना। उत्कालिक सूत्र है इसलिये १२ बजे तक वा चन में अकाल का प्रश्न नहीं आता है। ग्रहण पूनम एकम आदि के अस्वाध्याय दिन टालने के लिये एव नवदीक्षित साध्वी के व्यक्तिगत अस्वाध्याय को टालने के लिये शास्त्र में बड़ी दीक्षा देने में ४-५ दिन आगे देने की छूट भी दी है इसलिये ७+५ बारहवें दिन तक बड़ी दीक्षा दी जा सकती है ।

अध्ययन-५ : पिंड़ेषणा

प्रश्न-१ : गोचरी में गये हुए श्रमण को किन-किन बातों का ध्यान और विवेक रखना इस अध्ययन में समझाया गया है ?

उत्तर- (१) इस अध्ययन में दो उद्देशक है। दोनों में आहारादि की गवेषणा और परिभोगेषणा स ब धी विधि एव निषेध है। (२) भिक्षा के योग्य समय में भिक्षु उद्वेग एव मूर्छा से रहित होकर चार हाथ प्रमाण भूमि में बीज-हरी एव त्रस स्थावर जीवों का शोधन-स रक्षण करते हुए शा त चित्त से एव म द गति से चले। (३) क टक आदि से युक्त एव विषम मार्गों से न जावे।(४) तुस या राख आदि में चलना हो और पाँवों पर सचित रज हो तो प्रमार्जन करना चाहिये। (५) वेश्याओं के मोहल्लों में गोचरी न जावे।(६) उग्र-पशु, खेलते हुए बालक एव कलह-युद्ध आदि से युक्त मार्ग में न जावे। (७) गोचरी के लिये जाता हुआ उतावल से न चले, बातें करते हुए न चले या हँसते हुए न चले (८) चोरी की श का के स्थान-मकान के स धि आदि को देखता हुआ न चले एव राजा या राजपुरुष आदि के गुप्त बातचीत के स्थानों से दूर रहे।(९) निषिद्ध एव अप्रतीतकारी कुलों में न जावे।(१०) दरवाजा, पर्दा आदि ढ़ के हो तो गृहस्थ की आज्ञा बिना न खोले।

(११) मल-मूत्र की बाधा हो जाय तो उसे रोके नहीं । (१२) फूल, बीज बिखरे हुए न हो ऐसे एव प्रकाश युक्त स्थान में गोचरी करे। (१३) बछड़े, कुत्ते आदि पशु को उल्ल घन करके या हटा करके न जावे।(१४) घरों में स्त्री एव कोई भी पदार्थों या स्थानों को घूर कर आसक्ति भाव से न देखे। (१५) जिस घर में साधु के प्रवेश योग्य जितना स्थान हो वहीं तक जावे ।(१६) सचित्त-जल, पृथ्वी, बीज, हरी का वर्जन करता हुआ खड़ा रहे। (१७) गृहस्थ गिराते हुए भिक्षा दे तो नहीं लेना। प्राणी, बीज, हरी का स्पर्श करके या कुचलते हुए दे तो नहीं लेना, जल की विराधना या स्पर्श करके दे तो नहीं लेना। (१८) देने के पहले या पीछे हाथ, बर्तन आदि को धोवे तो नहीं लेना।(१९) हाथ, बर्तन आदि किसी भी सचित्त या मिश्र पदार्थ-हरी, बीज, नमक, सचित पृथ्वी या जलबिन्दु से लिप्त

हो या स युक्त हो, तो उससे न लेना ।(२०) भागीदारों की भावना को जानकर अनुकूलता होने पर लेना ।

(२१) गर्भवती स्त्री के लिये बना आहार, उसके खाने के पूर्व न लेना एव उसको उठना या बैठना पड़े तो उसके हाथ से भी नहीं लेना ।(२२) बच्चे को स्तनपान कराती हुई स्त्री उसे रोता हुआ छोड़कर बहरावे तो नहीं लेना ।(२३) किसी पदार्थ के कल्पा-कल्प्य में श का हो तो उसे छोड़ देना।(२४) अधिक भारी पदार्थों को उठाना पड़े या कोई पेकिंग खोलना पड़े अर्थात् कठिनाई से कुछ भी दिया जाय तो नहीं लेना ।(२५) किसी भी प्रकार का दान पिंड़ या श्रमण के निमित्त बनाया हुआ, खरीदा हुआ या सामने लाया हुआ एव मिश्र-पूति कर्मदोष वाला आहार नहीं लेना ।(२६) दोष की श का हो और वह पदार्थ लेना आवश्यक हो तो निर्णय करने के लिये किसने बनाया, यह जानकारी करके फिर उससे पूछना कि किसके लिये बनाया ? कब बनाया ? इत्यादि सरल भद्रिक परिणामी व्यक्ति से एकाद प्रश्न करके एव होशियार अनुरागी से अनेक प्रश्न करके सही निर्णय करना।(२७) सचित जल, फूल, हरी, बीज आदि पर पड़े खाद्य पदार्थ नहीं लेना ।(२८) अग्नि पर रखे पदार्थ एव अग्नि की विराधना करके दिए जाने वाले पदार्थ नहीं लेना ।(२९) हिलने वाले काष्ट, शिला या पत्थर पर नहीं चलना।(३०) ऊँचे से निसरणी लगाकर दे अर्थात् दाता के गिरने फिसलने का भय हो इस प्रकार दे या कष्ट पूर्वक दे तो नहीं लेना ।

(३१) क द, मूल, अदरक, फल या भाजी आदि सचित्त हो अथवा शस्त्र से काटे हुए भी हो तो न लेना अर्थात् पके फल काट कर बीज निकाले हुए हों और शेष कच्ची वनस्पतियाँ अग्नि पक्क हों तो ही अचित्त होती है और तभी भिक्षु के लिये ग्राह्य होती है। (३२) बेचने के लिये खुली पड़ी, सचित रज से भरी, मिठाई आदि नहीं लेना।(३३) जिसमें फेंकने योग्य भाग ज्यादा हो, वैसी वस्तु नहीं लेना।(३४) आटे के बर्तन धोया, चावल धोया या अन्य किसी भी पदार्थ से लिप्त बर्तन धोया हुआ पानी, दिखने में अच्छा हो या खराब, किन्तु प्यास बुझाने योग्य हो और उसे धोए हुए को एक घड़ी या दो घड़ी(२४ या ४८ मिनट)हो गए हों तो भिक्षु ग्रहण कर सकता है। कभी

देखने पर वह पानी प्यास बुझाने में स देह वाला दिखे तो चखकर भी निर्णय किया जा सकता है। लेने के बाद भी प्यास बुझाने योग्य न लगे तो विधि पूर्वक अचित्त स्थान में परठ देना चाहिये। (३५) गोचरी गया हुआ भिक्षु कभी कोई पदार्थ शारीरिक कारण से वहीं पर लेना (खाना-पीना)आवश्यक समझे तो एकान्त कमरे आदि की आज्ञा लेकर खा-पी सकता है। किन्तु वहाँ ग दगी तनिक भी न करे। (३६) भिक्षा लेकर उपाश्रय में विनय पूर्वक प्रवेश करना, गुरु को आहार दिखाना, इरियावही का कायोत्सर्ग करना, दोषों की आलोचना करना, स्वाध्याय करना एव असावद्यवृत्ति की अनुमोदना का चि तन रूप ध्यान करना। फिर अन्य साधुओं को निम त्रण करना, निम त्रण स्वीकार करने पर उन्हें देकर या उनके साथ आहार करना। निम त्रण स्वीकार न करने पर अकेले ही यतना से विधि पूर्वक आहार करना।(३७) खाने की विधि- आहार की निन्दा प्रश सा नहीं करना, स्वाद के लिये पदार्थों का स योग न करना । जिस कारण से जितना आहार आवश्यक हो उतना खाना, किन्तु अपनी खुराक से कुछ भी कम अवश्य खाना । (३८) अति धीरे या अति जल्दी नहीं खाना। चौड़े पात्र में और नीचे नहीं गिराते हुए, मुँह से चटाचट या सुड़-सुड़ किसी प्रकार की आवाज न आवे इस प्रकार खाना या पीना ।(३९) जैसा भी स यम योग्य स्वास्थ्य योग्य आहारादि मिला उसे घी-शक्कर खाने की बुद्धि से एव चित्त की प्रसन्नता से खाना ।(४०) अत्यल्प आहार मिला हो तो भी खेद नहीं करना। तप समझकर स तोष करना ।(४१) निःस्वार्थ भाव से (अर्थात् कुछ भी प्रत्युपकार की आशा न रखते हुए) देने वाला दाता और निःस्पृह भाव से(अर्थात् आशीर्वचन आदि न बोलते हुए एव रागभाव या कुछ प्रत्युपकार न करते हुए) लेने वाला मुनि ये मुधादाई और मुधाजीवी कहे जाते हैं और सद्‌गति को प्राप्त करते हैं ।

प्रश्न-२ : दूसरे उद्देशक में गोचरी स ब धी और क्या क्या विवेक रखने का कहा गया है ?

उत्तर- (१) आवश्यकता होने पर भिक्षु आहार करने के पहले या बाद में पुनः गोचरी जा सकता है । ध्यान यही रहे कि उस बस्ती में भिक्षा मिलने का अनुकूल समय होना चाहिये ।(२) मार्ग में पशु या

पक्षी, दाना-आहार या पानी ले रहे हों तो उन्हें किसी भी प्रकार से अ तराय नहीं हो, ऐसा विवेक रखना ।(३) गोचरी के लिये गया हुआ भिक्षु गृहस्थ के घर में बातें करने के लिये खड़ा नहीं रहे और न बैठे। (४) दरवाजे-खिड़की या उसके किसी भी विभाग का अवल बन नहीं ले ।(५) कोई याचक द्वार पर हो तो उस घर में भिक्षा के लिये न जाना और न उनके सामने खड़े रहना ।(६) जलज खाद्य वनस्पतियाँ, ईक्षु ख ड़ आदि अचित्त एव शस्त्र परिणत न हो तो नहीं लेना। फलियें बार बार(अच्छी तरह) भुनी हुई न हो तो नहीं लेना। फलियों के समान अन्य भी भुने जाने वाले खाद्य पदार्थों के विषय में समझ लेना चाहिये।(७) बीज, फल एव अन्य वनस्पतियाँ तथा इन सभी के चूर्ण भी अचित्त न हो और अग्नि आदि से शस्त्र परिणत न हो तो नहीं लेना।(८) भिक्षु सामान्य घरों को छोड़ते हुए केवल धनाढ्य घरों में ही गोचरी न जावे ।(९) खाद्य पदार्थ या अन्य वस्त्र शय्या-स स्तारक आदि होते हुए और सामने दिखते हुए भी दाता न दे तो किंचित भी खिन्न न होना।(१०) कोई अधिक सन्मान देने वाले हो तो भी भिक्षु कुछ भी विशेष वस्तु मा गे नहीं अर्थात् सामान्य रूप से खाने और देने योग्य पदार्थ रोटी, साग, पानी, छाछ आदि की भिक्षु याचना कर सकता है ।

(११) जो भी भिक्षा मिले उसमें लोभ न करके आवश्यकता अनुसार ही लेवे। साथ ही दाता और पास में देखने वालों के भावों का विवेक रख कर ले। एव गुरु आदि किसी से कुछ भी छिपाकर न खावे। प्राप्त आहार को सरल भाव एव सरल व्यवहार से स यम यात्रा के निर्वाह के लिये आसक्ति रहित होकर खावे ।(१२) कपट करने वाला, रसाशक्त अथवा गुप्त रूप से मदिरा आदि का सेवन करने वाला कभी भी आराधक नहीं होता है एव निन्दा का पात्र होता है।(१३) बुद्धिमान मुनि पौष्टिक पदार्थों का एव मद्य प्रमाद का त्याग करता हुआ उत्कृष्ट तपाचरण से स यम की आराधना करता है और प्रश सा करता है ।(१४) जो तप, व्रत, रूप एव आचार का चोर होता है अर्थात् जो इन विषयों में भगवदाज्ञा के विपरीत आचरण करता है अथवा शक्ति होते हुए भी व्रत नियमों का औत्सर्गिक उत्कृष्ट आचरण नहीं करता है, तप में आगे बढ़ने की रुचि नहीं रखता है,

वस्त्र, पात्र आदि में ऊणोदरी करते हुए अचेल अपात्र होने का प्रयत्न नहीं करता है अपितु छती शक्ति आराम से रहने का ही लक्ष्य रखता है, वह यहाँ **चोर** कहा गया है ।(१५) ऐसा साधक किल्विषिक देव, तिर्यंच, नरक गति में भ्रमण करता है। अतः सरलता पूर्वक शक्ति अनुसार तप, स यम में उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहना चाहिये एव एषणा के विविध नियमोपनियमों को औद्देशिक आदि दोषों को गुरु आदि से अच्छी तरह समझ कर एषणा समिति का विशुद्ध रूप से पालन करना चाहिये ।

अध्ययन-६ : महाचार कथा

प्रश्न-१ : इस अध्ययन में १८ स्थान कौन से कहे हैं ?

उत्तर- चौथे अध्ययन में कहे गये ६ व्रत और ६ काया को लेकर ६ बोल साध्वाचार के और मिलाकर इस अध्ययन में १८ स्थानों का अन्य ढ़ ग से विश्लेषण करके पद्य में समझाया है । साथ ही यह कहा गया है कि ये अठारह स्थान आबालवृद्ध, रोगीनिरोगी, सभी साधु-साध्वी को अखंड़ रूप से पालन करना आवश्यक है ।इनमें से किसी भी स्थान की विराधना(नियम को खंड़ित)करने वाला भिक्षु साधुपन से भ्रष्ट (च्युत)हो जाता है । इस तरह १८ स्थानों का महत्त्व बताकर फिर उन प्रत्येक का क्रमशः विश्लेषण २, ३ या ४ गाथाओं द्वारा किया है। वे स्थान इस प्रकार है- (१-६) पाँच महाव्रत छट्ठा रात्रिभोजन व्रत (७-१२) छ काया (१३) अकल्पनीय (१४) गृहस्थ भाजन (१५) पल्य क (१६) निषद्या (१७) स्नान (१८) शोभा-विभूषा ।

इनमें से ६ का पालन, ६ का रक्षण और ६ स्थानों का वर्जन करना कहा गया है ।

प्रश्न-२ : छ व्रतों का विश्लेषण किस प्रकार किया है ?

उत्तर- (१) सभी त्रस एव स्थावर जीव जीना चाहते हैं अतः प्राणी वध घोर पाप है। इसलिये मुनि इसका सर्वथा(कृत, कारित, अनुमोदन एव मन-वचन-काया से) त्याग करते हैं।(२) झूठ बोलना, पर पीड़ाकारी है एव अविश्वास उत्पन्न करने वाला है। वह सभी सिद्धा तों में त्याज्य

कहा गया है। इसलिये मुनि अपने लिये या दूसरों के लिये क्रोधादि कषाय वश या हास्य भय से भी झूठ बोलने का सर्वथा त्याग करते हैं।(३) बिना दिये बिना आज्ञा मुनि तृण मात्र भी ग्रहण नहीं करते। (४) मैथुन स सर्ग- महान दोषों का एव प्रमाद को उत्पन्न करने वाला है अधर्म का मूल है तथा परिणाम में दुःखदायक है। अतः मुनि अब्रह्मचर्य का सर्वथा त्याग करते हैं।(५) मुनि स यम के आवश्यक उपकरणों के सिवाय किंचित भी स ग्रह नहीं करता है। आवश्यक उपकरणों में भी ममत्व नहीं रखता है किन्तु केवल स यम जीवन के लिये एव देह स रक्षण के लिये उन्हें धारण करता है। मुनि को अपने शरीर में भी ममत्व नहीं होना चाहिये। ममत्व मूर्छा यदि है तो शरीर एव उपकरण भी परिग्रह गिने जाते हैं। नमक, तेल, घी, गुड़ आदि खाद्यसामग्री का स ग्रह करने वाला गृहस्थ है, साधु नहीं।(६) अनेक सूक्ष्म त्रस एव स्थावर प्राणी रात्रि में नहीं दिखते, एषणा समिति एव इर्यासमिति का पालन भी रात्रि में नहीं हो सकता, इसलिये मुनि रात्रि में स पूर्ण आहार का त्याग करते हैं।

प्रश्न-३ : छ काया का विश्लेषण किस प्रकार किया है ?

उत्तर- सुसमाधिव त श्रमण पृथ्वीकाय की हिंसा तीन करण, तीन योग से नहीं करते हैं। पृथ्वीकाय की हिंसा करते हुए उसके आश्रय में रहे दिखने वाले या नहीं दिखने वाले जीवों की(त्रस आदि की)भी हिंसा होती है। इस प्रकार एक काय की हिंसा भी अन्य हिंसादोष वर्धक जानकर मुनि जीवनभर के लिये हिंसा का त्याग करते हैं। इसी प्रकार अप्काय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय का भी विश्लेषण किया गया है।

अग्नि अन्य जीवों के लिये अत्य त तेज शस्त्र है उसको सहन करना सर्वथा दुष्कर है। छहों दिशाओं में रहे प्राणियों को जलाकर भस्म करती है। इसलिये प्रकाश या ताप किसी भी हेतु से मुनि तेउकाय की हिंसा का जीवनपर्यंत त्याग करते हैं। वायुकाय की हिंसा भी सावद्य बहुल है इसलिये छकाय रक्षक मुनि प खा वगैरह से हवा करते कराते नहीं है तथा वस्त्र आदि उपकरणों को भी यतना से रखते एव उपयोग में लेते हैं। और जीवनपर्यंत वायुकाय की हिंसा और अयतना करने का त्याग करते हैं। इस प्रकार विवेक रखकर मुनि ६ काय जीवों का रक्षण करते हैं।

प्रश्न-४ : अन्य ६ स्थानों का विश्लेषण किस प्रकार किया है ?

उत्तर- अकल्पनीय-जो अपने निमित्त बने हुए, खरीदे हुए और नहीं दिखने वाले स्थान से या अन्य घर से सामने लाया हुआ आहार को ग्रहण करते हैं, नित्य निम त्रण स्वीकार कर मनोज्ञ या सदोष आहार ग्रहण करते हैं, वे प्राणीवध का अनुमोदन करते हैं। अतः ऐसा करने वाले तीर्थंकर भगवान की आज्ञा में नहीं है।

गृही-भाजन- मुनि को गृहस्थ के थाली, कटोरी, गिलास आदि में आहार-पानी नहीं खाना एव नहीं पीना। क्यों कि फिर गृहस्थ उन बर्तनों को धोने के लिये सचित जल की विराधना करता है, नाली आदि में धोये हुए पानी को फेंकता है और उस फेंके हुए पानी के कहीं इकट्ठे हो जाने पर उसमें त्रस जीव गिर कर मरते हैं। (कपड़े धोने के लिये ग्रहण किये जाने वाले साधनों के लिये यह विधान लागू नहीं होता है।)

पल ग, खाट, मुड्ढा(विशेष प्रकार की कुर्सी)आदि दुष्प्रतिलेख्य शय्या आसनों को उपयोग में नहीं लेना। (सुप्रतिलेख्य काष्ट प्लास्टिक के उपकरण के लिए यह नियम नहीं है।)

गोचरी के लिये गया हुआ भिक्षु कहीं भी गृहस्थ के घर में नहीं बैठे। वहाँ बैठने से १. ब्रह्मचर्य में विपत्ति २. प्राणियों का वध ३.अन्य भिक्षाजीविकों के अ तराय और गृहस्वामी के क्रोध का निमित्त बनता है। अतः इस कुशील वर्धक स्थान का मुनि सर्वथा त्याग करे। वृद्ध, रोगी, तपस्वी ये तीनों गोचरी में गृहस्थ के घरों में, कभी बैठ सकते हैं। रोगी हो या स्वस्थ, स्नान करना किसी भी साधु को नहीं कल्पता है। ऐसा करने पर वह आचार से भ्रष्ट हो जाता है। उसका स यम शिथिल हो जाता है। अतः भिक्षु ठ ड़े या गर्म जल से कभी भी स्नान नहीं करते।

उबटन, मालिस आदि करना एव शरीर या वस्त्रों को सुसज्जित विभूषित करना भिक्षु को नहीं कल्पता है। नग्न, मु ड़, दीर्घ-रोम, नख वाले ब्रह्मचारी भिक्षु को विभूषा से प्रयोजन ही क्या है ? विभूषा वृत्ति एव स कल्प से भिक्षु के चिकने कर्मब ध होते हैं। क्यों कि इसके लिये अनेक सावद्य प्रवृत्तिएँ की जाती है। विभूषावृत्ति से जीव घोर

स सार में परिभ्रमण करता है। अतः छ काया के रक्षक मुनि विभूषा वृत्ति का सेवन नहीं करते ।

प्रश्न-५ : इन १८ स्थानों की आराधना से क्या लाभ दर्शाया हैं ?

उत्तर- अठारह स्थानों की अखंड़ पालना करने वाला तत्त्व वेत्ता मुनि मोहरहित बन कर, तप स यम में एव क्षमा आदि यति धर्मों में तल्लीन हो जाता है। वह नये कर्मों का ब ध नहीं करता है और पूर्वकृत कर्मों को क्षय करता है। वह निर्ममत्वी, उपशा त, निष्परिग्रही, यशस्वी मुनि सिद्ध गति को प्राप्त करता है या वैमानिक देव बनता है ।

अध्ययन-७ : सुवाक्य शुद्धि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन में भाषा स ब धी दोष और विवेक किस प्रकार समझाये हैं ?

उत्तर- (१) इस अध्ययन में भाषा स ब धी विवेक सिखाते हुए सूक्ष्मतम सत्य का निरूपण किया गया है। **(२)** वेश मात्र को देख कर कोई स्त्री को पुरुष कहता है तो भी उसके असत्य भाषण का पाप कर्मब ध होता है। इसलिये सावधानी पूर्वक सत्य भाषण करना चाहिये। **(३)** जायेंगे, खायेंगे, बोलेंगे, ऐसे भविष्यकाल स ब धी निश्चयात्मक प्रयोग भिक्षु नहीं करे। किन्तु जाने का विचार(भाव)है, खाने का भाव है, करने का भाव है, इत्यादि ऐसा बोले ।**(४)** त्रस-स्थावर प्राणियों का विनाश हो ऐसी भाषा न बोले । **(५)** काणे को काणा, अ धे को अ धा, रोगी को रोगी इत्यादि किसी को पीड़ाकारी भाषा नहीं बोलना।**(६)** दुष्ट, मूर्ख, धूर्त, बदमाश, ल पट, कुत्ता इत्यादि कठोर भाषा नहीं बोलना ।**(७)** मा , दादी, भाभी, मासी, भूआ, दासी, स्वामिनी अथवा पिता, दादा, मामा, मासा, फूफा, दास, स्वामी इत्यादि गृहस्थ वचन नहीं बोलना किन्तु इनके नाम गौत्र आदि से तथा बहिन, बाई, भाई आदि यथायोग्य स बोधन से बोलना ।**(८)** मनुष्य, पशु-पक्षी के विषय में यह मोटा- ताजा है, खाने पकाने योग्य है, इत्यादि नहीं बोलना ।**(९)** यह वृक्ष मकान की लकड़ियों के योग्य है, इत्यादि नहीं बोलना।**(१०)** इसी प्रकार फल,

धान्यादि-वनस्पति के स ब ध में, खाने-पकाने योग्य है, इत्यादि सावद्य भाषा नहीं बोलना ।

(११) नदी के विषय में यह तैरने योग्य है, इसका पानी पीने योग्य है, इत्यादि नहीं बोलना।**(१२)** शुद्ध प्राप्त हुए आहार के लिए भी यह अच्छा बनाया, अच्छा पकाया, इत्यादि नहीं बोलना ।**(१३)** यह वस्तु सर्वोत्कृष्ट है, दुनिया में ऐसा अन्य कोई नहीं है, इसमें अनगिनत अस ख्य गुण है या यह वस्तु खराब है, इत्यादि नहीं बोलना ।**(१४)** सर्व या सब शब्द का प्रयोग नहीं करना, यथा-सब कह दूंगा, सब कर लूँगा इत्यादि। **(१५)** खरीदने बेचने की प्रेरणा या निषेध सूचक भाषा नहीं बोलना।**(१६)** गृहस्थ को-आओ, बैठो, जाओ, करो, खाओ इत्यादि आदेश वाक्य नहीं बोलना।**(१७)** लोक में कई वेशधारी साधु होते हैं, हिंसा के प्रेरक, मायावी भगवदाज्ञा के चोर, रसासक्त, महाव्रत-समिति-गुप्ति में अनुपयुक्त होते हैं, छः काया की यतना में लक्ष्यहीन होते हैं, उन असाधुओं को साधु नहीं कहना ।किन्तु जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप से स पन्न हो और उपरोक्त अवगुणों से रहित हो, ऐसे साधुओं को ही **साधु** कहना ।

(१८) किसी के जय या पराजय की भविष्य सूचक भाषा नहीं बोलना **(१९)** वर्षा, सर्दी, गर्मी, अकाल, सुकाल आदि प्राकृतिक रचनाओं के स ब ध में होने या न होने की कोई भाषा नहीं बोलना, यह निरर्थक भाषा है क्यों कि प्रकृति किसी मनुष्य के वश की बात नहीं है ।**(२०) यह तो राजा है, यह तो देव है** ऐसी अतिशयोक्ति की भाषा नहीं बोलना । रिद्धिमान, ऐश्वर्यवान, स पतिशाली आदि कहा जा सकता है। **(२१)** सावद्य कार्यों(आर भ-समार भ)की प्रेरक या प्रश सक भाषा नहीं बोलना। निश्चयकारी, पर-पीड़ाकारी, क्रोध,मान,माया,लोभ और भय के वश होकर नहीं बोलना एव हँसी मजाक में नहीं बोलना। **(२२)** इस प्रकार भाषा के गुणदोषों, विधिनिषेधों को जानकर के विचार पूर्वक भाषा का प्रयोग करने वाला, इन्द्रियों को समाधि में (वश में) रखने वाला, कषायों से रहित एव प्रतिब ध या किसी के आश्रय से रहित मुनि कर्मों का क्षय कर आराधक होता है ।

अध्ययन-८ : आचार प्रणिधि

प्रश्न-१ : विविध आचार का खजाना जैसा यह अध्ययन किन किन विषयों से परिपूर्ण है ?

उत्तर- छट्ठे अध्ययन के समान इसमें सावधानी के १८ स्थान नहीं कहे गये है किन्तु उन अठारह से भिन्न नूतन आचार के भ ड़ार स्वरूप स्थानों का विश्लेषण किया है, यथा- (१) ६ काया (२) ८ सूक्ष्म तत्त्व (३) पाँच समिति (४) कष्ट सहिष्णुता (५) निंदा-कषाय त्याग (६) पराक्रम (७) विनय-विवेक (८) शय्या (९) ब्रह्मचर्य सुरक्षा (१०) मूल लक्ष्य (११) उपस हार ।

प्रश्न-२ : इन आचार विषयों के विश्लेषण में क्या समझाया है ?

उत्तर- पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, हरीघास और वृक्ष में भी जीव है और छोटे-छोटे त्रस प्राणी है। उनमें मनुष्य के समान ही जीव है। अत: मन वचन काया से सदा उन जीवों के साथ अहिंसक एव सावधानी युक्त व्यवहार करना चाहिये। किसी भी लक्ष्य से अर्थात् १. जीवन निर्वाह के लिये २. यशकीर्ति के लिये या ३. आपत्ति में अथवा ४. धर्म समझ कर जन्ममरण से मुक्त होने के लक्ष्य से भी मुनि को इन स्थावर और त्रस जीवों की हिंसा नहीं करनी चाहिये और न ही ऐसे हिंसाजन्य कार्यों की प्रेरणा या अनुमोदना करनी चाहिये ।

सचित्त पृथ्वी या सचित रज युक्त आसन आदि पर नहीं बैठना तथा सचित पृथ्वी का छेदन-भेदन या उस पर लकीर खींचना आदि नहीं करना। कच्चा पानी नहीं पीना, न उसका स्पर्श करना, वर्षा आदि से कभी शरीर भीग जाय तो उसे पूछना नहीं, स्पर्श करना नहीं, स्वत: सूख जाय तब तक सीधे स्थिरकाय खड़े रहना। अग्नि का स्पर्श या जलाना, बुझाना नहीं करना। प खे एव फू क आदि से हवा नहीं करना। वनस्पति का छेदन-भेदन नहीं करना, नहीं कराना एव हरी घास फूलण आदि पर खड़े रहना, चलना या बैठना आदि प्रवृत्ति नहीं करना। त्रस-जीवों की मन, वचन, काया से हिंसा नहीं करना ।

आठ सूक्ष्म- आठ सूक्ष्म(सजीव)होते हैं, उनकी रक्षा या यतना में अत्य त सावधानी रखना। वे आठ सूक्ष्म ये हैं- १. ओस, धुँअर, बर्फ,

ओले आदि जल(स्नेह)सूक्ष्म २. बड़ उंबर के फूल-फूल सूक्ष्म ३. उसी भूमि के र ग के कुंथुए आदि, पुस्तकों के सूक्ष्म जीव एव मच्छर, लीख, जू , मकड़ी आदि-प्राणीसूक्ष्म ४. कीड़ियों के बिल ५. पाँच प्रकार की काई(लीलन-फूलन) ६. बड़ आदि के बीज, बीज सूक्ष्म ७. छोटे-छोटे अ कुरे, हरितकाय सूक्ष्म ८. मक्खी, कीड़ी, छिपकली, क सारी आदि के अ ड़े, अ ड़ सूक्ष्म है ।

पाँच समिति- मुनि वस्त्र, पात्र, शय्या, आसन, गमनभूमि, परिष्ठापन भूमि को एकाग्रचित्त से सावधानी पूर्वक देखे एव जीवों की यतना करे। गोचरी के लिए गया साधु वहाँ यतना से खड़ा रहे एव परिमित बोले तथा दृष्टि को केन्द्रित रखे। वहाँ अनेकों देखी, सुनी और अनुभव की हुई बातों को ग भीरता से हृदय में धारण करे, इधर-उधर कहे नहीं। किसी के पूछने पर या बिना पूछे "किसके घर में क्या मिला या नहीं मिला, खराब मिला या अच्छा मिला" इत्यादि गृहस्थों को नहीं कहना ।

भिक्षु अनासक्त भाव से अज्ञात घरों में अर्थात् साधु के आने का इन्तजार तैयारी न हो, ऐसे घरों में निर्दोष भिक्षा प्राप्त करे, किन्तु साधु के निमित्त बनाये, खरीदे या लाये गये, सदोष आहार को ग्रहण नहीं करे। भिक्षु स तोषी और अल्प इच्छा वाला होवे एव जैसा आहार, शय्या आदि मिले उसी में निर्वाह करने वाला एव स तोष रख कर प्रसन्न रहने वाला बने। जिस भाषा के बोलने से किसी को अप्रीति हो, गुस्सा आवे, ऐसा नहीं बोलना। ग भीरता से सोच विचार कर अस दिग्ध भाषा बोलना। विद्वान, बहुश्रुत आदि के भी कभी भाषा में स्खलना हो जाय तो उनका उपहास नहीं करना। मुनि स्वप्न फल, निमित्त, औषध, भेषज, गृहस्थ को न बतावे ।

कषाय- मुनि इच्छा से एव आवश्यकता से अल्प मिलने पर क्रोध निन्दा न करे। मुनि आत्म प्रश सा(उत्कर्ष)एव पर निन्दा(तिरस्कार) कभी भी नहीं करे। श्रुत का भी घम ड़ न करे। सूत्रकृता ग सूत्र अध्ययन दो में किसी का पराभव-निन्दा तिरस्कार(इनसल्ट) करने वाले को महान स सार में पर्यटन करने वाला कहा है। क्रोध-प्रीति का, मान-विनय का, माया-मित्रता का नाश करती है और लोभ-सर्व गुणों का नाश करता है। अतः इनके प्रतिपक्षी उपशम, मृदुता, सरलता और

स तोष को धारण कर कषाय विजेता बनना चाहिये। क्यों कि ये कषाय ही पुनर्जन्म की जड़ को सींचने वाले अवगुण है।

पराक्रम-विनय-विवेक आदि- कष्ट परीषह एव मनोज्ञ-अमनोज्ञ, इन्द्रिय विषयों के प्राप्त होने पर अदीन-भाव से सहन करे। "देह दुक्ख महाफल" शारीरिक कष्टों को सम्यक् सहन करना, यह मोक्ष रूपी महान फल को देने वाला है। अपनी योग्यता, क्षमता, स्वास्थ्य का विचार कर स यम पालन करते हुए मुनि को तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि योगों में उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहना चाहिये। किन्तु प्रमाद नहीं करना चाहिये। बुढ़ापा, रोग और इन्द्रियों के अशक्त होने के पूर्व ही स यम में पराक्रम कर लेना चाहिये। रत्नाधिक भिक्षुओं की विनय भक्ति करना, किन्तु स यम मर्यादा का अर्थात् भगवदाज्ञा का उल्ल घन नहीं करना। निद्रा को बहुत आदर नहीं देना, हास्य का एव परस्पर बातें करने का वर्जन करना और सदा स्वाध्याय में लीन रहना चाहिये। मुनि आलस्य छोड़कर स यम, तप, स्वाध्याय में वृद्धि करे ।

गृहस्थ के लिये बने हुए, स्त्री-पशु से रहित और मलमूत्र परठने की भूमि से युक्त स्थान में ही ठहरना। गृहस्थों से स पर्क परिचय नहीं बढ़ाना। जिस भावना, लक्ष्य से-वैराग्य से, घर छोड़ कर स यम ग्रहण किया था उसी लक्ष्य को कायम रखना चाहिये। अन्य लक्ष्यों को स्थान न देते हुए उनसे मुक्त रहना चाहिये। स यम ग्रहण का लक्ष्य होता है- "स्व-आत्मकल्याण करना, शरीर का ममत्व न रख कर २२ परीषह जीतना, समभाव रखना और स पूर्ण इच्छाओं को, जीवन को जिनाज्ञा में समर्पित कर देना एव समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करके, सदा स्वाध्याय, ध्यान, वैयावृत्य में लीन रहना" अपनी क्षमता एव चित्त समाधि का ख्याल रखना तो सर्वत्र आवश्यक समझना चाहिये ।

ब्रह्मचर्य सुरक्षा- मुर्गी के बच्चे को सदा बिल्ली से भय रहता है, वैसे ही मुनि को स्त्री शरीर से। अतः सह-निवास नहीं करना। उनका रूप या चित्र नहीं देखना, दृष्टि पड़ते ही शीघ्र हटा लेना, जैसे कि सूर्य पर गई हुई दृष्टि हट जाती है। अतिवृद्ध, जर्जरित देह वाली स्त्री हो तो भी सहनिवास नहीं करना। ब्रह्मचारी भिक्षु के लिये तीन प्रवृत्तिएँ

तालपुट विष के समान है- विभूषा-शृंगार, स्त्री स सर्ग और पौष्टिक भोजन। सु दर रूप भी पुद्गल परिणमन है, क्षणिक है, परिवर्तनशील है, यह जानकर मुनि उनमें आसक्त न बने ।

अध्ययन-९ : विनय समाधि

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर- इस अध्ययन में ४ उद्देशकों में विषय को विभाजित किया है, यथा- (१) गुरु की अविनय आशातना नहीं करने और विनय रखने के लिये प्रथम उद्देशक में दृष्टा तों द्वारा समझाया है। (२) दूसरे उद्देशक में वृक्ष की उपमा से विनय को गुणों में मुख्य बताया है उसके बाद विनीत अविनीत की सुगति, दुर्गति होने का विश्लेषण दिया है। (३) तीसरे उद्देशक में पूज्य कौन होता है यह बताते हुए भिक्षु के अनेक गुणों का स ग्रह किया है। (४) चौथे उद्देशक में चार प्रकार की विनय समाधि का निरूपण गद्य-पद्यमय है। इस प्रकार चारों उद्देशकों में विनयाचार का महत्त्व स्थापित किया गया है ।

प्रश्न-२ : चारों उद्देशकों का स क्षिप्त सार क्या है ?

उत्तर- पहला उद्देशक- (१) गुरु रत्नाधिक भिक्षु अल्प वय, अल्प बुद्धि वाले हो तो भी उनका पूर्ण विनय करना चाहिये। उनकी कदापि हीलना नहीं करना चाहिये। (२) गुरु आदि की आशातना स्वय का ही अहित करने वाली होती है। (३) अग्नि पर चलना, आशीविष सर्प को छेड़ना, जीने की इच्छा से विष खाना, पर्वत को सिर से तोड़ने का प्रयत्न करना, सोये हुए सि ह को जगाना, तलवार की धार पर हाथ से प्रहार करना आदि जिस प्रकार दुखकारी और मूर्खतापूर्ण है, वैसे ही गुरु आदि की आशातना, हीलना करना भी स्वय के दुःखों की, स सार की वृद्धि करना है। अतः मोक्ष का अभिलाषी मुनि सदा गुरु आदि के चित्त की आराधना करते हुए रहे। (४)अग्निहोत्री(हवन करने वाले) जीवन पर्यंत एव महान विद्वान हो जाने पर भी अग्नि का सम्मान बहुमान रखते हैं, उसी प्रकार मुनि को केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाय तो भी गुरु आदि का विनय बहुमान करते रहना चाहिये। ऐसा करने वाला मुनि अनेक गुणों की आराधना कर परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

दूसरा उद्देशक– (१) वृक्ष के मूल से ही स्क धादि फल पर्यंत वृद्धि होती है, उसी प्रकार धर्म में विनय मूल की सुरक्षा एव वृद्धि से मोक्षफल पर्यंत सभी गुणों की उपलब्धि होती है। अर्थात् यह जिनशासन विनय मूलधर्म वाला है। विनय से युक्त मुनि को ही कीर्ति, श्लाघा, श्रुत आदि स पूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं। (२) अविनीत, अभिमानी, बोलने में फूहड़, मायावी व्यक्ति जल के तेज प्रवाह में पड़े लकड़े के समान दुःख स सार में गोते खाता(चक्कर काटता) रहता है। (३) स सार में भी अविनीत विद्यार्थी अध्यापकों से मार खाते हैं, अविनीत हाथी, घोड़े भी मारपीट से वश में किये जाते हैं। (४) देव बनने वालें में भी अविनीतों को हीन दशा–किल्विषक आदि की प्राप्ति होती है। (५) शिल्पकला सीखने वाले, अध्यापकों से कितने ही कष्ट सहन करके भी स्थिरबुद्धि से अभ्यास करने पर ही पार गत होते हैं। (६)अतः मोक्षार्थी मुनि आचार्य-उपाध्याय के अनुशासन से कभी स त्रस्त न बने। तभी उसे अक्षय सुख निधी परम–निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। (७) एक भव के सुख के लक्ष्य वाले भी कितने सहनशील बनते हैं, तो मुनि को अन त भव भ्रमण मिटाकर परम सुखी होने के लिये पृथ्वी के समान महान सहनशील होकर स यम आराधन करना चाहिये। (८) आचार्यादि के प्रति कभी खिन्न नहीं बनना, किन्तु उनकी सभी प्रकार की विनय भक्ति से चित्त की आराधना करना। उनके इशारे या स केत मात्र से समझ कर निर्देश अनुसार प्रवृत्ति करना। (९) अविनीत एव अवगुणों को धारण करने वाले की मुक्ति नहीं होती है। विनय से स पन्न शिष्य उत्तम गति को प्राप्त करता है।

तीसरा उद्देशक– इस उद्देशक में पूज्य कौन होता है वह बताते हुए भिक्षु के अनेक गुणों का स ग्रह किया गया है । जिसमें मुख्य विषय है– १. विनय २. शुद्ध अज्ञात भिक्षा ३. अल्प इच्छा ४. वचन रूपी बाणों को अपना मुनि धर्म समझ कर सहन करना। ५. भाषा विवेक ६. निन्दा का या विरोध भाव का त्याग ७. लोलुपता रहित होना ८. म त्र–त त्र निमित्त, कुतूहल से दूर रहना इत्यादि। जिस प्रकार सुपुत्री को माता पिता योग्य वर के साथ स्थापित करते हैं, उसी प्रकार योग्य शिष्य को गुरु आदि श्रेष्ठ श्रुतसम्पन्नता आदि गुणों से प्रतिष्ठित करते हैं एव उच्च श्रेणी में पहुँचा देते हैं। अतः गुरु की आज्ञा में रत रहने वाला

मुनि सत्यरत, जितेन्द्रिय, कषाय–मुक्त, जिनमत में निपुण होकर पूज्य हो जाता है और अ त में कर्म रज को पूर्ण नष्ट कर मुक्त हो जाता है ।

चौथा उद्देशक– मोक्ष प्राप्ति के लिये चार प्रकार की समाधि को मुनि धारण करे–विनय, श्रुत, तप एव आचार। **(१) विनय**–हितकारी अनुशासन को स्वीकर करना, गुरु की सुश्रुषा करना और घम ड़ को सदा अलग रखना ।

(२) श्रुत–श्रुत ज्ञान की वृद्धि होगी, चित्त एकाग्र होगा, यह समझकर अध्ययन में लीन रहना। श्रुत–स पन्न मुनि स्वय को और दूसरों को स यम में, धर्म में स्थिर रख सकता है, इसलिये सदा श्रुत का अध्ययन करते रहना चाहिये ।

(३) तप– इस लोक की किसी भी चाहनाओं को न रखते हुए एव परलोक की भी कोई चाहना न रखते हुए, एकान्त कर्म–निर्जरा के लिये तप करना। तप से यश, कीर्ति की भी चाहना नहीं होना चाहिये अर्थात् तप के साथ मोक्ष प्राप्ति के अतिरिक्त कोई स कल्प नहीं होना चाहिये। इस प्रकार के तप में सदा लीन रहना चाहिये।

(४) आचार–जिनाज्ञा को सदा प्रमुख रखते हुए एव तिनतिनाट न करते हुए, महाव्रत, ब्रह्मचर्य, स यम, समाचारी, परीषह–सहन आदि सभी का केवल मुक्ति हेतु एव जिनाज्ञा की आराधना के हेतु से पालन करना चाहिये। जिनाज्ञा विपरीत अन्य कोई हेतु लक्ष्य नहीं होना चाहिये। इन चारों समाधि से विशुद्ध आत्मा विपुल, हितकारी, सुखकारी, कल्याणकारी, निर्वाण पद को प्राप्त करता है अर्थात् नरकादि गतियों के जन्म–मरण से सर्वथा मुक्त हो जाता है ।

अध्ययन–१० : भिक्षु

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का परिचय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में भिक्षु कौन होता है, यह बताते हुए अनेक आचारों का एव गुणों का निर्देश किया गया है। उत्तराध्ययन के १५ वें अध्ययन में भी इसी पद्धति से वर्णन है, उस अध्ययन का नाम भी इसके समान है तथापि विषयों में एकरूपता नहीं है अर्थात् दोनों की स्वत त्र विशेषता है। गुण और आचार दोनों में अलग-अलग ढ़ ग से कहे गये हैं।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन में स यम आराधन स ब धी प्रेरणा शिक्षाओं का सार क्या है ?

उत्तर- (१) मुनि नित्य चित्त को स यम समाधि में रखे, स्त्री के वश में न होवे। वमन किए विषयों की इच्छा न करे। (२) भूमि न खोदे, न खुदवावे। कच्चा पानी न पीये न पीने को कहे। अग्नि न जलावे, न जलवावे। प खा न करे न करवावे। हरी का छेदन न करे, बीजों को वर्जन करता हुआ चले। सचित्त कभी भी न खावे। (३) त्रस-स्थावर प्राणियों की हिंसा होती है, यह जानकर मुनि अपने उद्देश्य से बने आहार को न खावे एव न स्वय पकावे, न अन्य से पकवावे। (४) छः काया को आत्मवत् समझे, पाँच महाव्रत पूर्ण पाले, पाँच आश्रव से सदा स वृत रहे। (५) चार कषाय का सदा वमन(त्याग) करे। जिनाज्ञा का दृढ़ता से पालन करे, गृहस्थ के कृत्य न करे। (६) शुद्ध समझ एव चिन्तन युक्त सम्यक्त्व, ज्ञान, तप, स यम धारण कर मन, वचन,काया से सुस वृत बने। (७) आहार प्राप्त कर उसे बा टकर खावे, स ग्रह न करे। (८) कलह-कदाग्रह से दूर रहे। (९) आक्रोश, प्रहार, तर्जनाओं को सहन कर सुख दुःख में एक समान रहे। (१०) अनेक विकट-तप एव भयानक प्रतिमाओं को धारण करे और शरीर की आका क्षा, ममत्व छोड़ दे।

(११) सहनशीलता में पृथ्वी के समान बने। (१२) जन्म मरण के महान भय को जानकर उससे अपनी आत्मा का उद्धार करने के लिये श्रामण्य एव तप में लीन रहे। (१३) हाथ, पाँव, काया, इन्द्रियों को पूर्ण स यत रखे एव सूत्रार्थ ज्ञान की वृद्धि करे। (१४) धर्मोपकरणों में भी मूर्छा-भाव, गृद्धि भाव न रखे। शरीर का ममत्व छोड़कर अज्ञात भिक्षा लेवे अल्प एव सामान्य आहार करे। क्रय-विक्रय से, स ग्रह से निवृत्त रहे। एव गृहस्थ-स सर्ग आसक्ति से भी मुक्त रहे। (१५) लोलुपी और रसगृद्ध न बने। दोषों का सेवन न करे और ऋद्धि, सत्कार, पूजा न चाहे। (१६) दूसरों को **यह कुशीलिया है** इत्यादि न कहे और न ही ऐसा कुछ कहे कि जिससे दूसरों को गुस्सा आवे। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य, पाप पुरूषार्थ भिन्न-भिन्न होते हैं, यह चिन्तन कर समभाव, मध्यस्थ भाव, करुणा भाव रखें। पर निन्दा एव स्वप्रश सा न करे। (१७) अपनी जाति, रूप, लाभ, ज्ञान आदि सभी प्रकार के मद

का त्याग करना एव धर्मध्यान में सदा लीन रहना। (१८) स यम धारण कर कुशीलता का त्याग करना। स्वय स यम धर्म में स्थिर रहना, दूसरों को स्थिर करना। हास्य, कुतूहल का त्याग करना। (१९) इस प्रकार मुनि नित्य आत्महित में स्थिर होकर, देहावस्था का त्याग कर, देहातीत बनकर, जन्म मरण से मुक्त हो जाता है।

चूलिका-१,२

प्रश्न-१ : दस अध्ययन कहकर फिर इसे चूलिका क्यों कहा ? ग्यारहवा या बारहवाँ अध्ययन कह सकते थे ?

उत्तर- मौलिक विषय का विभाजन अलग किया जाता है और भिन्न विषय का विभाजन अलग होता है। कोई भी आगम या ग्र थ में मौलिक विषय विश्लेषण के बाद अन्य विषय परिशिष्ट रूप में दिये जाते हैं। उसी प्रकार यहाँ दशवैकालिक सूत्र का साध्वाचार विषय १० अध्ययन में पूर्ण किया है। आगे कुछ अन्य शिक्षा का विषय लिया है कि किसी का मन स यम में स्थिर नहीं हो तो उसे "शिक्षित करने के वचन, उपदेश वचन।" वह स्वत त्र विषय हो जाता है। अतः वह परिशिष्ट रूप होने से आगमकारों ने ऐसे अध्याय को चूलिका नाम रखा है। हम भी ध्यान से देखेंगे समझेंगे तो यह स्पष्ट होगा कि स यम में उत्पन्न अरति को हटाकर स यम में रति पैदा हो वैसा उपदेश दश-वैकालिक के आचार विषय से स्वत त्र-अलग विषय है। इसलिये यह **रतिवाक्य** नाम से प्रथम चूलिका रखी है।

इसी तरह दूसरी चूलिका का नाम **एकाकी चर्या** है। उसमें भी विशेष कर्म स योग से गच्छ में निर्वाह न हो सके, समाधि नहीं रह पावे तो स यम छोड़ने की अपेक्षा अकेला रहना पड़े, तो वह स्वीकार कर लेना किंतु स यम नहीं छोड़ना और समूह में नहीं रहकर अकेले रहना, म जूर कर लेना। यह भी एक विशेष परिस्थिति का हित स देश है जो दशवैकालिक के मौलिक आचार विषय से अलग है। अतः परिशिष्ट के स्थान पर चूलिका रूप रखना सर्वथा उपयुक्त है। परिशिष्ट, ग्र थ एव निब ध में होते हैं। आगम के लिये चूलिका शब्द प्रसिद्ध है। १२ वें

अ गशास्त्र में भी चूलिका विभाग है। मेरुपर्वत के भी चूलिका विभाग है। मानव के भी शरीर के अ गोपा ग के सिवाय चोटी(बालों की चूलिका) अलग होती है। अतः दशवैकालिक सूत्र में आवश्यक समझ कर शास्त्रकार ने दो स्वत त्र विषयों को चूलिका रूप में दिया है।

प्रश्न-२ : प्रथम रतिवाक्या चूलिका के वर्णन का सार क्या है ?

उत्तर- अस्थिर आत्मा वाले को इस प्रकार विचार करना चाहिये-(१) हे आत्मन् ! इस दुस्समकाल-पाँचवें आरे का जीवन ही दुःखमय है। (२)गृहस्थ लोगों के काम भोग अत्यल्प और अल्पकालीन हैं। (३) स पर्क में आने वाले लोग बहुत मायावी-स्वार्थी हैं। (४) यह उत्पन्न दुःख अधिक समय रहने वाला तो नहीं है। (५) गृहस्थ जीवन में कई सामान्य लोगों की गरज करनी पड़ती है। (६) गृहस्थ बनना वमन किए हुए को चाटना, पुनः खाना है ।(७) निम्न स्तर में जाना है या दुर्गति की तैयारी है। (८) गृहस्थ जीवन में धर्मपालन अति कठिन होता है। (९-१०) रोग एव स योग-वियोग के स कल्प आत्मसुखों का नाश करने वाले हैं।

(११-१२) गृहवास-क्लेश, कर्मब ध और पाप से परिपूर्ण है, किन्तु स यम क्लेश रहित, मोक्ष रूप और पाप रहित है। (१३) गृहस्थ के सुख कामभोग अत्य त तुच्छ सामान्य है। (१४) जीवों को अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख दुःख भोगने आवश्यक है। (१५) मनुष्य जीवन ओसबिन्दु के समान अस्थिर है। (१६) हे आत्मन् ! निश्चय ही पूर्व में बहुत पापकर्म का स चय कर रखा है। (१७) पूर्व स चित दुष्कृत का फल अवश्य भोगना होगा या तप से क्षय करना होगा, तभी मुक्ति हो सकती है। (१८) कोई भी अस्थिरात्मा स यम को छोड़ने के बाद में पश्चाताप करता है। देवलोक के इन्द्र, देव, राजा, नगर सेठ आदि अपने स्थान से च्युत होकर निम्न स्थानों को प्राप्त करके पूर्व अवस्था का स्मरण करके खेद करते हैं। उसी प्रकार जवानी बीत जाने पर वृद्धावस्था में वह स यम त्यागने वाला खेद करता है। (१९) जब कुटु ब परिवार की अनेक चि ताओं से चि तित होता है, तब कीचड़ में फँसे हाथी के समान पश्चाताप करता है। उसे यह विचार आता है कि यदि साधु अवस्था में होता तो आज बहुत बड़ा आचार्य, बहुश्रुत बनता।

(२०) वास्तव में ज्ञान और वैराग्य से युक्त होकर स यम तप में लीन बने तो स यम महान सुखकर है एव उच्च देवलोकों के समान आन दकर है। किन्तु स यम में अरुचि रखने वालों के लिये वही स यम महान नरक के समान दुःखकर हो जाता है।

(२१) यह जानकर सदा स यम में रमण करना चाहिये अर्थात् स्वाध्याय, ध्यान, तप में तल्लीन रहना चाहिये। (२२) स यम च्युत की एव भोगों में आसक्त की अपयश, अकीर्ति और दुर्गति होती है। (२३) अतः मुनि विचार करे कि नरक के अस ख्य वर्षों के दुःख के आगे ये स यम के मानसिक आदि दुःख अत्य त नगण्य है। यह दुःख, यह शरीर और ये भोग सभी अल्पकालीन हैं, क्षणिक हैं। (२४) इस प्रकार अपनी आत्मा को अनुशासित कर हिताहित, हानि-लाभ का विचार कर स यम में स्थिर रहना चाहिये और मन वचन काया से जिनाज्ञा की आराधना करनी चाहिये।

प्रश्न-३ : दूसरी एकाकी विहारचर्या चूलिका में प्रार भ की उपदेशी ९ गाथाओं के विषय का सार क्या है ?

उत्तर- (१) स सार की समस्त वृत्तियाँ अनुश्रोत-प्रवाह में चलने के समान है और स यम के समस्त आचार प्रतिश्रोत-प्रवाह के सामने चलने के समान है अर्थात् इच्छा-सुख, इन्द्रिय सुख एव लोक प्रवाह से स यम के आचार नियम विपरीत या विलक्षण ही होते हैं। इ द्रियाभिमुख प्रवृत्ति और १८ पाप सेवन स सार(अनुश्रोत)है। इन्द्रियों से विरक्त(उदासीन) प्रवृत्ति और पाप त्याग प्रयत्न धर्म (प्रतिश्रोत गमन)है। (२) स यमचर्या, गुणनियम आदि ये स वर एव समाधि की मुख्यता वाले हैं। (३) अनियत वास, अनेक घरों से आहार प्राप्ति, अज्ञात घरों से अल्प आहार ग्रहण, एकान्तवास, अल्प उपधि ये मुनि के प्रशस्त आचार है ।

आकीर्ण=जनाकुल स खड़ी वर्जन, दृष्ट स्थान से दिया जाने वाला आहार ही ग्रहण करना, पश्चात् कर्म आदि दोष वर्जन, मद्य, मा स, मत्स्य आहार का त्याग, बार बार कायोत्सर्ग एव स्वाध्याय के योगों में ही प्रयत्नशील रहना ये भिक्षु के आवश्यक आचार है। किसी भी शयनासन या ग्रामादि में ममत्वभाव नहीं करना, प्रतिबद्ध नहीं होना, गृहस्थ सेवा एव उनका व दन, पूजन न करना, स क्लेशकारी साथियों

के साथ नहीं रहना, स यमगुणों की हानि न हो इसका ध्यान रखना ।

प्रश्न-४ : दूसरी चूलिका में एकाकी विहार स ब धी अगली गाथाओं का सार क्या है ?

उत्तर- पुण्याभाव से सहयोगी शा ति प्रदायक गुणवान साथी न मिले तो स यम छोड़ने का स कल्प न करके अकेले ही स यम पालन करना। भिक्षु एकलविहार चर्या काल में अत्य त सावधान रहे। कामभोगों में, इन्द्रिय विषयों में अनासक्त रहे। उत्कृट १ वर्ष तक पुनः उस क्षेत्र में न आवे जहाँ उत्कृष्ट कल्प चातुर्मास रहा हो। अन्य भी सूत्राज्ञाओं का पूर्ण ध्यान रखे। सदा सोते उठते आत्म निरीक्षण, गवेषण करे। क्या पुरुषार्थ तप स यम में किया और क्या करना है ? शक्ति होते हुए भी क्यों नहीं कर रहा हूँ। दूसरों को मेरे क्या अवगुण दिखते हैं और मुझे क्या दिखते हैं ? कौन से दोषों को मैं जानते हुए भी नहीं छोड़ रहा हूँ। इस प्रकार विचार करके एव कोई भी दूषण लगे तो उसे शीघ्र दूर करके गुणों को धारण करे।

इस प्रकार के प्रयत्न वाला अकेला होते हुए भी सदा स यम जीवन से जीता है, अतः लोग उसे आत्मार्थी, उच्च आत्मा की दृष्टि से देखते हैं। साधक को सभी इन्द्रियों को समाधि में रखते हुए कर्मब ध से आत्मा की रक्षा करनी चाहिये। आत्मरक्षा नहीं करने वाला जन्म मरण बढ़ाता है। सच्चा आत्म रक्षक सर्व दुःखों का अ त कर मोक्ष प्राप्त करता है।

॥ दशवैकालिक सूत्र स पूर्ण ॥

न दीसूत्र

प्रश्न-१ : न दी सूत्र का परिचय, इतिहास क्या है ?

उत्तर-स्थानकवासी जैनों द्वारा मान्य ३२ आगमों में यह शास्त्र चार मूल सूत्रों में तीसरा आगम है। न दी सूत्र की आगम सूचि के अ दर भी न दी सूत्र का नाम उत्कालिक सूत्रों में गिनाया गया है। आगमकारों की यह पद्धति व्यवहार सूत्र में देखने को मिलती है। उसके रचनाकार १४ पूर्वधरश्री भद्रबाहु स्वामी है। उन्होंने व्यवहार सूत्र के दसवें अध्ययन में साधु-साध्वी के अध्ययन का क्रम दिया है उसमें व्यवहार सूत्र का नाम भी पाँच वर्ष की दीक्षा पर्याय तक के कथन में दिया है । अतः यह पद्धति पूर्वाचार्यों से सम्मत है ।

विषय- न दी सूत्र में पाँच ज्ञान के विषय का अपने ढ ग के क्रम से वर्णन किया गया है। उसके सिवाय प्रार भ में ५० गाथाओं द्वारा तीर्थंकर,गणधर एव अन्य भी बहुश्रुत अनुयोगधर महान आचार्यो की स्तुति गुणगान पूर्वक भक्ति प्रगट की है। अ तिम गाथा न . ५० में न दी सूत्रगत ज्ञान के विषय की प्ररूपणा करने की प्रतिज्ञा के वचन उत्थानिका रूप में है।

परिमाण- इस सूत्र में अध्ययन उद्देशक आदि कोई विभाग नहीं है, यह इसकी अपनी अलग विशेषता है। उपलब्ध इस सूत्र को ७०० श्लोक प्रमाण माना जाता है। वास्तव में गिनती करने पर २०६८६ अक्षर होते हैं जिसके ३२ अक्षर के प्रमाण से ६४६ श्लोक होते हैं, १४ अक्षर शेष रहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि लेखन काल में अपेक्षा से, पर परा से या अनुमान से श्लोक स ख्या अ कित की जाती रही है। जो अब तक वैसी ही मान्य की जा रही है। प्रकाशन युग में कई स पादक अक्षरों की गिनती करके देने का प्रयास करने लगे हैं।

नामकरण- इस शास्त्र में मुख्यतः ज्ञान का वर्णन है। ज्ञान, आत्मा को वास्तविक आन द देने वाला होता है। अतः इस सूत्र का न दी-आन द देने वाला शास्त्र, यह नाम भी सार्थक रखा गया है।

स स्करण- न दी सूत्र पर प्राचीन चूर्णि-टीकाएँ प्रकाशित हैं। अन्य भी मूल, अर्थ, विवेचन युक्त अनेक स स्करण प्रकाशित हुए हैं। म गल

रूप में समझकर भी साधु साध्वी इसका समय-समय पर स्वाध्याय करते हैं एव व्याख्यान में वा चन भी करते है। इसलिये भी इसके स स्करणों की प्रचुरता है। आगम सारा श प्रावधान में भी इसकी स्वत त्र पुस्तक पुष्प २३ के रूप में छपी है। जैनागम नवनीत आठ भागों के पाँचवे भाग में भी यह सूत्र रखा है। तथा अभी इस प्रश्नोत्तर प्रावधान में भी इसे दसवें भाग में दे रहे हैं ।

प्रश्न-२ : इस सूत्र के रचनाकार कौन है ? और उसके विषय में ऐतिहासिक दो विकल्पों का भी स्पष्टीकरण करें ?

उत्तर- इस सूत्र की रचना देववाचक श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने की है जो आचार्य श्री दुष्यगणि के शिष्य थे। जिन्होंने समस्त जैनागमों को वीर निर्माण ९८० में लिपि बद्ध कराया था। न दी सूत्र की रचना के समय वे उपाध्याय पद पर थे, शास्त्र लेखन के समय वे आचार्य पद पर थे। उस समय भाषा शैली में उपाध्याय पद के लिए वाचक शब्द का प्रयोग होता था और आचार्य पद के लिए गणि शब्द का प्रयोग किया जाता था एव युग प्रधान के लिये क्षमाश्रमण लगाया जाता था। अतः न दी सूत्र के रचयिता देववाचक ही सूत्र लेखन करवाने वाले देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण थे। यथा-वर्तमान में आचार्य श्री आत्मारामजी म॰ सा॰ पहले उपाध्याय पद से प्रसिद्ध थे फिर आचार्य पद से। न दी सूत्र के एक स पादन में भूमिका लेखक के रूप में उपाध्याय श्री आत्मारामजी म॰ सा॰ लिखा है एव अन्य कई जगह आचार्य श्री आत्मारामजी म॰सा॰ ऐसा लेख मिलता है। काला तर में इन दो नामों से भिन्नता का भ्रम होना सहज है। फिर भी वास्तव में दोनों नाम वाले व्यक्ति एक ही है।

इसी प्रकार वर्तमान में आचार्य श्री हस्तीमलजी म॰ सा॰ पूर्व में आचार्य पद पर रहे, बीच में उपाध्याय पद पर एव पिछले वर्षो में पुनः आचार्य पद पर रहे। इसी बीच उन्होंने किसी आगम का स पादन किसी स वत् में उपाध्याय पद में किया। किसी आगम या ग्र थ का स पादन किसी स वत् में आचार्य पद में किया। इस प्रस ग को लेकर भविष्य में नाम भिन्नता या व्यक्ति भिन्नता का भ्रम हो जाना सहज स भव है फिर भी वास्तव में आचार्य हस्तीमल या उपाध्याय हस्तीमल प्रयोग से व्यक्ति भिन्न नहीं है, एक ही व्यक्ति की दो अवस्थाएँ हैं।

उसी प्रकार देवर्धिगणी का भी दीर्घ स यम काल रहा है। उसमें पद विशेष की विविधता और उससे नाम विविधता स भव है। सार यह है कि दूष्यगणी के शिष्य श्री देववाचक अपर नाम देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ही न दी सूत्र के रचयिता हैं। कल्प सूत्र में देवर्धिगणि का कुछ परिचय मिलता है उससे भी भ्रम उत्पन्न होता है किन्तु उस सूत्र की प्रामाणिकता ही पूर्ण स देह युक्त है। इसके लिए दशाश्रुतस्क ध का प्रथम परिशिष्ट देखना चाहिए। उसके रचयिता भी देवर्धिगणि को माना जाता है और उसमें देवर्धि की स्तुति गुणग्राम युक्त व दना भी की गई है। ऐसे ही कई कारणों से कल्प सूत्र को ३२ या ४५ प्रामाणिक आगमों में नहीं गिना गया है ।

इसी प्रकार आचार्य देवेन्द्र मुनि भी पहले उपाचार्य देवेन्द्र मुनि के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं और उन्होंने अपने जीवन में अनेक ग्र थो का लेखन स पादन किया है। जिसमें कहीं उपाचार्य विशेषण लगा है कही आचार्य लगा है और कई साहित्य पर केवल देवेन्द्र मुनि बिना पदवी के भी लिखा है फिर भी तीनों नाम और वे ग्र थ सभी एक ही व्यक्ति के मानने चाहिये। भले ही तीन का भ्रम हो तो वह अनुभव बिना मात्र शब्द की पकड़ने वाली बात है।

सार यह है कि देवर्धिगणी क्षमाश्रमण और देव वाचक दोनों नाम एक ही व्यक्ति के होने से न दी सूत्र के कर्ता देव वाचक को देवर्धिगणि ही मानना चाहिए।

वास्तव में ग्यारह अ ग सूत्र तथा चार छेद सूत्र के सिवाय एव अनुयोगद्वार सूत्र के सिवाय सभी अ ग बाह्य शास्त्रों की स कलना देवर्धिगणि के शास्त्र लेखन काल की माननी चाहिये। उस समय ही अलग-अलग आचार्यों या बहुश्रुतों द्वारा विभिन्न शास्त्र स कलन स पादन या रचना करवाये गये थे। इसमें प्रज्ञापना, दशवैकालिक को भी समझ लेना विवाद रहित होता है। उत्तराध्ययन, न दी, ऋषिभाषित आदि सभी समझ लेने चाहिये। रचनाकार के नाम लिखने की पर परा नही रखी गई थी। क्यों कि सामुहिक स घ हित में कार्य किया गया था। खुद देवर्धिगणी या देव वाचक नाम भी न दी सूत्र के मूल में नहीं है। प्रज्ञापना के मूल में या दशवैकालिक के मूल में भी किसी का नाम नहीं है। नाम तो जो भी उपलब्ध है वह १-२ पीढ़ी बाद किसी

विनीत शिष्यों ने प्रार भ में स्तुति रूप में या प्रचारित रूप में मौखिक चलाया होगा। जो आगे जाकर लिखित ग्र थो में व्याख्या में मिलने लगा है ।

प्रश्न–३ : न दी सूत्र में ज्ञान का वर्णन क्रम कैसा लिया गया है ?

उत्तर– अन्य सूत्रों में पाँच ज्ञान के नाम का क्रम इस प्रकार है– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान ।

प्रस्तुत सूत्र में प्रत्यक्षज्ञान और परोक्षज्ञान ऐसे दो भेद किये है।प्रत्यक्ष में आत्मप्रत्यक्षीभूत ज्ञान की अपेक्षा रखी गई है, चक्षु प्रत्यक्षीभूत की नहीं। अतः आत्म प्रत्यक्षीभूतज्ञान अवधि, मनःपर्यव एव केवल ज्ञान का स्वरूप क्रमशः प्रथम बताया गया है और फिर परोक्षज्ञान में मति, श्रुतज्ञान को कहकर उसके भेद-प्रभेद के क्रम से स्वरूप स्पष्ट किया है। इस तरह इस शास्त्र में ज्ञान का अन्य आगम प्रचलित क्रम से भिन्न क्रम इस प्रकार है– (१) अवधिज्ञान (२) मनः पर्यवज्ञान (३) केवलज्ञान (४) मतिज्ञान (५) श्रुतज्ञान । इस क्रम से लेने की जो अपेक्षा है वह मूलपाठ से ही स्पष्ट हो जाती है। अतः स्वत त्र अपेक्षा होने से वर्णन क्रम भिन्न है, इसमें कोई दुविधा नहीं समझनी चाहिये। क्यों कि अपेक्षा शब्द बहुत विशालता को अपने अ दर समाविष्ट करके बना है। जीवाभिगम में इसी **अपेक्षा** शब्द प्रयोग से जीव के २ से लेकर १० भेद भी होना स्वीकार किया गया है ।

जिस श्रुतज्ञान से लोक का बहुत अल्पज्ञान होता है, केवलज्ञान की तुलना में यह सि धु में बिंदु जितना भी नहीं है तो भी अपेक्षा शब्द लगाकर शास्त्रकार ने इसके लिये केवलज्ञान के विषय जितने भावों का कथन कर दिया है। यथा– अपेक्षा से श्रुतज्ञानी सर्वद्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल, सर्व भाव जानता और देखता है–**(भगवती सूत्र।)** इसलिये इस शास्त्र में प्रत्यक्ष-परोक्ष ज्ञान की अपेक्षा ज्ञान का वर्णन क्रम भिन्न हुआ है, वह तर्क अबाधित समझना चाहिये ।

प्रश्न–४ : प्रार भ की ५० गाथाएँ मौलिक है या बाद में रची गई है? अकाल में एव अस्वाध्याय काल में उनकी स्वाध्याय कर सकते हैं?

उत्तर– ये गाथाएँ देवर्धिगणि क्षमाश्रमण की खुद की रचना है। उन्होंने न दी सूत्र के ज्ञान की प्ररुपणा करने की प्रतिज्ञा भी पचासवीं गाथा में

की है –**' णाणस्स परूवण वोच्छ ।'** यह पचासवीं गाथा स्तुति की उपस हार गाथा है। इसमें स्पष्ट कहा है कि– जिनका नाम गुण युक्त उपर वर्णन नहीं किया गया ऐसे अन्य भी कालिक श्रुत अनुयोग धर भगव त जो हो गये हैं उन सभी को व दन करके अब में ज्ञान की प्ररूपणा करुँगा। इससे स्पष्ट है कि यह ५० वीं गाथा न दी सूत्र कर्ता की स्वय की है और पचासवीं गाथा जिनकी है तो ४९ गथाएँ भी उनकी रचित ही समझनी चाहिये। इस प्रकार ५० गाथा सहित पूरा न दी सूत्र एक ही शास्त्र है। अतः ५० गाथा की असज्झाय काल में सज्झाय करने को उचित नहीं कहा जा सकता। जिसने भी ऐसी मान्यता चलाई है वह उसका स्वय का मतिभ्रम है। एक के मतिभ्रम को नहीं समझने से बाद के श्रद्धेय केवल पर परा से चलते रहते हैं। अ ध श्रद्धा में फिर तर्कणा शक्ति या विचारकता नहीं रहती है।

प्रश्न–५ : इन ५० गाथाओं का भावार्थ स क्षिप्त में क्या है ?

उत्तर–(१) जगत गुरू जगत नाथ, जगत ब धु, जगत पितामह, सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के विज्ञाता, अ तिम तीर्थंकर महात्मा महावीर जयव त हो। (२) जगत में भाव उद्योत करने वाले, देवदानवों से व दित, कर्मो से मुक्त, वीतराग भगवान महावीर का (उनके शासन का) भद्र हो । (३) १. नगर की उपमा वाले, २. चक्र की उपमा वाले, ३३ रथ की उपमा वाले, ४. कमल की उपमा वाले, ५. चन्द्र ६. सूर्य ७. समुद्र ८. मेरू की उपमा वाले महास घ की सदा जय हो तथा ऐसे गुणागर स घ को व दन हो। (४) आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर चरम तीर्थंकर भगवान वर्द्धमान स्वामी को एव गणधरों को व दन हो।

(५) निर्वाण मार्ग का पथ प्रदर्शक, स पूर्ण पदार्थो का सम्यग् ज्ञान कराने वाला, कुदर्शन–मिथ्यामत का मद नष्ट करने वाला, ऐसा जिनेन्द्र भगवान का शासन जयव त हो। (६) भगवान के शासन को चलाने वाले पट्टधर शिष्य एव कालिक श्रुत और उसके अनुयोग(अर्थ परमार्थ) के धारण करने वाले बहुश्रुतों को व दन नमस्कार हो। उनमें १. सुधर्मा २. जम्बू दो मोक्षगामी है शेष देवलोकगामी बहुश्रुत भगव त है। वे इस प्रकार है– ३. प्रभव ४. शयम्भव ५. यशोभद्र ६. सम्भूतविजय ७. भद्रबाहु ८. स्थूलभद्र ९. महागिरी १०. सुहस्ती, ११ बलिस्सह, १२.

स्वाति, १३. श्यामार्य, १४. शाण्ड़िल्य, १५. समुद्र, १६. म गू, १७. धर्म, १८. भद्र गुप्त, १९. वज्र, २०. रक्षित, २१. नन्दिल, २२. नागहस्ति, २३. रेवती नक्षत्र, २४. ब्रह्मदीपिक सि ह, २५. स्क दिलाचार्य, २६. हिमव त, २७. नागार्जुन, २८. गोवि द, २९. भूतदिन्न, ३०. लोहित्य, ३१. दूष्य गणी इनके अतिरिक्त और भी जो कालिक श्रुत के अर्थ परमार्थ को धारण करने वाले अनुयोगधर हुए हैं उन सभी को प्रणाम करके ज्ञान की प्ररूपणा करूँगा ।

ये नाम न एका त गुरू पर परा के हैं, न स्थविर पर परा के और न ही पाट पर परा के हैं किन्तु सभी मिश्रित है। मुख्यतया युग पुरुष, प्रसिद्धि प्राप्त अनुयोगधरों का नाम लेकर अवशेष को अ तिम गाथा से प्रणाम किया है। अ तिम नाम दूष्यगणि का है खुद का नाम भी सूत्रकार ने मूल पाठ में नहीं रखा है। टीकाकार और चूर्णिकार ने स्पष्ट किया है कि दूष्यगणि के शिष्य देववाचक देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण यह स्तुति करने वाले हैं वे ही सूत्र के रचयिता हैं।

प्रश्न–६ : श्रोता और परिषद के कितने प्रकार है ?

उत्तर– श्रोता, योग्य और अयोग्य के भेद से दो प्रकार के होते है, उन्हें यहाँ १४ दृष्टा त के द्वारा (कथानक द्वारा) समझाया है। परिषद को तीन प्रकार की कहा है– (१) जाणिया=सुशिक्षित (२) अजाणिया=मूढ़ (३) दुवियड्ढा=ग्रामीण प ड़ित के समान अभिमानी अविनीत, दुराग्रही, झूठे ही मनमाने बने प ड़ित जन तीसरी दुर्विदग्धा परिषद में गिने गये हैं। पहली परिषद पूर्ण योग्य है। दूसरी परिषद भी योग्य है और तीसरी परिषद वाला शास्त्र श्रवण के सर्वथा अयोग्य है ।

प्रश्न–७ : ज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर– ज्ञान आत्मा का निजगुण है जो ज्ञानावरणीय कर्म से आवरित होकर विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होता है। जैनागमों में वह ज्ञान पाँच भागों में विभक्त है। यथा– १ मतिज्ञान, २ श्रुत ज्ञान, ३ अवधि ज्ञान, ४ मनः पर्यव ज्ञान, ५ केवल ज्ञान । इन पाँचों ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय कर्म भी पाँच प्रकार का कहा गया है। (१) मतिज्ञानावरणीय (२) श्रुत ज्ञानावरणीय (३) अवधि ज्ञानावरणीय (४) मनः पर्यवज्ञानावरणीय । इन चार कर्म प्रकृतियों का जितना जितना

क्षयोपशम बढ़ता जाता है उतने उतने वे चारों ज्ञान बढ़ते जाते है और इन चारों कर्मों का उदय बढ़ता जाता है तो वे चारों ज्ञान घटते जाते हैं। (५) केवल ज्ञानावरणीय कर्म प्रकृति का तो एक साथ क्षय ही होता है, क्षयोपशम नहीं होता। क्षय होने पर केवल ज्ञान (और साथ में केवल दर्शन भी) प्रकट होता है। चार ज्ञान में घटना, बढ़ना या विलुप्त हो जाना होता रहता है किन्तु केवल ज्ञान में ऐसी कोई अवस्था नहीं होती है। वह उत्पन्न होने के बाद सदा और सभी को एक सरीखा रहता है। फिर कभी भी विनष्ट नहीं होता है। यह आत्मा का स्थाई और परिपूर्ण ज्ञान है ।

प्रश्न–८ : ज्ञान के भेद–प्रभेद किस प्रकार किये है ?

उत्तर– ज्ञान के दो प्रकार है– प्रत्यक्ष और परोक्ष ।प्रत्यक्ष के दो भेद– इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पाँच भेद– श्रोत्रेन्द्रिय आदि। नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष के ३ भेद– अवधि, मनःपर्यव, केवल ज्ञान। परोक्ष ज्ञान के दो भेद– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान ।

प्रश्न–९ : मतिज्ञान के भेद–प्रभेद किस प्रकार किये हैं ?

उत्तर– यह ज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान के नाम से भी आगम में कहा जाता है किन्तु इसका मतिज्ञान यह नाम भी लघु, सरल और आगम सम्मत है। यह ज्ञान आत्मा को मन और इन्द्रियों के अवलबन से होता है अर्थात् देखने, सुनने, सू घने, चि तन करने एव स्पर्श रस आदि के अनुभव करने रूप विविध प्रकार से उत्पन्न होता है अथवा बुद्धि जन्य जो भी ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है। मतिज्ञान के मुख्य दो प्रकार है– १ श्रुतनिश्रित, २ अश्रुत निश्रित। (१) मन और इन्द्रिय के निमित्त से अर्थात् देखने सुनने सोचने के निमित्त से होने वाला मति ज्ञान श्रुतनिश्रित कहा गया है और (२) चार बुद्धि के द्वारा होने वाला मति ज्ञान अश्रुतनिश्रित कहा गया है ।

(१) श्रुतनिश्रित मतिज्ञान– इस ज्ञान के होने की चार अवस्थाए हैं– १. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय, ४. धारणा । (१) किसी भी वस्तु या विषय को सर्व प्रथम इ द्रिय द्वारा ग्रहण करना अर्थात् सामान्य देखना, सुनना आदि यह अवग्रह है। (२) उस पर विचारणा करना कि यह शब्द या रूप आदि क्या, कौन, कैसा है ? यह ईहा है। (३) विचारणा

करते-करते एक निर्णित रूप दे देना कि यह वहीं है, वैसा ही है, इत्यादि यह अवाय है (४) इस निर्णित किये, जाने, समझे हुए तत्त्व या विषय को कुछ समय तक या अधिक ल बे समय तक स्मृति में धारण करना धारणा है। इन्हें उदाहरण से इस प्रकार समझे- १.दूर से किसी मनुष्य का दिखना यह अवग्रहण **अवग्रह** है, २.उस पर चि तन करना कि कौन है, कहाँ का है, इसका नाम गौतम है या पारस है ? इत्यादि, निर्णय के पूर्व विचारणा करना, यह **ईहा** है, ३ यह गौतम है, ऐसा एक निर्णय कर लेना **अवाय** है। ४ इस व्यक्ति को या प्रस ग को कुछ दिन या कुछ वर्ष याद रखना **धारणा** है । यह रूप का उदाहरण दिया गया है। इसी तरह ग ध, शब्द, रस, स्पर्श के विषय में भी समझ लेना चाहिये ।

अवग्रह एक समय का होता है। ईहा, अवाय, अ तर्मुहूर्त का होता है और धारणा उत्कृष्ट स ख्याता अस ख्याता वर्ष की होती है अर्थात् अस ख्य वर्ष के बाद भी पूर्व की बात स्मृति में रह सकती है या स्मरण करने से स्मृति में आ सकती है ।

जातिस्मरण ज्ञान- धारणा के प्रतिफल से व्यक्ति का अनुभव ज्ञान बढ़ता रहता है और इसी के परिणाम स्वरूप कई जीवों को जाति स्मरण ज्ञान हो जाता है। इस ज्ञान से जीव अपने जन्म जन्मा तरों की बात को याद कर लेता है अर्थात् पूर्व भवों की अनेकों घटनाएँ उसे स्मृति में आ जाती है। यह जातिस्मरण ज्ञान, मतिज्ञान का ही एक रूप है। उसके द्वारा अनेक सैंकड़ो भव भी जाने जा सकते हैं। इसमें एक नियम यह है कि आज से पूर्व में जो जितने लगातार सन्नी प चेन्द्रिय के भव किए हैं, उन्हीं का ज्ञान हो सकता है। बीच में कोई असन्नी का भव किया होगा तो वहाँ जातिस्मरण ज्ञान अवस्थित हो जाएगा अर्थात् उसके आगे के भव का ज्ञान नहीं होगा।

इस तरह यह अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा रूप चार प्रकार का श्रुत निश्रित अर्थात् इन्द्रियजन्य मतिज्ञान है। अपेक्षा से इसके मूल भेद २८ और विषय की अपेक्षा ३३६ भेद होते हैं ।

(२) अश्रुत निश्रित मतिज्ञान- यह ज्ञान बुद्धि की अपेक्षा रखता है और बुद्धि चार प्रकार की कही गई है।अतः इस अश्रुत निश्रित मतिज्ञान के भी चार प्रकार है। चार बुद्धि इस प्रकार है- (१) बिना किसी

अभ्यास के क्षयोपशम के कारण ही अचानक स्वतः जिसकी उपज हो, उत्पत्ति हो, सूझ-बूझ हो, वह 'औत्पातिकी बुद्धि' है (२) गुरू आदि की विनय भक्ति सेवा से जो उन्नत बुद्धि प्राप्त होती है, वह 'वैनयिकी बुद्धि' है। (३) शिल्पकला आदि किसी कार्यों के अभ्यास से उत्पन्न जो म जी हुई बुद्धि होती है वह 'कर्मजा बुद्धि' है। (४) चिरकाल तक पूर्वापर का पर्यालोचन विचारणा करने से अथवा उम्र के परिपक्व होने से उत्पन्न जो अनुभविक बुद्धि है, वह 'पारिणामिकी बुद्धि' है। अथवा अनुमानित योजना से कार्य करने पर सही परिणाम को प्राप्त कराने वाली बुद्धि परिणामिकी बुद्धि है। इन चारों प्रकार की बुद्धि को क्रियात्मक रूप से समझने के लिए सूत्र में कुछ दृष्टा तों का स केत किया गया है। उनमें से कुछ दृष्टा त सारा श पुष्प २० के परिशिष्ट में दिये हैं।

विशेष- अवग्रह, ईहा, अवाय से जो वस्तु का निर्णय होता है उसी निर्णय में जब पुनः नूतन धर्म को जानने की अभिलाषा होती है तब पुनः विचारणा के द्वारा नूतन ईहा होती है, ऐसी स्थिति में वह पूर्व का अवाय इस नूतन ईहा के लिए अवग्रह हो जाता है। इस प्रकार विशेष-विशेष नूतन धर्म की अपेक्षा पूर्व-पूर्व के अवाय भी अवग्रह बन जाते हैं। अर्थात् अपेक्षा से अवाय भी अवग्रह से पुनः प्रार भ होते हैं। ऐसा सामान्य से विशेष विशेषतर नूतन धर्म(गुण) की जिज्ञासा से होता है ।

मतिज्ञान के पर्यायवाची शब्द- १.ईहा, २.अपोह, ३.विमर्श, ४. मार्गणा, ५.गवेषणा, ६.स ज्ञा, ७.स्मृति, ८.मति, ९.प्रज्ञा, १०.बुद्धि।

मतिज्ञान का विषय- (१) द्रव्य से-मतिज्ञानी अपेक्षा से सर्व द्रव्य जानता है किन्तु देखता नहीं है। (२) क्षेत्र से मतिज्ञानी अपेक्षा से सर्व क्षेत्र जानता है किन्तु देखता नहीं है। (३) काल से- मतिज्ञानी अपेक्षा से सर्व काल जानता है किन्तु देखता नहीं है। (४) भाव से- मतिज्ञानी अपेक्षा से सर्व भावों को जानता है किन्तु देखता नहीं है। यह उत्कृष्ट विषय है, जघन्य-मध्यम मतिज्ञान इससे कम विविध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जानता है।

प्रश्न-१० : श्रुतज्ञान के भेद-प्रभेद किस प्रकार किये हैं ?

उत्तर- अध्ययन, श्रवण, वा चन, चि तन आदि से जो अक्षर विन्यासमय

ज्ञान होता है अथवा इ गित आकार स केत आदि से जो अनुभव अभ्यास मय ज्ञान होता है, यह सब श्रुतज्ञान कहा जाता है। इसमें सभी इन्द्रिय, मन एव बुद्धि का उपयोग होता है। उसके साथ ही यह ज्ञान लौकिक या लोकोत्तर शास्त्रमय होता है अथवा कोई भी साहित्यमय या भाषा अक्षर–समूह स केतमय होता है।

श्रुत ज्ञान मति पूर्वक होता है अर्थात् अध्ययन या अक्षर रूप ज्ञान के पूर्व इन्द्रिय या मन से सम्बन्धित वस्तु का ज्ञान और बुद्धि के होने पर फिर श्रुत ज्ञान होता है। अतः ज्ञान क्रम में भी पहले मति ज्ञान लिया गया फिर श्रुतज्ञान लिया गया है। श्रुत ज्ञान के १४ भेद दिये गये हैं उनके अध्ययन से श्रुतज्ञान का सहज ही सरलता से बहुत स्पष्ट बोध हो जाता है। वे भेद इस प्रकार हे– १. अक्षर श्रुत, २. अनक्षर श्रुत ३. सन्नी श्रुत, ४. असन्नीश्रुत, ५. सम्यक् श्रुत, ६. मिथ्या श्रुत, ७. सादिक श्रुत, ८. अनादिक श्रुत, ९. सपर्यवसित श्रुत, १०. अपर्यवसित श्रुत, ११. गमिक श्रुत, १२. अगमिक श्रुत, १३. अ ग प्रविष्ट श्रुत, १४. अन ग प्रविष्ट श्रुत।

अक्षर श्रुत एव अनक्षर श्रुत में भी स पूर्ण श्रुत ज्ञान का समावेश हो सकता है। फिर भी सामान्य बुद्धि वाले जीवों को विभिन्न भेदों से विभिन्न पहलुओं को एव अर्थ परमार्थ को समझने में सरलता रहती है, अतः ७ अपेक्षाओं से दो–दो भेद करके १४ भेद किए हैं।

(१) अक्षर श्रुत– इसके तीन भेद हैं– १.स ज्ञा अक्षर श्रुत२. व्य जन अक्षर श्रुत ३.लब्धि अक्षर श्रुत।(१) अक्षरों की आकृति अर्थात् विभिन्न लिपियों में लिखे गये अक्षर 'स ज्ञा अक्षर श्रुत' है (२) अक्षरों का जो उच्चारण किया जाता है, वह 'व्य जन अक्षर श्रुत है' (३) श्रोत्रेन्द्रिय आदि के क्षयोपशम के निमित्त से जो भाव रूप में श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, वह **लब्धि अक्षर श्रुतज्ञान** है। अक्षर शब्द की पर्यालोचना से जो अर्थ का बोध होता है, वह 'लब्धि अक्षर श्रुत' है। यही भाव श्रुत है। स ज्ञा और व्य जन द्रव्य श्रुत है, भाव श्रुत के कारण है।

(२) अनक्षर श्रुत– जो शब्द अक्षरात्मक वर्णात्मक न होकर केवल ध्वनि मात्र हो यथा– खाँसना, छींकना, थूकना, ल बे श्वास लेना, छोड़ना, सीटी, घ टी, बिगुल बजाना आदि। किसी भी आशय को सूचित करने

के लिए जो भी ये स केत किए जाते हैं, वे सब अनक्षर श्रुत है। बिना प्रयोजन किया हुआ यह शब्द या ध्वनि अनक्षर श्रुत नहीं होता है।

मतिज्ञान एव श्रुत ज्ञान में स ब ध विचारणा– मतिज्ञान कारण है, श्रुतज्ञान कार्य है। मतिज्ञान सामान्य है, श्रुतज्ञान विशेष है। मतिज्ञान मूक है, श्रुत ज्ञान मुखरित है। मतिज्ञान अनक्षर है, श्रुतज्ञान अक्षर परिणत होता है। जब इ द्रिय और मन से अनुभूति रूप ज्ञान होता है, तब वह मतिज्ञान कहलाता है। जब वह अक्षर रूप में स्वय अनुभव करता है या दूसरे को अपना अभिप्राय किसी प्रकार की चेष्टा से बताता है, तब वह अनुभव और चेष्टा आदि श्रुतज्ञान कहा जाता है। अतः मतिज्ञान शब्द, रूप, ग ध, रस, स्पर्श एव चि तन के अनुभव से होता है जबकि श्रुत ज्ञान शब्दादि की अनुभूति अक्षर रूप में अनुभव करता है या कराता है। इस प्रकार अक्षर रूप में स्वय अनुभव करना और दूसरों को अक्षर या अनक्षर(ध्वनि) द्वारा अनुभव कराना, यह 'श्रुतज्ञान' है।

३–४ स ज्ञीश्रुत–अस ज्ञीश्रुत– सन्नी को होने वाला श्रुतज्ञान स ज्ञी श्रुत है और अस ज्ञी को होने वाला श्रुतज्ञान अस ज्ञी श्रुत है। असन्नी जीवों में अव्यक्त भावश्रुत होता है, उनमें भी चारों स ज्ञा अभिलाषाएँ होती है। चाह और इच्छा अक्षरानुसारी होने से उनको श्रुतज्ञान होता है और उसके पूर्व की अवस्था मतिज्ञान है। स ज्ञी जीवों का भाव श्रुत ज्ञान व्यक्त=स्पष्ट होता है। अस ज्ञी जीवों का भाव श्रुतज्ञान अस्पष्ट होता है।

५ सम्यक् श्रुत– तीर्थंकर भगव तो द्वारा प्रणीत अर्थ से गणधरों द्वारा रचे गये शास्त्र 'सम्यग् श्रुत' है एव इन शास्त्रों के अर्थ आदि के आधार से अन्य दस पूर्वधारी बहुश्रुत आचार्यो द्वारा बनाये गये शास्त्र भी 'सम्यक् श्रुत' है। यह स्वरूप की अपेक्षा सम्यक् श्रुत है। व्यक्तिगत स्मृति की अपेक्षा दस पूर्व से लेकर चौदह पूर्व के ज्ञानी के उपयोग सहित ये उक्त शास्त्र सम्यक् श्रुत ही है उससे कम ज्ञान वालों के ये शास्त्र सम्यक् श्रुत रूप भी होते है और असम्यक् भी होते हैं। इसका कारण स्मृति आदि दोषों का है तथा दस पूर्व से कम अध्ययन वाले मिथ्या दृष्टि भी हो सकते हैं।

इसी के आधार से यह समझा जाता है कि दस पूर्व से कम

अध्ययन वालों के द्वारा बनाये गये शास्त्र एका त सम्यक् श्रुत नहीं होते हैं। उन्हें एक अपेक्षा से आगम की कोटी में नहीं माना जाता।

६ मिथ्या श्रुत– अज्ञानी मिथ्या दृष्टि के द्वारा अपनी स्वच्छ द बुद्धि से अर्थात् सर्वज्ञों की वाणी का आधार लिए बिना बनाये गये जो शास्त्र है वे मिथ्या–श्रुत है। यथा– भागवत, रामायण, महाभारत, वेद, पुराण, व्याकरण, ७२ कलाएँ, नाटक, षष्ठित त्र, माठर, लेख, गणित आदि। ये ग्र थ द्रव्य मिथ्याश्रुत है। भाव की अपेक्षा मिथ्या दृष्टि के लिये मिथ्या श्रुत है किन्तु सम्यक् दृष्टि के लिये ये सम्यक् श्रुत है। कभी कोई मिथ्या दृष्टि भी इनके अध्ययन से सम्यक् दृष्टि बन जाय तो उसके लिए भाव की अपेक्षा ये 'सम्यक् श्रुत' हो जाते हैं। तथा कभी कोई सम्यक् दृष्टि भी इनके अध्ययन से मिथ्या दृष्टि बन जाय तो उसके लिए ये भाव की अपेक्षा सम्यक्श्रुत नहीं होंगे, मिथ्याश्रुत होंगे। तात्पर्य यह हुआ कि सर्वज्ञोक्त भाव युक्त शास्त्र, स्वरूप की अपेक्षा 'सम्यक्–श्रुत' है। असर्वज्ञोक्त छद्मस्थ की स्वच्छ द मति से रचित शास्त्र स्वरूप की अपेक्षा 'असम्यक् श्रुत' है। व्यक्तिगत भावों की परिणति की अपेक्षा इन दोनों में सम्यक एव असम्यक् दोनों विकल्प स भव है।

७–१० सादि–सा त, अनादि–अन त श्रुत– किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा, भरत आदि क्षेत्र की अपेक्षा, उत्सर्पिणी आदि काल की अपेक्षा, श्रुत 'सादि–सा त' होता है पर परा की अपेक्षा स पूर्ण क्षेत्र, स पूर्ण काल की अपेक्षा श्रुत 'अनादि अनन्त' होता है। भवी जीव का श्रुत 'सादिसा त' है। अभवी जीव का असम्यक् श्रुत 'अनादि अनन्त' है। क्यों कि भवी को केवल ज्ञान होने पर श्रुत ज्ञान नहीं रहेगा। ज्ञान आत्मा का निज गुण है। उसका अस्तित्व सभी जीवों में होता है। कर्मावरण के कारण भी उसका अन तवाँ भाग तो सभी जीवों के अनावरित रहता है। क्यों कि इतना भी नहीं रहे तो जीव अजीत्व को प्राप्त हो जाय। किन्तु ऐसा नहीं होता है। यहाँ केवल ज्ञान को 'पर्याय अक्षर' शब्द से कहा गया है।

११–१२ गमिक श्रुत–अगमिक श्रुत– दृष्टिवाद नामक १२वाँ अ गसूत्र 'गमिकश्रुत' है। शेष ११ अ ग अगमिकश्रुत है। जिसमें एक वाक्य या आलापक बार बार आते हैं, वह गमिक कहलाता है। जिस शास्त्र में पुनः पुनः एक सरीखे पाठ नहीं आते, वह अगमिक कहा जाता है।

१३–१४ अ ग प्रविष्ट एव अ ग बाह्य– बारह अ गसूत्र 'अ ग प्रविष्ट श्रुत' है। उसके अतिरिक्त सभी सम्यग् शास्त्र 'अ गबाह्य(अन ग प्रविष्ट) श्रुत' है। अ ग बाह्य के दो भेद हैं– १. आवश्यक सूत्र और २. उससे अतिरिक्त सूत्र। अकेले आवश्यक सूत्र को अलग इसलिए लिया गया है कि यह गणधर द्वारा प्रार भ में बना दिया जाता है। आवश्यक से अतिरिक्त श्रुत के दो भेद है– १. कालिक श्रुत, २. उत्कालिक श्रुत। प्रथम प्रहर और चतुर्थ प्रहर में ही जिसकी स्वाध्याय आदि की जाय वे 'कालिक श्रुत' है और चारों प्रहर में जिनकी स्वाध्याय आदि की जाय वें 'उत्कालिक श्रुत' है। अ ग प्रविष्ट सभी आगम कालिक ही होते हैं। इसलिए उसके भेद विकल्प नहीं किये गये हैं। आवश्यक सूत्र उत्कालिक सूत्र है। चारों प्रहर में तथा असज्झाय में भी इसका वा चन स्वाध्याय होता है।

अ ग प्रविष्ट सूत्रों के नाम– १. आचारा ग २. सूत्र कृता ग ३. स्थाना ग ४. समवाया ग ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति(भगवती सूत्र) ६. ज्ञाता धर्मकथा ७. उपासकदशा ८. अ तकृत दशा ९. अनुत्तरोपपातिक १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक १२. दृष्टिवाद(पूर्व ज्ञान)। इनका विषय परिचय समवाया ग सूत्र के सारा श में दिया गया है। समवाया ग और न दी सूत्र में दिए गये इस विषय परिचय में कुछ भिन्नता है वह पीछे परिशिष्ट में देखें।

अ ग बाह्य कालिक सूत्र– उत्तराध्ययन, निशीथ, दशाश्रुत स्क ध, बृहत्कल्प, व्यवहार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, निरियावलिकादि पाँच सूत्र अर्थात् उपा ग सूत्र, महानिशीथ, ऋषिभाषित, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति आदि १० अर्थात् स क्षेपिक दशा सूत्र, देवि द परियापनिका, नाग परियापनिका, उत्थान श्रुत, समुत्थान श्रुत।

अ ग बाह्य उत्कालिक सूत्र– दशवैकालिक, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, न दी, अनुयोग–द्वार, सूर्य–प्रज्ञप्ति, कल्पाकल्प, चुल्लकल्प श्रुत, महाकल्प श्रुत, महाप्रज्ञापना, प्रमादाप्रमाद, देवेन्द्र–स्तव, तन्दुलवैचारिक, चन्द्र विद्या, पोरूषी म ड़ल, म ड़ल प्रवेश, विद्याचरण–विनिश्चय, गणिविद्या, ध्यानविभक्ति, मरणविभक्ति,

आत्मविशुद्धि, वीतराग श्रुत, स लेखना श्रुत, विहारकल्प, चरणविधि, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान ।

अ ग प्रविष्ट सूत्रों की स ख्या बारह बताई गई है। अ ग बाह्य सूत्रों की कोई स ख्या नहीं बताई है क्यों कि ये कभी कम, कभी ज्यादा होते रहते हैं अर्थात् प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में अलग-अलग स ख्या होती रहती है तथा एक तीर्थंकर के शासन में भी प्रार भ में १-२. होते, फिर नये-नये बनते रहने से बढ़ते रहते हैं और कभी विलुप्त विच्छेद हो जाने से घट जाते हैं। अतः यहाँ भी सूत्र में अ ग बाह्य की या कालिक उत्कालिक की स ख्या नहीं कही है।

प्रश्न-११ : कुल शास्त्र स ख्या यहाँ से कितनी सिद्ध होती है ?

उत्तर– आधुनिक प्रकाशनों में यहाँ मूल पाठ के साथ क्रमा क स ख्या लिखी जाती है उसकी अपेक्षा उत्कालिक २९ और कालिक ३१ हैं कुल १२ + १ + २९ + ३१ = ७३ शास्त्र होते हैं। वास्तव में १२ अ ग शास्त्रों के अतिरिक्त कोई भी स ख्या कहना उपयुक्त नहीं है। कारण यह है कि समय-समय पर लिपिकाल में ये नाम परिवर्तित हुए हैं। यथा- ठाणा ग सूत्र में स क्षेपिकदशा सूत्र के दस अध्ययन कहे हैं, उन्हीं के दस नामों से यहाँ दस सूत्र कह दिए हैं। उपाँग सूत्र में पाँच वर्ग कहे हैं उनके निरयावलिका आदि पाँच नाम है। उन्हीं नामों से यहाँ पाँच सूत्र कह दिए हैं। एक वर्ग के दो नाम हो जाने से इन पाँच के भी छःसूत्र लिखे जाते है। अतः ७३ में १४ कम होने से ५९ होते हैं अर्थात् यहाँ वर्णित स पूर्ण श्रुत स ख्या वास्तव में ५९ ही है ७३ तो बन गई है। इसी तरह और भी कोई नामों में किसी भी तरह से परिवर्तन होना या किया जाना स भव हो सकता है ।

तीर्थंकर की मौजूदगी में उनके सभी शिष्य वीतराग वाणी के आधार से जो अपना व्यक्तिगत स कलन करते हैं, उन्हें प्रकीर्णक श्रुत कहा गया है। इसकी स ख्या जितने साधु हो उतनी होती है। यथा- चौबीसवें तीर्थंकर के प्रकीर्णक श्रुत स ख्या १४ हजार कही है। प्रथम तीर्थंकर के प्रकीर्णक श्रुत की स ख्या ८४ हजार कही है। इनका समावेश अ ग बाह्य कालिक या उत्कालिक श्रुत में होता है। ***[प्रकीर्णक स ब धी यह निरूपण स देहात्मक है क्यों कि १४००० शिष्य***

सभी लेखन नहीं करते हैं। कालिक और उत्कालिक श्रुतनाम के बाद श्रुतज्ञान के भेद का विषय पूर्ण हो जाता है।]

प्रश्न-१२ : श्रुतज्ञान का उत्कृष्ट विषय कितना होता है ?

उत्तर– (१) द्रव्य से श्रुत ज्ञानी उपयोग लगाकर सब द्रव्यों को जानता देखता है। (२) क्षेत्र से श्रुतज्ञानी उपयोग युक्त होकर सर्व क्षेत्र जानता देखता है। (३) काल से श्रुतज्ञानी उपयोग सहित सर्वकाल जानता देखता है। (४) भाव से श्रुतज्ञानी उपयोग हो तो सर्व भाव जानता है देखता है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा यह विषय कहा गया है। जघन्य मध्यम आदि में कुछ कुछ न्यून द्रव्य क्षेत्र आदि समझना। श्रुतज्ञान से जानना तो स्पष्ट है किन्तु देखना चित्र आदि की अपेक्षा समझ लेना चाहिए अथवा इसमें कुछ पाठ भेद भी है जिससे अन्य आगम में और अन्य प्रतियों में "न पासई" है अर्थात् श्रतुज्ञानी जानता है किन्तु देखता नहीं है। लेकिन एका त ऐसा होना भी स भव नहीं है कारण यह है कि कई द्रव्य आदि को श्रुतज्ञानी प्रत्यक्ष में होने से देखता भी है ।

प्रश्न-१३ : श्रुतज्ञान की अध्ययन विधि, श्रवण विधि और अध्यापन विधि किस प्रकार है ?

उत्तर– (१) विनय युक्त सुनना (२) श काओं को पूछ कर समाधान करना, (३) पुनः सम्यक् प्रकार से सुनना (४) अर्थ-अभिप्राय ग्रहण करना, (५) पूर्वापर अविरोध विचारणा करना, (६) फिर सत्य मानना, (७) निश्चित किये अर्थ को हृदय में धारण करना, (८) उसके अनुसार आचरण करना ।

श्रवण विधि– (१) मौन रहकर एकाग्र चित्त से सुने (२) 'हुँकार' या 'जी हाँ' आदि कहे। (३) 'सत्य वचन' 'तहत्ति' इत्यादि बोले। (४) प्रश्न पूछे। (५) विचार विमर्श करे। (६) सुने हुए, समझे हुए, श्रुत में पारगामी बने। (७) प्रतिपादन करने में समर्थ होवे ।

अध्यापन विधि– आचार्य उपाध्याय या गुरू आदि पहले सूत्रोच्चारण सिखाए, फिर सामान्य अर्थ या शब्दों की सूत्र स्पर्शी निर्युक्ति (शब्दार्थ) बतावे, फिर उसकी व्याख्या बतावे। उत्सर्ग अपवाद, निश्चय समझावे। इस क्रम से अध्ययन कराने पर गुरु शिष्य को पार गत बना सकता है।

प्रश्न–१४ : अवधिज्ञान के भेद–प्रभेद और स्वरुप क्या है ?

उत्तर– यह ज्ञान मन और इन्द्रियों के सहायता की अपेक्षा नहीं रखता हुआ आत्मा के द्वारा ही रूपी पदार्थों का साक्षात्कार करता है। इसमें मात्र रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष करने की क्षमता है, अरूपी को नहीं। यह इसकी मर्यादा है। दूसरे शब्दों में द्रव्य क्षेत्र–काल और भाव की मर्यादा को लेकर यह ज्ञान रूपी द्रव्यों को प्रत्यक्ष करने की शक्ति रखता है। अवधि शब्द मर्यादा के अर्थ में यहाँ प्रयुक्त हुआ है।

अवधिज्ञान के दो प्रकार– यह ज्ञान चार ही गति के जीवों को होता है। नरक गति और देव गति में यह ज्ञान 'भव–प्रत्ययिक' होता है अर्थात् जन्म के समय से ही सभी को होता है मृत्यु पर्यन्त रहता है। सम्यक्त्दृष्टि का यह ज्ञान अवधि ज्ञान कहलाता है और मिथ्या दृष्टि का यह ज्ञान 'अवधि–अज्ञान' या विभ ग–ज्ञान कहलाता है । तिर्यंच एव मनुष्य में क्षयोपशम के अनुसार किसी किसी को ही यह ज्ञान होता है सबको नहीं। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय एव असन्नि प चेन्द्रिय में यह ज्ञान नहीं होता है। सन्नी प चेन्द्रिय में ही होता है। मनुष्य, तिर्यंच का यह ज्ञान 'क्षायोपशमिक अवधिज्ञान' कहा जाता है और देव नरक का 'भव प्रत्ययिक अवधिज्ञान' कहा जाता है।

अवधिज्ञान के छः भेद– ज्ञान दर्शन चारित्र स पन्न अणगार को एव क्वचित श्रमणोपासक को क्षायोपशमिक अवधिज्ञान समुत्पन्न होता है। उसके ६ प्रकार है– (१) अनुगामिक– जो साथ चलता है। (२) अनानुगामिक– जो साथ नहीं चलता है। (३) वर्द्धमान– जो बढ़ता है। (४) हीयमान– जो घटता है। (५) प्रतिपाती– जो उत्पन्न होकर फिर नष्ट हो जाता है, गिर जाता है। (६) अप्रतिपाती– जो पूरे भव तक नष्ट नहीं होता है, नहीं गिरता है।

आनुगामिक अवधिज्ञान– इस अवधिज्ञान से कोई आगे देखता है कोई पीछे देखता है कोई दा ई या बा ई ओर देखता है और कोई चारों ओर देखता है। अवधिज्ञान जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ से वह अवधिज्ञानी कहीं भी जावे तब भी वह अवधिज्ञान उसके साथ चलता है। जहाँ भी वह अवधिज्ञान से देखना चाहे वहीं पर वह अवधिज्ञान से उस

दिशा में अपनी सीमा में देख सकता है। यथा किसी को जोधपुर में चौतरफ ५०० माइल का अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ वह, जयपुर चला जाय तो वहाँ अपने स्थान से चौतरफ ५०० माइल तक देख सकेगा। एक दिशा का होगा तो एक दिशा में देख सकेगा।

यह ज्ञान उत्कृष्ट स ख्याता अस ख्याता योजन का हो सकता है। नरक, देव का अवधि चौतरफ ही देखता है। तिर्यंच और मनुष्य एक तरफ या अनेक तरफ (चौतरफ) भी देख सकते हैं।

अनानुगामिक अवधिज्ञान– जैसे किसी को जोधपुर में ५०० माइल का अवधिज्ञान हुआ वह व्यक्ति उस ५०० माइल के सीमा के अन्दर कही भी रहे तो अवधिज्ञान से जान देख सकता है। उस सीमा से बाहर जाने पर उसके अवधिज्ञान का विषय नहीं रहता है, वहाँ से उसे कुछ नहीं दिखेगा ।

वर्द्धमान अवधिज्ञान– प्रशस्त अध्यवसायों से चारित्र की विशुद्धि से जिस अवधिज्ञानी के आत्म परिणाम विशुद्ध से विशुद्धतर होते जाते हैं, उसका अवधिज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है और सभी दिशाओं में वृद्धि होती है ।क्षेत्र में काल में और द्रव्यों में पर्यायों में भी वृद्धि होती है, वह वर्द्धमान अवधिज्ञान है ।

अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्ता की अवगाहना जितना होता है और बढ़ते बढ़ते अलोक में लोक जितने अस ख्य ख ड़ जितनी सीमा को देखने की उसकी क्षमता हो जाती है। उसी अनुपात में काल एव द्रव्य पर्यायों को देखने की क्षमता भी बढ़ जाती है ।

कल्पना से जिस समय अग्निकाय के उत्कृष्ट जीव हो उन्हें मेरू पर्वत से एक दिशा में क्रमशः बिठाया जाय वे अलोक में बहुत दूर तक पहुँच जाएँगे। उस कतार को चौतरफ घुमाने से जितना क्षेत्र म ड़लाकार में बनता है उतना अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र समझना। जो कि अस ख्य लोक प्रमाण बन जाता है ।

अवधिज्ञान के क्षेत्र की वृद्धि से काल की वृद्धि किस क्रम से होती है उसे समझने के लिए तालिका दी जाती है ।

क्षेत्र	काल
१-अ गुल का अस ख्यातवाँ भाग देखें।	आवलिका का अस ख्यातवँ भाग देखे।
२-अ गुल का स ख्यातवाँ भाग देखे ।	आवलिका का स ख्यातवाँ भाग देखे ।
३-एक अ गुल	आवलिका से कुछ न्यून
४-अनेक अ गुल	एक आवलिका
५-एक हस्त प्रमाण	एक मुहूर्त से कुछ न्यून
६-एक कोस	एक दिवस से कुछ न्यून
७-एक योजन	अनेक दिवस
८-पच्चीस योजन	एक पक्ष से कुछ न्यून
९-भरत क्षेत्र	अर्द्धमास
१०-ज बूद्वीप	एक मास से कुछ अधिक
११-अढ़ाई द्वीप	एक वर्ष
१२-रूचक द्वीप	अनेक वर्ष
१३-स ख्यात द्वीप	स ख्यात काल
१४-स ख्यात अस ख्यात द्वीपसमुद्रों की भजना	पल्योपम आदि अस ख्यात काल

हीयमान अवधिज्ञान- अप्रशस्त योग, स क्लिष्ट परिणाम जब साधक के आते हैं तब अवधिज्ञान का विषय घटता जाता है। यह सभी दिशाओं से घटता है।

प्रतिपाती अवधिज्ञान- अ गुल के अस ख्यातवें भाग से लेकर उत्कृष्ट स पूर्ण लोक को विषय करने वाला अवधिज्ञान भी उत्पन्न होकर कभी भी विनष्ट हो सकता है। ये सभी प्रतिपाती अवधिज्ञान है।

अप्रतिपाति अवधिज्ञान- लोक की सीमा से आगे बढ़कर जब अवधिज्ञान की क्षमता अलोक में जानने देखने योग्य बढ़ जाती है तब वह अवधिज्ञान अप्रतिपाती हो जाता है अर्थात् उस पूरे भव में वह कभी भी नष्ट नहीं होता, पतित नहीं होता है। आयु समाप्ति तक रहता है अथवा तो फिर केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाय तो वह उसी में विलीन हो जाता है ।

प्रश्न-१५ : अवधिज्ञान का जघन्य उत्कृष्ट विषय क्या है ?

उत्तर- (१) द्रव्य से जघन्य अन त रूपी द्रव्य जाने देखे, उत्कृष्ट सभी रूपी द्रव्य जाने देखे। (२) क्षेत्र से- जघन्य अ गुल का अस ख्यातवाँ भाग जितना क्षेत्र जाने देखे, उत्कृष्ट लोक जितने अस ख्याता ख ड़ प्रमाण क्षेत्र अलोक में जाने देखे। (३) काल से जघन्य आवलिका के अस ख्यातवें भाग जाने देखे, उत्कृष्ट अस ख्यात उत्सर्पिणी काल प्रमाण भूत भविष्यत जाने देखे। (४) भाव से जघन्य अन त पर्याय जाने देखे, उत्कृष्ट भी अन त पर्याय जाने देखे। किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट का विषय अन त गुणा है, ऐसा समझना। फिर भी सर्व पर्याय से अन तवें भाग ही देखे ।

प्रश्न-१६ : मनःपर्यवज्ञान का स्वरुप क्या है और वह किसको प्राप्त होता है ?

उत्तर- (१) मन की पर्यायों को जानने वाला मनःपर्याय ज्ञान है। भाषा वर्गणा के समान मन वर्गणा भी रूपी है। वचन योग से जिस तरह भाषा वर्गणा के पुद्गल लेकर भाषा रूप में परिणमन कर छोड़े जाते हैं उसी तरह मन योग से मनोवर्गणा के पुद्गल लेकर मन रूप में परिणमन कर छोड़े जाते हैं। मन रूप में परिणत उन पुद्गलों को जानना, यह मनःपर्याय ज्ञान का विषय है ।

(२) जिस प्रकार श्रोतेन्द्रिय का विषय किसी के वचनों का श्रवण करना है, उसी तरह मनःपर्याय ज्ञान का विषय है किसी के मन को जान लेना है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति ने वचन के द्वारा किसी की नि दा की या प्रश सा की वे निन्दा और प्रश सा के वचन हमने सुने बीच में उसने निन्दा से सम्बन्धित व्यक्ति का नाम भी लिया। यह सब सुनना श्रोतेन्द्रिय का विषय है किन्तु वह व्यक्ति किस गाँव का, किस जाति का है, इस वक्ता का उससे क्या स ब ध है, निंदा या प्रश सा का कारण या निमित्त क्या है ? इत्यादि ज्ञान वक्ता के किसी शब्द के तात्पर्यार्थ से समझना होगा अथवा अपने क्षयोपशम अनुभव चि तन से जानना होगा। उसी तरह मनःपर्यव ज्ञान से मन परिणत पर्याय का(मन का) ज्ञान होगा, अन्य विषयों का ज्ञान उन मन की पर्याय के अनुप्रेक्षण से या अपने अन्य अनुभव बुद्धि आदि से अथवा

उसके आगे पीछे के अन्य मन से जानना होगा। **(३)** यह मनःपर्यवज्ञान मनुष्य को ही होता है अन्य तीन गति में नहीं होता है। वह द्रव्य एव भाव से स यम पर्याय में ही होता है अर्थात् केवल द्रव्य स यम है तो भी यह ज्ञान नहीं होता और केवल भाव स यम है द्रव्य स यम नहीं है (बाह्य लि ग-दीक्षा लेना-आचार पालना आदि नहीं है) तो भी यह ज्ञान नहीं होता है। स यमी भी जब अप्रमत्तयोग में वर्तता है, उस समय उसमें मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हो सकता है, प्रमत्त अवस्था में मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। गुणस्थान की अपेक्षा सातवें गुणस्थान में उत्पन्न हो सकता है। एक से ६ गुणस्थान तक में उत्पन्न नहीं होता है ।

प्रश्न-१७ : मनःपर्यवज्ञान के कितने भेद हैं और इसका विषय कितना है ?

उत्तर- (१) जैसे वचन या भाषा के द्रव्य और भाव ऐसे विकल्प नहीं होते हैं वैसे ही मन के भी द्रव्य और भाव विकल्प आगम में नहीं कहे गये हैं । इसकी प्रक्रिया पूर्ण भाषा परिणमन के समान ही है। जैसे भाषा के रूपी अरूपी विकल्प नहीं होते हैं, वैसे मन के भी रूपी अरूपी विकल्प नहीं होते हैं। वे दोनों रूपी ही होते हैं। ग्र थों में मन के द्रव्य और भाव विकल्प किए गये हैं किन्तु उनकी कोई आवश्यकता या उपयोगिता नहीं है।**(२)** यह मनःपर्यवज्ञान दो तरह का होता है । १. ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान २. विपुल मति मनःपर्यवज्ञान। ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को विशुद्ध विपुल और निर्मल रूप से जानता देखता है एव क्षेत्र में ढ़ाई अ गुल क्षेत्र इसका अधिक होता है।

मनःपर्याय ज्ञान का विषय- (१) द्रव्य से मनःपर्यव ज्ञानी सन्नी जीवों (देव मनुष्य तिर्यंच) के मन के(मन रूप में परिणत पुद्‌गलों के) अन त अन त प्रदेशी स्क धों को जानता देखता है।(२) क्षेत्र से मनः पर्यवज्ञानी जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग जानता देखता है उत्कृष्ट नीचे १००० योजन, ऊपर ९०० योजन, चारों दिशाओं में ४५ लाख ४५ लाख योजन क्षेत्र में रहे हुए सन्नी देव, मनुष्य, तिर्यंचों के व्यक्तमन को जानता देखता है। (जिस प्रकार अस्पष्ट शब्द नहीं सुने जाते हैं, वैसे ही अस्पष्ट मन नहीं जाने देखे जाते हैं।) (३) काल से- जघन्य

पल्योपम का अस ख्यातवा भाग जितने समय के भूत भविष्य मन को जान देख सकता है और उत्कृष्ट पल्योपम के अस ख्यातवें भाग जितने समय के भूत भविष्य मन को जान देख सकता है। जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही कथन की अपेक्षा तो एक है, किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट अधिक है, ऐसा समझ लेना चाहिए। ***(यदि जघन्य उत्कृष्ट वास्तव में समान ही होता है तो उसे जघन्य उत्कृष्ट न कहकर अजघन्य अनुत्कृष्ट कहा जाता है)*** भाव से- मनःपर्यव ज्ञानी अन त भावों को जानता देखता है ।

प्रश्न-१८ : अवधिज्ञानी रुपी पदार्थों को जानता है तो क्या वह अपनी क्षेत्र सीमा में रहे जीवों के मन को भी जानता है ?

उत्तर- हाँ जानता देखता है। इसे दृष्टा त द्वारा समझें एक ड़ाक घर में अनेक व्यक्ति हैं कोई तार का अनुभवी है कोई उस विषय का अनुभवी नहीं है। जो तार का अनुभवी नहीं है उसके श्रोतेन्द्रिय तो है ही। आने वाले तार की टिक टिक की आवज वह भी सुन लेता है किन्तु सुनने मात्र से वह उसके आशय को नहीं समझ सकता। ठीक वैसा ही अ तर अवधिज्ञानी और मनःपर्यव ज्ञानी के देखने का समझ सकते है। अथवा एक ड़ाक्टर चक्षुरोग का विशेषज्ञ है और दूसरा स पूर्ण शरीर का चिकित्सक है उसमें आँख की चिकित्सा भी वह करता है किन्तु आँख के विषय में उसके अनुभव चिकित्सा में और चक्षु विशेषज्ञ के अनुभव चिकित्सा में अन्तर होना स्पष्ट है। वैसे ही अवधिज्ञानी के द्वारा मन के पुद्‌गल जानने में और मनःपर्यव ज्ञानी के द्वारा मन को जानने देखने में अन्तर है, ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न-१९ : ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्यवज्ञान तो लगभग समान है तो दो भेद कैसे समझना ?

उत्तर- जैसे दो छात्रों ने एक ही विषय में परीक्षा दी। एक ने प्रथम श्रेणी के अ क प्राप्त किए, दूसरे ने द्वितीय श्रेणी के, स्पष्ट है कि प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वाले का ज्ञान विशेष रहा, उसकी श्रेणी भी अलग है और आगे कहीं प्रवेश में भी प्रथम श्रेणि वाले को प्राथमिकता मिलेगी। ठीक इसी तरह ऋजुमति और विपुलमति को समझना।ऋजुमति उसी भव में विनष्ट हो सकता है किन्तु विपुल मति पूरे भव तक रहता

है, यह इसकी विशेषता है। किसी धारणा से विपुल मति उसी भव में मोक्ष जाता है, किन्तु ऋजुमति मनःपर्यव ज्ञानी तो भविष्य में अनन्त भव भी कर सकता है। सामान्य अन्तर भी कभी महत्वशील अन्तर हो जाता है यथा कोई चुनाव में एक मत(वोट) कम हो गया तो पाँच साल का नम्बर चला जाता है। ऐसी ही विशेषता दोनों प्रकार के मनःपर्यव ज्ञान में है, अतः दो प्रकार कहे गये हैं ।

प्रश्न–२० : अवधिज्ञान और मनःपर्यव ज्ञान की तुलना किस प्रकार की जा सकती है ?

उत्तर– (१) अवधिज्ञान की अपेक्षा मनःपर्यव ज्ञान अधिक विशुद्ध होता है। (२) अवधिज्ञान सभी प्रकार के रूपी द्रव्यों को विषय करता है, मनःपर्यव ज्ञान केवल मनोद्रव्यों को विषय करता है। (३) अवधि ज्ञान चारों गति में होता है, मनःपर्यव ज्ञान मनुष्य गति में ही होता है। (४) अवधिज्ञान मिथ्यात्व आने पर नष्ट नहीं होता है परिवर्तित होकर विभ ग ज्ञान कहलाता है, मनःपर्यव ज्ञान मिथ्यात्व आते ही समाप्त हो जाता है। (५) अवधिज्ञान के साथ अवधि दर्शन होता है, मनःपर्यव ज्ञान के साथ कोई दर्शन नहीं होता है। (६) अवधिज्ञान आगामी भव में साथ जाता है, मनःपर्यवज्ञान परभव में साथ नहीं जाता है। (७) मनःपर्यव ज्ञान के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विषय अल्प है, अवधिज्ञान का विषय अत्यन्त विशाल है अर्थात् अवधिज्ञानी स पूर्ण शरीर के चिकित्सक के समान है, तो मनःपर्यव ज्ञानी किसी एक अ ग के विशेषज्ञ के समान है ।

प्रश्न–२१ : केवलज्ञान का स्वरुप और विषय क्या है ?

उत्तर– केवलज्ञान आत्मा का निज गुण–स्वभाव है। अनादि काल से ज्ञानावरणीय कर्म से आवृत है। जब आत्मा सदनुष्ठान रूप तप स यम द्वारा मोह कर्म को क्षय करने के बाद ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अ तराय इन तीन कर्मो को एक साथ क्षय करता है तब केवल ज्ञान प्रकट होता है। केवल दर्शन भी इसके साथ ही उत्पन्न होता है। यह आवरण से सर्वथा रहित एव पूर्ण ज्ञान है। इस ज्ञान से रूपी–अरूपी समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों का ज्ञान हो जाता है। उत्पन्न होने के बाद यह कभी नष्ट नहीं होता है अर्थात् यह अप्रतिपाति ज्ञान है।

मनुष्य देह छूटने के बाद भी यह ज्ञान ज्यों का त्यों बना रहता है। अनन्त सिद्धों का और हजारों मनुष्यों का केवल ज्ञान एक सरीखा होता है। अतः इसके कोई भेद विभाग नहीं होते हैं। केवल ज्ञानी मनुष्य और सिद्धों की अवस्थाएँ विभिन्न होती है उस उपेक्षा से केवल ज्ञानी के भेद विकल्प उपचार से हो सकते हैं, परन्तु वास्तव में केवल ज्ञान का कोई भेद विकल्प नहीं होता है, यह स्पष्ट है। यह ज्ञान सादि–अनन्त है अर्थात् एक दिन यह ज्ञान प्रकट होता है, इसलिए सादि है। फिर सदा सर्वदा रहेगा, इसलिए अनन्त है । पाँच पदों में प्रथम और दूसरे पद में अर्थात् अरिह त और सिद्धों में केवलज्ञान होता ही है। शेष तीन पद में किसी को होता है और किसी को नहीं होता है।

केवलज्ञान का विषय– (१) द्रव्य से केवलज्ञानी रूपी–अरूपी सभी द्रव्यों को जाने देखे। (२) क्षेत्र से लोक–अलोक सर्वत्र जाने–देखे। (३) काल से– स पूर्ण भूत भविष्य को जाने–देखे। (४) भाव से–सभी द्रव्यों की सभी पर्यायों अवस्थाओं को जाने–देखे। केवलज्ञान से स पूर्ण पदार्थों और भावों को जानकर केवली कुछ तत्त्वों का ही कथन वाणी द्वारा करते हैं, वह उनका वचन योग होता है। उनका वह प्रवचन सुनने वालों के लिए श्रुतज्ञान बन जाता है ।

प्रश्न–२२ : केवलज्ञान होने पर पहले के मति आदि ४ ज्ञान का क्या होता है ?

उत्तर– मति आदि चार ज्ञान एक साथ एक व्यक्ति में हो सकते है। केवल ज्ञान अकेला ही रहता है। शेष चारों ज्ञान उसी में विलीन हो जाते है। जिस प्रकार किसी मकान की एक दिशा में चार दरवाजे हैं, उन्हें हटाकर पूरी दिशा खुली करके जब एक ही चौड़ा मार्ग बना दिया जाता है, तब उसमें प्रवेश द्वार ४ या ५ नहीं होकर एक ही मार्ग कहा जाता है। चार दरवाजों के चार मार्ग भी उसी में समाविष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार एक केवल ज्ञान में ही चारों ज्ञान समाविष्ट हो जाते हैं। केवल ज्ञान से बढ़कर और कोई ज्ञान नहीं होता है। यही सर्वोपरी ज्ञान है और आत्मा की सर्वश्रेष्ठ निज स्वभाव अवस्था है । इसी को प्राप्त करने के लिए ही स पूर्ण तप स यम की साधना स्वीकार की जाती है।

प्रश्न–२३ : भगवती सूत्र और न दी सूत्र में मतिज्ञान के विषय में अ तर क्यों है ?

उत्तर– मतिज्ञान के अतिरिक्त चार ज्ञान का विषय उक्त दोनों सूत्रों में समान है। किंतु मतिज्ञान के विषय में न दी में अपेक्षा से सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जानने का विधान किया किंतु देखने का निषेध किया है। भगवती सूत्र में अपेक्षा से जानने देखने दोनों का विधान किया है। जब अपेक्षा शब्द का उपयोग कर दिया गया है तो देखने का भी विधान करना ही उपयुक्त है अतः भगवती का पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है। अपेक्षा शब्द लगाकर के भी नहीं देखना कहना और फिर टीकाकार उसका स्पष्टीकरण करे कि अमुक अपेक्षा से देखता है और अमुक अपेक्षा से नहीं देखता है यह अनुपयुक्त होता है। अतः न दी सूत्र में कभी भी लिपि प्रमाद से या समझ भ्रम से 'नो' शब्द लगा दिया गया है ऐसा समझना चाहिये ।

क्यों कि अपेक्षा शब्द कहने के बाद बहुत गु जाइस स्वतः रह जाती है। तभी सूत्र में सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जानना कह दिया गया है। श्रुत ज्ञान में भी अपेक्षा से उपयोग हो तो सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जानने देखने की उत्कृष्ट क्षमता दोनों सूत्रों में कही गई है। अतः भगवती सूत्र के समान न दी में भी मतिज्ञान का विषय समझना चाहिये । टीकाकारों के पूर्व से ही यह लिपि दोष प्रतियों में आ चुका था। किंतु भगवती सूत्र के प्रमाण से इसे सुधारने में ही सही निराबाध तत्त्व सिद्ध होता है ।

सार– मतिज्ञान अपेक्षा से सर्व द्रव्य,क्षेत्र,काल,भाव जाने और देखे।

प्रश्न–२४ : न दी सूत्र और समावाया ग सूत्र में वर्णित द्वादशा गी के परिचय में अ तर क्या है ?

उत्तर– समवाया ग में विषय वर्णन कुछ कुछ अधिक एव विस्तृत दिया गया है, और न दी में कुछ कम दिया गया है । इसके अतिरिक्त परिचय लगभग समान दिया गया है। न दी में भगवती सूत्र की पद स ख्या २ लाख ८८ हजार है समवाया ग में ८४ हजार है। न दी में अ तगड़ सूत्र के आठ वर्ग आठ उद्देशन काल कहे हैं और अध्ययन का कथन नहीं है। समवाया ग में १० अध्ययन और दस उद्देशन काल कहे हैं, वर्ग

सात कहे हैं। न दी में अणुत्तरोपपातिक सूत्र के तीन वर्ग तीन उद्देशन काल कहे हैं समवाया ग में १० अध्ययन १० उद्देशन काल कहे हैं और वर्ग ३ कहे हैं। शेष विषय वर्णन एक सा है।

प्रश्न–२५ : ठाणा ग सूत्र में भी कुछ सूत्रों के अध्ययनों की स ख्या एव नाम दिये है उसके स ब ध में क्या अनुप्रेक्षा है ?

उत्तर– (१) उपासक दशा, (२) अ तगड़ दशा, (३) अणुत्तरोपपातिक दशा, (४) प्रश्न व्याकरण, (५) विपाक सूत्र के अध्ययनों की स ख्या और नाम दसवें ठाणे में दिये गये हैं। न दी और समवाया ग के सूत्र परिचय में किसी भी सूत्र के अध्ययनों के नाम नहीं दिये गये हैं। वर्तमान में उपलब्ध इन आगमों के अध्ययनों में और ठाणा ग सूचित अध्ययनों के नामों में विभिन्नता है।

उक्त पाँच ही सूत्रों की अध्ययन स ख्या ठाणा ग में १०–१० ही कही है। समवाया ग में उक्त चार सूत्रों के १०–१० अध्ययन कहे हैं किन्तु प्रश्न व्याकरण के ४५ अध्ययन कहे हैं। न दी में उक्त पाँच में अ तगड़ और अणुत्तरोपपातिक की अध्ययन स ख्या नहीं कही है। प्रश्न-व्याकरण के ४५ अध्ययन कहे हैं। केवल विपाक और उपासक दशा के ही दस अध्ययन कहे हैं। वर्तमान में उपलब्ध अ तगड़ में ९० अध्ययन है। अणुत्तरोपपातिक में ३३ अध्ययन है, शेष तीनों में दस दस अध्ययन है।

उपासकदशा और विपाक इन दो सूत्रों के अध्ययन स ख्या में विभिन्नता नहीं है किन्तु विपाक के नामों में विभिन्नता है। प्रश्नव्याकरण के अध्ययनों की स ख्या १० उपलब्ध है किन्तु वे दसों ही भिन्न है । अणुत्तरोपपातिक के १० नामों में भी भिन्नता है। इन विभिन्नता के कारणों की कई प्रकार से कल्पना की जाती है। आगमों में कोई भी कारण का स केत नहीं है।

सार– उक्त पाँच सूत्रों में उपासक दशा पूर्ण निर्दोष और एक मत है। अ तगड़, अणुत्तरोपपातिक और प्रश्न व्याकरण ये तीन सूत्र उपलब्ध कुछ और है एव परिचय या अध्ययनों के नाम उससे अलग ही है। विपाक भी निर्दोष एकमत है किन्तु कुछ अध्ययन के नामों में अ तर है।

इससे फलित यह है कि तीन अ ग आगमों का पूर्णतः परिवर्तित रूप उपलब्ध है एव विपाक सूत्र के कुछ अध्ययनों में परिवर्तन

दिखता है। शेष सात अ ग सूत्रों की किसी भी प्रकार की विभिन्नता इन परिचय सूत्रों में चर्चित नहीं है।

आचारा ग सूत्र के पिछले दो अध्ययन भावना और विमुक्ति 'ब धदशासूत्र' के सातवें, आठवें अध्ययन है, ऐसा ठाणा ग सूत्र में कहा है। निशीथ अध्ययन को आचारा ग से अलग करने पर इनका कुछ परिवर्तन हुआ है और अध्ययन स ख्या की पूर्ति की गई है।

आगमों में इन परिवर्तनों के स ब ध में कोई स केत नहीं होने से किसी भी परिवर्तन के लिए निर्णित निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। अनुमान एव स भावनाएँ ही की जा सकती है। जिनका निर्देश ऊपर किया गया है।

प्रश्न–२६ : न दी सूत्र में मतिज्ञान के प्रकरण में ४ बुद्धि के दृष्टा त कहे हैं उनका विश्लेषण विस्तार किस प्रकार है ?

उत्तर– औत्पातिकी आदि ४ प्रकार की बुद्धि को क्रियात्मक रूप में समझने के लिये सूत्र में कुछ दृष्टा तों का स केत मात्र है, नाम मात्र दिया है। पूरे कथानक व्याख्या में मिलते हैं। हमने सारा श पुष्प २० में परिशिष्ट रूप में दिये है। जैनागम के आठ भागों में तीसरे भाग (कथाशास्त्र)में दिये हैं।

॥ न दी सूत्र स पूर्ण ॥

प्राप्ति स्थान : सन् २०१२ से

हिन्दी साहित्य :

श्री विमलकुमार जी नवलखा
C/O नवलखा टेकसटाइल ट्रेडर्स,
पोस्ट– पीपोदरा (जी.आई.डी.सी)
तालुका–मा गरोल,
जिल्ला– सूरत(गुजरात)
(मो.–०९४२६८८३६०५)

गुजराती साहित्य :

श्री प्रकाशमुनि जी म.सा.
तुरखिया रेडीमेइड, मेइन रोड,
सुरेन्द्रनगर–३६३ ००१
(फोन–(०२७५२)२२६४५७
(मो.–०९६२४७११५९६)

अनुयोग द्वार सूत्र

अनुयोग एक चिन्तन

अनुयोग की पर परा–भगवान के शासन में मेधावान शिष्यों को कालिक श्रुत रूप अ ग सूत्रों के मूल पाठ के साथ यथासमय उसके अनुयोग–अर्थ विस्तार की वाचना भी दी जाती थी। वे श्रमण उसे क ठस्थ करके अनुयोग युक्त कालिक श्रुत के धारण करने वाले कहे जाते थे।

नन्दी सूत्र के प्रार भ में ऐसे अनेक अनुयोगधरों को स्मरण कर उनका गुणानुवाद एव व दन किया गया है। वहाँ अ तिम पचासवीं गाथा में भी उन महापुरुषों को स्मरण किया गया है जिनका नाम पूर्व की ४९ गाथाओं में नहीं लिया जा सका और जो सूत्रकार के अनुभव से अज्ञात श्रुतधर पूर्व में हो चके थे, उन्हें नमन किया है। वह गाथा इस प्रकार है–

जे अण्णे भगव ते, कालिय सुय आणुओगिए धीरे ।
ते पणमिउण सिरसा, णाणस्स परूवण वोच्छं ॥५०॥

इस प्रकार कालिक श्रुत–अ गसूत्र एव उनका अनुयोग 'विस्तृत विश्लेषण की पर परा' भगवान के शासन में न दी सूत्रकर्ता श्री देवर्धिगणि क्षमाश्रमण तक मौखिक चलती रही है। इसी कारण उन क्षमाश्रमण ने न दी सूत्र के प्रार भ के तीर्थंकर गणधरों से लेकर कालानुक्रम से प्रसिद्ध–प्रसिद्ध अनुयोगधरों का स्मरण देवदूष्य गणि तक किया है। ये देवदूष्य गणि देवर्द्धि गणि के दीक्षा गुरू या वाचनाचार्य थे।

इसके बाद सूत्रों को लिपिबद्ध करने का क्रम देवर्धिगणि से प्रार भ हुआ जो विधिवत् और स्थायित्व लिए हुए था। उसके पहले भी ऐसे क्रम चले होंगे, पर वे इतने महत्व शील एव व्यापक नहीं हो सके। सूत्र लिपिबद्ध करने का कार्य भी अति श्रमसाध्य था तो उसके अनुयोग–अर्थ व्याख्यान को लिपिबद्ध करना तो उस समय कल्पनातीत ही था। इसलिए उसका लेखन स्थगित रखा गया और यों स तोष किया गया कि अर्थ व्याख्यान करने की पद्धति तो अनुयोग द्वार सूत्र में सुरक्षित लिपिबद्ध कर दी गई है एव सूत्रों के सामान्य आवश्यक

उपयोगी अर्थ एव क्वचित अनुयोग भी गुरू पर परा से मौखिक चलते रहेंगे। देवर्धिगणि क्षमाश्रमण को हुए ४०-५० वर्ष भी नहीं बीते होंगे कि सूत्रों की व्याख्याएँ लिपिबद्ध किया जाना प्रार भ हो गया। पर तु यह कार्य एक साथ सामुहिक रूप से नहीं हुआ। ऐच्छिक व्यक्तिगत रूप से समय समय पर होता रहा, जिसके प्रार भ कर्ता वराहमिहिर के भ्राता द्वितीय भद्रबाहु स्वामी थे। उन्होंने (दस) सूत्रों पर जो व्याख्याएँ लिखी उनका नाम 'निर्युक्ति' रखा गया। फिर आगे से आगे आवश्यकता अनुसार व्याख्याओं पर व्याख्याएँ विस्तृत स्पष्टार्थ वाली लिखी जाती रही। उनके नाम भाष्य, चूर्णी, अवचूरी, दीपिका, टीका, टब्बा आदि रक्खे जाते रहे। नामकरण कुछ भी दिया जाता रहा है किन्तु ये सब सूत्रों की व्याख्याएँ सूत्रों के अर्थ और विश्लेषण रूप ही है। इन्हें ही प्राचीन काल में सूत्र का अनुयोग कहा जाता था।

आज भी शब्द कोशों में अनुयोग शब्द का अर्थ परमार्थ मिलता है। उसका भी प्रमुख घोष यही है कि अनुयोग अर्थात् सूत्रों के अर्थ एव विस्तृत व्याख्याएँ और उन व्याख्याओं के करने की एक विशिष्ट क्रमिक पद्धति होती है वही 'अनुयोग पद्धति' कही जाती है ।

प्रस्तुत अनुयोग द्वार सूत्र में मुख्य रूप से वह अनुयोग पद्धति प्रयोगात्मक रूप से बताई गई है। इसलिए इस सूत्र का अनुयोगद्वार सूत्र यह सार्थक नाम रखा गया है। इसमें जो पद्धति बताई गई है, निर्युक्ति भाष्यों में भी सूत्र के अर्थ का व्याख्यान लगभग उसी पद्धति के अवलबन से किया हुआ है, जो आज भी उनमें देखने को मिलता है ।

इस प्रकार इस सूत्र की मौलिकता एव प्रयोजन यहाँ स्पष्ट कर दिया गया है। किन्तु इतिहास के पन्नों में इस विषय में कुछ भ्रमित पर परा है जिसके विषय में कुछ विचारणा प्रस्तुत करना आवशयक है। वह यह है कि- आर्यरक्षित ने स्मृति दोष को ध्यान में लेकर सूत्र से उनके अनुयोग को हटा दिया और वह व्यवछिन्न हो गया और उसके स केत दर्शन के लिए इस सूत्र अनुयोग द्वार की रचना कर दी गई ।किन्तु यह कथन न दी सूत्र स ब धी ऊपर की गई चर्चा से बाधित है। अनुयोगधर आचार्य आर्यरक्षित भी थे एव दूष्यगणि भी थे और भी कई अनुयोगधर देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के समय मौजूद थे । उन्हें

भी अन्तिम गाथा से सत्कारित सम्मानित एव नमन किया है। यदि अनुयोग विच्छेद होता तो उसके बाद अनेक बहुश्रुत अनुयोगधर कैसे बनते ? किन्तु इतिहास के नाम से ऐसी कई पर पराओं का प्रवाह चल जाता है। ऐसी कई बातों का स ग्रह एक स्वत त्र ऐतिहासिक परिशिष्ट रूप में दिया है। जिसके लिये देखे सारा श पुष्प २१-२२ ।

काला तर से किसी युग में मौलिक सूत्रों को भी चार अनुयोगों में से किसी अनुयोग में कल्पित किया जाने लगा है। जबकि अनुयोग शब्द तो अर्थ या व्याख्या के लिए है, मूल सूत्रों के लिए नहीं है ।

वर्तमान में सूत्रों के अ शों को विषयों में विभाजित किया जाता है उस विषयवार विभागीकरण को भी अनुयोग या अनुयोग पद्धति कहा जाने लगा है और ऐसा विभाजन कार्य करने वाले विद्धानों को 'अनुयोग-प्रवर्तक' कहा जाने लगा है। किन्तु यह अनुयोग शब्द का प्रयोग केवल रूढ़ सत्य बन गया है। वास्तव में वह कार्य आगमों का विषयक्रम से वर्गीकरण है, अनुयोग नहीं है। किन्तु एक प्रवाह चला और फिर प्रचलित होकर रूढ़ हो गया है। प्रमाणों से युक्त अनुयोग शब्द स ब धी जानकारी के लिए देखें चरणानुयोग भाग २ की प्रस्तावना पृष्ठ ७४ अथवा इसी लेख में आगे देखें ।

वास्तव में सूत्रों के अर्थ परमार्थों को यथार्थ रूप में, क्रमशः पूर्ण रूपेण धारण करने वाले, 'अनुयोगधर' कहलाते हैं एव ऐसे अर्थ परमार्थ को स्वगण एव अन्य गण के सैकड़ो हजारों श्रमण श्रमणियों को समझाने, पढ़ाने वाले 'अनुयोग-प्रवर्तक' कहलाते हैं। कभी ऐसे ही कोई अनुयोग-प्रवर्तक विशेष विख्यात हो जाते हैं और लम्बी उम्र के कारण अधिका श रूप में उनके द्वारा समझाया हुआ अर्थ परमार्थ ही सभी गणों की पर पराओं में चल जाता है और उन अनुयोग प्रवर्तक के नाम से एव छाप से प्रचारित होता चला जाता है। जो कई युग तक विख्यात रह जाता है। यथा- अनुयोगधर स्क धिलाचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के कुछ पूर्व हुए थे। उन्होंने विशेष रूप में ऊपर कहे अनुसार अनुयोग का प्रवर्तन किया था। जिसकी पर परा बहुत विस्तृत हुई एव देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय तक पूर्ण व्याप्त हो चुकी थी। इसी कारण न दी सूत्र की एक गाथा में उन्होंने कहा है कि-

जेसि इमो अणुयोगो, पयरई अज्जावि अड्ढ भरहम्मि ।
बहु नयरनिग्गय जसे, ते व दे ख दिलायरिए ।

इस गाथा से भी यह बात स्पष्ट होती है कि सूत्रों का अनुयोग विच्छिन्न नहीं हुआ था किन्तु स पूर्ण अर्द्ध–भरत में प्रचलित था। देवर्द्धिगणी एव स्क धिलाचार्य आदि, आचार्य श्री आर्यरक्षित से सैकड़ों वर्ष बाद के आचार्य थे और अनुयोगधर एव अनुयोग–प्रवर्तक थे। अतः अनुयोग के विच्छेद होने या विच्छेद करने का इतिहास, समझ भ्रम वाला एव कल्पित कल्पना वाला है, यह सूत्र प्रमाण से ही स्पष्ट हो जाता है।

अनुयोग शब्द की उपलब्ध व्याख्याएँ– अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग में अनुयोग शब्द के अनेक अर्थ एव उनके प्रयोग की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ ३४० से ३६० तक है। जो अनेक आगमों एव ग्र थों से वहाँ ली गई है ।

कुछ अ श यहाँ दिये जाते हैं– (१) अनु–सूत्रं, महान अर्थः, ततो महतो अर्थस्य अणुना सूत्रेण योगो, अनुयोगः । पृष्ठ–३४०॥२॥ (२) अनुयोगो–व्याख्यानम् । पृष्ठ ३५४।१। (३) अनुरूपो योगः, सूत्रस्य अर्थेन सार्द्धं अनुरूपः स ब ध, व्याख्यान–मित्यर्थः । पृष्ठ ३५५।२। (४) आर्य वज्राद् यावत् अपृथक्त्वे सति 'सूत्र व्याख्या रूप' एकोप्यनुयोगः क्रियमाणः प्रतिसूत्र चत्वारि द्वाराणि भाषतेः अर्थात् चरणकरणादिश्चतुरो अपि प्रतिपादयति इत्यर्थः । पृथकत्वानु–योगकरणादेव व्यवछिन्नः ततः प्रभृति एक–एक चरणकरणादीनामन्यतरो अर्थः प्रतिसूत्र व्याख्यायते, न चत्वारोपि इत्यर्थः । (५) अनुयोगो–अर्थ व्याख्यानम् । पृष्ठ ३५८।२ प क्ति १–२।(६) अध्ययनार्थ कथनविधिः अनुयोगः 'अनुयोग द्वार' पृष्ठ ३५८। (७) महापुरस्य इव सामायिकस्य अनुयोगार्थं व्याख्यानार्थं द्वाराणि इति अनुयोग द्वाराणि ।

(८) **अणुयोगद्दाराइ , महापुरस्सेव तस्स चत्तारि ।**
अणुयोगो त्ति तदत्थो, दाराइ तस्स उ महाइ ।अणुओग–पृ–३५८।२

(९) **स हिता य प द चैव, पयत्थो, पदविग्गहो ।**
चालणा य पसिद्धी य, छव्विह विद्धि लक्खप ।पृष्ठ ३५५।१९

(१०)त च अनुयोगो यद्यपि अनेक ग्र थ विषयः स भवति तथापि प्रतिशास्त्रं प्रति अध्ययन , प्रति उद्देशक , प्रति वाक्य , प्रति पद च उपकारित्वाद् ।

पृष्ठ ३५९।१ अनुयोगद्वार टीका से। (११) 'अनुयोगिन'–अनुयोगो व्याख्यानम्, परूपणा इति यावत् स यत्र अस्ति, अनुयोगी–आचार्य, अणुयोगी लोगाण स सय णासओ दढ़ होति। अणुओगधर–अनुयोगिकः। (१२) अणुयोगपरः–सिद्धा त व्याख्याननिष्ठः । (१३) न दी सूत्र, गाथा–३२ टीका–मलयगिरीया में–'कालिकश्रुतानुयोगिकान्'–कालिक–श्रुतानुयोगे व्याख्याने नियुक्ताः कालिकश्रुतानुयोगिकाः तान्। अथवा कालिकश्रुतानुयोग येषां विद्यते इति कालिकश्रुतानुयोगिनः ।

(१४) **अणुओगे च नियोगा, भास विभास य वत्तिय चेव ।**
एए अणुओगस्स उ, नामा एगट्ठिया प च॥–बृह०भा०,कोश पृ–३४४
अणुओयण अणुओगो, सुयस्स नियएण जमभिहेएण ।
वावारो वा जोगो, जो अणुरूवो अणुकूलो वा ॥पृष्ठ ३४४।
सुत्तत्थो खुल पढ़मो, बीओ निज्जुत्ति मीसिओ भणिओ ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही भणिय अणुओगे॥पृ–३४५।१४।

इन उपर्युक्त उद्धरणों में सूत्र के अर्थ को स क्षिप्त या विस्तृत कहने की पद्धति को अर्थात् व्याख्या करने की पद्धतियों को अनुयोग शब्द से परिलक्षित किया गया है ।

नन्दीसूत्र में अनुयोग शब्द के प्रयोग– (१)रयणकरण्डगभुओ अणुओगो रक्खिओ जेहिं ॥३२॥**(२)**अयलपुरा निक्खंते कालियसुय अणुओगिए धीरे।ब भद्दीवग–सीहे, वायग पयमुत्तम पत्ते ॥३६॥**(३)**जेसि इमो अणुओगो पयरइ अज्जावि अड्ढ भरहम्मि ॥३७॥**(४)**कालिय सुय अणुओगस्स धारए, धारए य पुव्वाण । हिमव त खमासमणे वन्दे नागज्जु–णायरिए ॥३९॥**(५)**गोविंदाण पि णमो, अणुओगे विउल धारणिंदाण ॥४१॥ **(६)**सीलगुण गद्दियाण अणुओग जुगप्पहाणाण ॥४८॥

नन्दी सूत्र की इन गाथाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिक सूत्र की जो स क्षिप्त या विस्तृत व्याख्या की जाती है, उसकी एक विशिष्ट पद्धति होती है। जो आगम काल से सूत्रों के साथ ही शिष्यों को समझाई जाती थी। उन विस्तृत व्याख्यानों सहित सूत्र विशाल हो जाते थे। उन्हें क ठस्थ धारण करना क्रमशः कठिन होता गया। अनुयोग पद्धति से की जाने वाली उस व्याख्या से युक्त कालिक सूत्रों को धारण करने वाले बहुश्रुत आचार्यो को उक्त न दी सूत्र की

गाथाओं में अनुयोगधर, अनुयोगरक्षक, अनुयोगिक, अनुयोगप्रधान आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है ।

यहाँ गाथा में प्रयुक्त अनुयोग व्याख्या पद्धति पहले से प्रचलित थी, जिसका रक्षण और धारण युग प्रधान आचार्यो ने किया था। अतः इन गाथाओं से अनुयोग के पृथक्करण या नवीनीकरण का कुछ भी स केत समझना भ्रमपूर्ण है ।

गाथा ३७ के अनुसार नन्दी सूत्रकार के समय में जो सूत्रों की व्याख्यायें क ठस्थ पर परा में उपलब्ध थी वे सब स्क दिलाचार्य द्वारा व्यवस्थित एव निश्चित की गई थी ।

अभिधान राजेन्द्र कोश से उद्धृत नम्बर ४ के अनुसार प्रत्येक अध्ययन के प्रत्येक सूत्र की व्याख्यायें मुख्य रूपेण एक अनुयोग से की जाती थी। उसके साथ ही चारों अनुयोगों के आधार से भी की जाती थी। अर्थात् उस सूत्र से किस तत्व का कथन हो सकता है ? उसका स यमाचरण से क्या स ब ध है ? उसके लिए उदाहरण क्या है? इत्यादि यथासम्भव २-३ या ४ अनुयोगों में घटित करके विशिष्ट मेधावान श्रमणों को समझाया जाता था ।

इस प्रकार सामान्य बुद्धिमान शिष्य को एक अनुयोगात्मक स क्षिप्त व्याख्या से एव विशेष प्रज्ञावान शिष्यों को अनेक अनुयोगात्मक व्याख्या से एव अनुयोग पद्धति से अध्ययन कराया जाता था। और यही तरीका आगे भी देवर्द्धि तक चलता रहा और आज तक भी आ शिक रूप में वही क्रम चल रहा है ।

आर्य रक्षित ने क्या किया ? इतिहास एव आगम– आर्यरक्षित के समय अपृथक्त्वानुयोग प्रचलित था उसमें प्रत्येक सूत्र की व्याख्या १-चरण-करण, २-धर्म कथा, ३-गणित एव ४-द्रव्य-तत्त्व दृष्टि एव अनुयोग पद्धति से की जाती थी। यह व्याख्या पद्धति अत्यन्त क्लिष्ट थी । इसका अध्ययन स्मृति की तीक्ष्णता पर अवल बित था। अर्थ वाचना के साथ इस व्याख्या पद्धति का भी आवश्यक स्थान था। ऐसा कहा जाता है कि शिष्यों की सुविधा एव भविष्य का विचार करके आर्य रक्षित ने अर्थ वाचना में से इस क्लिष्ट व्याख्या पद्धति को अलग करने का स कल्प किया जिसका तात्पर्य यह था कि सूत्र के

साथ उसका सामान्य विशेष अर्थ और उस सूत्र के आशय को स्पष्ट करने वाली मौलिक एक अनुयोगात्मक व्याख्या को रखा जाय । उसके अतिरिक्त चार अनुयोगों से युक्त जो व्याख्या प्रत्येक सूत्र के साथ सम्बद्ध है, उसे अलग कर दिया जाय। उसका भी कोई कोई प्रतिभा सम्पन्न शिष्य अध्ययन करता रहेगा, सामान्य रूप से उस पद्धति का अध्ययन अध्यापन नहीं रहेगा। इस स कल्प को उन्होंने स घ सम्मति से कार्यान्वित किया।

यह भी एक कल्पना मात्र है वास्तव में तो जिन शासन में प्रार भ से ऐसा ही यह तरीका चला आ रहा था। क्यों कि कई साधु साध्वियाँ सामान्य बुद्धि वाले या वृद्धावस्था वाले भी होते ही थे। उन सभी के लिये एक सरीखी पद्धति तो थी ही नहीं कि सभी को चारों अनुयोग युक्त पद्धति से ही अध्ययन करना पड़ेगा अर्थात् उस समय भी योग्यता के अनुसार ही अर्थ, परमार्थ, अनुयोग पद्धति से अध्ययन कराया जाता था । अतः आर्यरक्षित ने मौलिक सूत्रों को अनुयोगों में विभाजित भी नहीं किया और अनुयोग का विच्छेद भी नहीं किया। किन्तु अनुयोग द्वार सूत्र की स्वत त्र रचना करके अनुयोग पद्धति को सुरक्षित किया। जिसके लिए न दी सूत्र में कहा है– **"रयणकरण्डगभूओ अणुओगो रक्खिओ जेहिं"** ॥

चार अनुयोग रूप में प्रत्येक सूत्र की क्लिष्ट व्याख्या पद्धति को व्याख्या में से पृथक किया ऐसा इतिहासज्ञों का म तव्य एव चि तन है। किन्तु न दी सूत्र की मौलिक गाथाओं में अनुयोग स ब धी अनेक प्रकार के कथन है जो ऊपर बताये गये हैं। उनसे तो ऐसा इतिहासज्ञों के चि तन से सम्मत कोई अर्थ आशय नहीं निकलता है। किन्तु उन न दी सूत्र के स्थलों का आशय इन इतिहास चि तकों के बिल्कुल विरोध में है। न दी के अनुसार आर्यरक्षित ने अनुयोग पद्धति की कुंजी रूप एक शास्त्र अनुयोग द्वार सूत्र बना कर अनुयोग की रक्षा की है। थोड़े में अनुयोग पद्धति को सुरक्षित और बहुजन भोग्य बना दिया। साथ ही न दी के अनुसार अनुयोग प्रचलन और अनुयोगधर एव अनुयोग प्रवर्तक की पर परा अक्षुण्ण चलती रही है। उन्हें पृथक करने और विच्छेद करने की कोई ग ध मात्र भी वहाँ नहीं है।

अतः न दी सूत्र कर्ता की दृष्टि में सूत्रों से अनुयोग के पृथक्करण या विच्छेद करण एव प्रत्येक मौलिक सूत्रों को अनुयोगों में विभाजी-करण आदि जैसी कोई वार्ता या वातावरण नहीं था। किन्तु ऐसा लगता है कि बाद में अर्थ भ्रम एव पर परा भ्रम से ऐसी कई कल्पनाएँ उठती रही है एव पुष्ट होती रही और चलती रही है। उन पर पराओं को ही देख-पढ़ कर इतिहासज्ञ प्रायः चि तन मनन करते रहते हैं। किन्तु आगमों के स प्रेक्षण से चि तन करने का प्रयत्न वे इतिहासज्ञ प्रायः नहीं किया करते हैं। इसी कारण से कई भ्रमित पर पराएँ इतिहास के नाम से चलती जाती है और बढ़ती जाती है ।

समान पाठों(विषयों) का अनुयोग- सामान्यतया पाठक विषयानुसार वर्गीकरण को पढ़ने में विशेष रूचि रखता है। समझने में भी एक विषय का सम्पूर्ण वर्णन एक साथ अत्य त सुविधाजनक होता है।

स्वाध्यायशील पाठकों एव अन्वेषक विद्यार्थियों के लिए तो वर्गीकृत विषयों का स कलन अत्य त उपयोगी सिद्ध होता है।

अतः वर्गीकृत विषयों के स कलन की आवश्यकता एव उपयोगिता सदा मानी गई है ।

आगमों में भी इस पद्धति का ही अधिका शतः अवलम्बन लिया गया है ।

विषयों का विभाजन अनेक दृष्टिकोणों से किया जाता है । यह विभाजनकर्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर है। यथा- (१) जीव द्रव्य के विषय का अलग विभाग करना किन्तु उसमें अन्य कोई गति या द ड़क के विभाजन का लक्ष्य नहीं रखना, (२) गतियों की अपेक्षा विभाजन करना किन्तु द ड़कों के क्रम या व्युत्क्रम का लक्ष्य नहीं रखना, (३) द ड़कों की अपेक्षा विभाजन करना किन्तु उसमें १२ देवलोक ७ नरक या ५ तिर्यंच का विभाजन न रखना, इत्यादि स्थूल से सूक्ष्म या सूक्ष्मतर अपेक्षित विभाजन उपयोगितानुसार किये जा सकते हैं ।

अथवा- (१)प्रायश्चित विधानों को एक सूत्र में कहना, (२) लघु, गुरू, मासिक, चौमासी इन विभागों के क्रम से कथन करना, (३) इनमें भी पाँच महाव्रतों की अपेक्षा से विभाजित करना, (४) समिति, गुप्ति, दीक्षा, स घ व्यवस्था, स्वाध्याय आदि विभागों में विभाजन

करना, इत्यादि अनेक प्रकार के विभाजन किए जा सकते हैं। आगमों में की गई विभाजन पद्धति भी एक सापेक्ष पद्धति है यथा- (१) आचारा ग प्रथम श्रुतस्क ध में स यम के प्रेरक विषय है, (२) आचारा ग के द्वितीय श्रुत स्क ध में साधु के अत्यावश्यक आचारों से स ब धित विषय है, (३) सूत्रकृता ग के प्रथम श्रुतस्क ध में प्रथम अध्ययन को छोड़कर शेष सभी अध्ययनों में साध्वाचार का प्रतिपादन किया गया है, (४) दशवैकालिक में मुनि जीवन का ही पूर्ण मार्गदर्शन किया है। (५) ज्ञाता से विपाक पर्यंत अ ग सूत्रों में विविध धर्मकथाएँ है। (६) प्रश्नव्याकरण में ५ आश्रव एव ५ स वर का विषय विस्तार से स कलित है। (७) नन्दी में ज्ञान का एक ही विस्तृत विषय है। (८) चार छेद सूत्रों में भी प्रमुख आचार स ब धी विषयों का स कलन है। जिसमें निशीथ सूत्र तो पूरा प्रायश्चित विधानों का ही स कलन है।

इसी प्रकार अन्य उपा ग आदि कई सूत्र अन्यान्य विषयों के स कलन से युक्त है। ठाणा ग, समवाया ग का स कलन स ख्या की प्रधानता को लिए हुए है। इसलिए उसमें विषयों की विभिन्नता है। भगवती सूत्र पूरा विविध विषयों के प्रश्नोत्तरों का स कलन है। उत्तराध्ययन सूत्र विभिन्न विषयों का गद्यपद्यात्मक उपदेशी सूत्र है।

निष्कर्ष यह है कि इन आगमों की रचना पद्धति भी विषय स कलन में एक विशेष विवक्षा वाली है। फिर भी उपलब्ध ठाणा ग, समवाया ग, भगवती सूत्र आदि अनेक आगमों में विविध विषय बिखरे हुए भरे पड़े हैं अतः विषयों के सूक्ष्म सूक्ष्मतर विभाजन की जिज्ञासा वालों को उनके अध्ययन में कठिनाई का अनुभव होना स्वाभाविक है। अतः सूत्र पाठों का विभाजन भी एक विशिष्ट विभाजन की पूर्ति के लिए किया जाने लगा है वहाँ तक तो वह ठीक ही है, किन्तु इसे अनुयोग कहा जाना तो सर्वथा अनुपयुक्त है। आगम में ऐसे एक विषय के वर्णन समूह को 'ग ड़िका' शब्द से कहा गया है ।

बारहवें अ ग सूत्र के चौथे विभाग का नाम 'अनुयोग' है इसका आशय यह है कि उस विभाग में जो भी विषय गू थे गये हैं उनके स ब धी बहुमुखी विस्तृत चर्चा की गई है और एक विषय या एक व्यक्ति स ब धी विषयों का एक साथ स कलन भी किया गया है।

इस एक विषय के एक साथ स कलन रूप विशिष्ट पद्धति को वहाँ 'ग ड़िका' कहा है और विस्तृत वर्णन होने से उनके साथ अनुयोग शब्द भी लगाया गया है। इसलिए इस चौथे विभाग को अनुयोग कहा है और उस विभाग में जो अलग-अलग विषयों के उपविभाग है उसे ग ड़िका + अनुयोग = ग ड़िकानुयोग कहा है ।

यथा च- **प्रथमानुयोग**- तीर्थंकरादिनः पूर्व भवादि व्याख्यान ग्र थः । **ग ड़िका**- एकार्थाधिकारा ग्र थ पद्धति रित्यर्थः । **ग ड़िकानुयोग**- भरत नरपति व शजाताना निर्वाण गमन अणुत्तर विमान गमन वक्तव्यता 'व्याख्यान ग्र थः' ।

ग ड़िकानुयोग- ग ड़िका का अर्थ है- समान वक्तव्यता वाली वाक्य पद्धति। अनुयोग अर्थात्-विस्तृत अर्थ प्रकट करने वाली विधि। एक सरीखे विषयों के स ग्रह वाले ग्र थ या अध्ययन का नाम है 'ग ड़िका' और उसका जो अर्थ विस्तार स युक्त है उसका नाम है अनुयोग। यथा- जिस ग्र थ या विभाग में केवल तीर्थंकरों का वर्णन एव उसका विषय विस्तार हो वह विभाग तीर्थंकर ग ड़िकानुयोग कहा जाता है। इस प्रकार की अनेक ग ड़िकाएँ कही गई है यथा- १-कुलकर ग ड़िकानुयोग, २-तीर्थंकर ग ड़िकानुयोग ३-गणधर ग ड़िकानुयोग, ४-चक्रवर्ती ग ड़िकानुयोग, ५-दशार्ह ग ड़िकानुयोग, ६-बलदेव ग ड़िकानुयोग, ७-वासुदेव ग ड़िकानुयोग, ८-हरिव श ग ड़िकानुयोग, ९-उत्सर्पिणी ग ड़िकानुयोग, १०-अवसर्पिणी ग ड़िकानुयोग आदि।

इस प्रकार के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि एक विषय के स कलन को 'ग ड़िका' कहना चाहिए एव उसके विस्तृत वर्णन को या किसी भी सूत्र के अर्थ व्याख्यान को 'अनुयोग' कहना चाहिए और विस्तृत वर्णन वाले एक सरीखे विषय स कलन को अर्थात् अनुयोग युक्त ग ड़िका को 'ग ड़िकानुयोग' कहा जाना चाहिए।

अतः किसी सूत्र को ही 'अनुयोग' कहना या सूत्र पाठों के विभाजन को 'ग ड़िका' न कह कर 'अनुयोग' कह देना आदि आगम सम्मत कथन प्रवृति नहीं है, किन्तु भ्रमित प्रवाह से चली हुई कथन पद्धति है ।

चार अनुयोग- श्वेताबर परम्परा में १-चरणकरणानुयोग २-धर्मकथानुयोग ३-गणितानुयोग ४-द्रव्यानुयोग ये चार भेद नाम रूप में मिलते हैं। ये नाम भी ३२ या ४५ किसी आगम के मूल पाठ में नहीं मिलते हैं अर्थात् ठाणा ग सूत्र के चौथे ठाणे में भी नही है और स्वय अनुयोग द्वार सूत्र में भी अनुयोग के ये चार प्रकार कहीं पर भी नहीं बताये गये है। अनुयोग द्वार सूत्र में अनुयोग के चार द्वार ये कहे हैं यथा- १- उपक्रम २-निक्षेप ३-अनुगम और ४-नय ।

धर्मकथानुयोग आदि चार नाम एक साथ आचारा ग सूत्र की टीका में मिलते हैं। ये चारों अनुयोग भी सूत्रों की व्याख्याओं की विशेष पद्धति से ही स ब धित है किन्तु मौलिक सूत्र रूप नहीं है अर्थात् प्रत्येक सूत्र का इन चार विषयों में अर्थ व्याख्यान किया जाता था। आज कल इसके लिये अर्थ विचार की वास्तविक अपेक्षा को छोड़कर इसका केवल सूत्रों के मूल पाठ के विभाजन के रूप में ही उपयोग किया जाने लगा है कि 'अमुक आगम अमुक अनुयोग है या अमुक सूत्र अमुक अनुयोग रूप ह' यह एक प्रवाह मात्र है जो रूढ़ सत्य बन चुका है ।

वास्तविक सत्य तो यही है कि सूत्रों के व्याख्यान विवेचन को अनुयोग समझना चाहिए और विवेच्य विषय को अनुयोग पद्धति से समझना चाहिए। उस विवेचन और विवेचन पद्धति को अनुयोग और अनुयोग पद्धति कहना चाहिए। किन्तु मौलिक आगम सूत्रों को अमुक अनुयोग या अमुक अनुयोग रूप यह आगम है, ऐसा नहीं कहना चाहिए। यही इस अनुयोग के विषय की चर्चा करने का प्रमुख सार है। इति शुभम् । सुज्ञेषु किं बहुना ।

अनुयोग द्वार सूत्र

प्रश्न–१ : इस सूत्र के नाम की सार्थकता किस प्रकार है एव इस सूत्र के विषय एव रचनाकार आदि परिचय किस प्रकार है ?

उत्तर– सूत्र के अनुरूप अर्थ एव व्याख्या को योजित करना 'अनुयोग' कहलाता है। सूत्र के उन अर्थों, व्याख्याओं एव विश्लेषणों रूप अनुयोग को कहने की, समझाने की जो पद्धति होती है, तरीके होते हैं अर्थात् जिस भ ग, भेद, क्रमों का अवल बन लेकर आगम शब्दों एव सूत्रों की व्याख्या–अनुयोग किया जाता है उसे 'अनुयोग पद्धति' कहते हैं। इस पद्धति में जिन भ ग भेदों का अवल बन लिया जाता है उसके मुख्य भ ग भेदों को 'द्वार' शब्द से कहा जाता है। द्वार का अर्थ है सूत्र व्याख्या में प्रवेश करने के मुख्य मार्ग। फिर जो भेदानुभेद किए जाते हैं वे 'उपद्वार' कहे जाते हैं। उन्हें भ ग, भेदानुभेद, विकल्प, उपद्वार किसी भी शब्द से कहा जा सकता है । प्रस्तुत सूत्र में सूत्रों–शब्दों के अर्थ व्याख्यान की पद्धति चार मुख्य द्वारों से बताई गई है । इसलिए इसका सार्थक नाम **अनुयोग द्वार सूत्र** रखा गया है। यह सूत्र समग्र आगमों को और उनकी व्याख्याओं को समझने की कु जी के सदृश है ।

सूत्र का विषय– इस सूत्र में प्रथम पाँच ज्ञानों से म गलाचरण किया गया है। उसके पश्चात् आवश्यक, श्रुत, स्क ध, अध्ययन एव सामायिक इन पाँच शब्दों को उदाहरण रूप में लेकर व्याख्या पद्धति को क्रियान्वित किया गया है ।

व्याख्या पद्धति के भेद प्रभेदों की प्रचुरता के कारण ही इस सूत्र को समझना क्लिष्ट–कठिन है। इसलिए यह सूत्र सर्व सामान्य के लिए सुरूचिपूर्ण नहीं है। तथापि जैन दर्शन को एव प्राचीन व्याख्याओं को समझने में गति करने हेतु मेधावी शिष्यों के लिए अतीव उपयोगी–बड़ा ही महत्वपूर्ण सूत्र है । क्यों कि प्राचीन चूर्णि निर्युक्ति टीकाओं आदि के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उनके प्रार भ में विवेचन करने की वही पद्धति अपनाई गई है जो इस सूत्र में भेद प्रभेदों के द्वारा बताई गई है। व्याख्याओं में यह

पद्धति श्वेताम्बर जैन आगमों के अतिरिक्त दिगम्बर जैन आगम 'षट–ख ड़ागम' आदि की टीकाओं में भी देखने को मिलती है। इससे भी इस सूत्रोक्त अनुयोग पद्धति की महत्ता एव आवश्यकता का अनुमान लगाया जा सकता है ।

अनुयोग द्वार सूत्र का विषय स कलन– (१) ज्ञान के भेद (२)श्रुत ज्ञान का उद्देश आदि (३) आवश्यक सूत्र का, श्रुत का, स्क ध का निक्षेप द्वारा प्ररूपण (४) अनुयोग के चार द्वार एव प्रथम उपक्रम द्वार का विभाग वर्णन (५) आनुपूर्वी विस्तार(६) एक से दस नाम के वर्णन से विविध भावों का निरूपण (७) चार प्रमाण स्वरूप(८) मान उन्मान के भेद एव स्वरूप (९) तीन प्रकार के अ गुल (१०) जीवों की अवगाहना (११) स्थितियाँ (१२) पाँच शरीरों के बद्ध मुक्त का वर्णन (१३) प्रत्यक्ष प्रमाण आदि भाव प्रमाण (१४) स ख वर्णन (१५) चार पल्य से काल गणना की उपमा(ड़ाला–पाला वर्णन) (१६) अर्थाधिकार (१७) समवतार (१८) चार निक्षेप द्वार (१९) अनुगम द्वार निरूपण (२०) सामायिक स्वरूप (२१) नय प्ररूपण

***नोंध**–ये अनुयोग द्वार सूत्र में वर्णित विषय है। जीवों की अवगहनाएँ स्थितिएँ, बद्ध मुक्त शरीरों का वर्णन, पन्नवणा सूत्र में होने से यहाँ इस भाग में नहीं लिया गया है ।*

इस सूत्र का स्थान आगमों में– व्याख्या पद्धति का सूचक यह अनुयोग द्वार सूत्र अ ग बाह्य उत्कालिक सूत्र है, ऐसा न दी सूत्र की सूत्र सूचि में बताया गया है। वर्तमान में श्वेताम्बर स्थानकवासी पर परा में इसे मूल सूत्रों में गिना जाता है एव श्वेताम्बर मूर्तिपूजक पर परा में चूलिका सूत्र कहा जाता है। इस सूत्र में मुख्य रूप से 'आवश्यकसूत्र' एव 'सामायिक आवश्यक' पर अनुयोग पद्धति से व्याख्या का कथन चार मुख्य द्वारों से किया गया है। उसके साथ साथ ही प्रस गानुसार अन्य भी ज्ञातव्य विषयों, तत्त्वों का कथन किया गया है। इसमें सा स्कृतिक सामग्री का भी वर्णन है यथा– स गीत के सात स्वर, स्वर स्थान, गायक के लक्षण, ग्राम, मूर्च्छनाएँ, स गीत के गुण और दोष, नव रस, सामुद्रिक लक्षण, उत्तम पुरूष के लक्षण, चिन्ह आदि। निमित्त के स ब ध में भी कुछ प्रकाश ड़ाला गया है यथा– आकाशदर्शन एव नक्षत्रादि के प्रशस्त होने पर सुवृष्टि होती है एव अप्रशस्त होने पर दुर्भिक्ष आदि होते हैं।

रचनाकार एव रचनाएँ– इसके रचयिता आर्य रक्षित माने गये हैं। तदनुसार इस सूत्र की रचना वीर निर्वाण स वत् ५९२ की एव विक्रम स वत् १२२ की मानी जाती है। आगम प्रभावक श्री पुण्य विजय जी म॰सा॰ का यह म तव्य है कि अनुयोग द्वार सूत्र की रचना आर्य रक्षित ने ही की हो ऐसा निश्चित नहीं कह सकते। इसलिये उपाचार्यश्री देवेंद्रमुनिजी ने वीर निर्वाण ८२७ वर्ष के पूर्व की रचना मानने का उल्लेख भी किया है। पूर्ण निर्णय के अभाव में भी इतना तो अवश्य है कि न दी सूत्र की रचना के पूर्व इस सूत्र की रचना हो गई थी। यह सूत्र एक श्रुत स्क ध है, इसमें अध्ययन उद्देशे नहीं है। इसका परिमाण १८९२ श्लोक का माना जाता है ।

इस सूत्र पर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण एव जिनदास गणी महत्तर यों दो प्राचीन आचार्यों की चूर्णि नामक व्याख्या उपलब्ध है। आचार्य हरिभद्रसूरी एव हेमचन्द्राचार्य की प्राचीन टीकाएँ उपलब्ध है। बीसवीं सदी में ३२ सूत्रों पर स स्कृत व्याख्या आचार्य श्री घासीलालजी म॰ सा॰ ने की है, वे सभी प्रकाशित उपलब्ध है। आचार्य श्री अमोलकऋषिजी म॰सा॰ने ३२ ही सूत्रों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया है एव हिन्दी विवेचन सहित ३२ ही शास्त्र आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित हुए हैं। आगम नवनीत प्रकाशन समिति से भी ३२ आगमों का नवनीत(सारा श)प्रकाशित है।

उपस हार– इस सूत्र के जटिल एव रूक्ष विषय को यथा स भव सरल और सुगम बनाकर प्रश्नोत्तर रूप में दिया गया है । नय-निक्षेप का वर्णन भी सुस्पष्ट किया गया है । जिसका पाठक गण स्वय ही अनुभव करके स तुष्ट होंगे, ऐसा विश्वास एव अनुमान किया जाता है ।

प्रश्न–२ : पाँच ज्ञान में कौन सा ज्ञान अनुयोग का विषय है ? इस शास्त्र में किसका अनुयोग किया गया है ?

उत्तर– ज्ञान के पाँच प्रकार है– १. मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान, ५. केवलज्ञान ।

इनमें से चार ज्ञान का अनुयोग नहीं होता है क्यों कि वे सीखने पढ़ाने आदि के विषयभूत नहीं है। श्रुतज्ञान ही सीखने पढ़ाने का विषय बनता है। क्यों कि १.उद्देश-पढ़ाना क ठस्थ करना, २. समुद्देश-

पक्का करना-स्थिर कराना एव शुद्ध कराना, ३. अनुज्ञा-अन्य को पढ़ाने का अधिकार, आज्ञा, स्वीकृति देना, ४. अनुयोग-वाचना देना, सामान्य अर्थ विशेषार्थ एव अनुयोग पद्धति से वस्तु तत्त्व का विश्लेषण करना इत्यादि सभी श्रुतज्ञान के ही होते हैं। शेष मति आदि चारों ज्ञान उस-उस प्रकार के क्षयोपशम से स्वतः ही प्राप्त होते हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए किसी को अध्ययन अध्यापन या अनुयोग व्याख्यान करना नहीं पड़ता है ।

श्रुतज्ञान में आवश्यक सूत्र, आवश्यक के अतिरिक्त अ ग शास्त्र, अ गबाह्य-कालिक उत्कालिक शास्त्र इत्यादि सभी का अनुयोग होता है। किसी भी एक सूत्र का अनुयोग पद्धति से व्याख्यान समझ लेने पर उसी पद्धति से अन्य सूत्रों का अनुयोग स्वाभाविक ही बहुत कुछ समझ में आ सकता है। एक सूत्र में भी उसके मुख्य २-४ शब्दों का अनुयोग-व्याख्यान पद्धति, समझ में आ जाने पर आगे स पूर्ण सूत्र की व्याख्या समझना सरल हो जाता है। इसलिए श्रमण निर्गंथों के उभय काल उपयोग में आने वाले एव आचारा ग सूत्र आदि अ ग सूत्रों से भी पहले अध्ययन कराये जाने वाले 'आवश्यक सूत्र' का अनुयोग किया जाता है। 'आवश्यक सूत्र एक श्रुतस्क ध है और उसमें अनेक अध्ययन है।' इस कथन में प्रयुक्त १ आवश्यक २ श्रुत ३ स्क ध और ४ अध्ययन इन चार शब्दों का अनुयोग करके स्वरूप बताया जाता है।

'आवश्यक' का अनुयोग– नाम आवश्यक– आवश्यक सूत्र अ ग बाह्य उत्कालिक सूत्र है ।'आवश्यक' यह इस सूत्र का गुण निष्पन्न नाम है। क्यों कि अवश्यकरणीय आदि गुण इसमें घटित होते हैं। किसी भी वस्तु का गुण सम्पन्न या गुण रहित नाम रखना ऐच्छिक एव परिचय के लिए होता है। यथा- महान वीरता के गुण से सम्पन्न व्यक्ति का नाम भी महावीर रखा जा सकता है एव कमजोर ड़रपोक व्यक्ति का नाम भी महावीर रखा जा सकता है। यह नामकरण स्थाई होता है। तदनुसार किसी का भी 'आवश्यक' यह नाम हो सकता है ।

स्थापना आवश्यक– किसी भी वस्तु या रूप में किसी भी वस्तु या व्यक्ति की कल्पना करके उसे स्थापित करना स्थापना है। यह सत्य रूप में भी हो सकती है एव असत्य रूप में भी होती है। यह अपेक्षित,

सीमित या असीमित काल के लिए होती है। प्रस्तुत प्रकरण में इसका प्रस ग नहीं है ।

द्रव्य आवश्यक– (१) अक्षर शुद्धि एव उच्चारण शुद्धि से युक्त तथा वाचना आदि चारों से युक्त सीखा हुआ 'आवश्यक शास्त्र' यदि अनुप्रेक्षा एव उपयोग से रहित है तो वह द्रव्य आवश्यक आगम है। (२) भूतकाल में आवश्यक शास्त्र को सीखे हुए व्यक्ति का मृत शरीर या भविष्य में जो आवश्यक शास्त्र को सीखेगा, उसका वह शरीर भी उपचार से द्रव्य आवश्यक है। यथा– घृतकुंभ, जलकु भ आदि। (३) सा सारिक लोग प्रात:कालीन जो भी आवश्यक क्रियाएँ स्नान, म जन, वस्त्राभरण, पूजा पाठ, खाना–पीना, गमनागमन आदि नित्य क्रिया करते हैं, वे भी 'द्रव्य आवश्यक' क्रियाएँ है । (४) सन्यासी तापस आदि भी प्रात:काल उपलेपन, स मार्जन, प्रक्षालन, धूप–दीप, अर्चा, तर्पणा आदि नित्य आवश्यक प्रवृतिएँ करते हैं वे भी द्रव्य आवश्यक क्रियाएँ हैं। (५) जो निर्ग्रंथ, श्रमण–पर्याय में रहते हुए भी श्रमण गुणों से रहित होते हैं, अत्यन्त स्वच्छ वस्त्रों से सुसज्जित रहते हैं, जिनाज्ञाओं एव शास्त्राज्ञाओं का उल्ल घन करते हैं, इस प्रकार स्वछ द विचरण करते हुए जो उभय काल विधियुक्त आवश्यक करते हैं, यह भी 'द्रव्य आवश्यक' क्रिया है।

भाव आवश्यक– (१) अक्षर शुद्धि एव उच्चारण शुद्धि से युक्त गुरूपदिष्ट वाचना आदि से सहित तथा अनुप्रेक्षा एव उपयोग पूर्वक जो आवश्यक है, वह 'भाव आवश्यक आगम' है ।(२) यथासमय रामायण, महाभारत आदि का उपयोग सहित वा चन श्रवण करना 'भाव आवश्यक लौकिक' क्रिया है ।(३) सन्यासी तापस आदि का यज्ञ, हवन, जाप, व दना, अ जली आदि उपयोग सहित क्रियाएँ करना 'कुप्रावचनिक भाव आवश्यक' क्रियाएँ हैं ।(४) जो श्रमण, निर्ग्रंथ पर्याय में भगवदाज्ञानुसार विचरण करते हुए एकाग्रचित से दत्तचित होकर, स पूर्ण उपयोग उसी में रखते हुए, उभय काल प्रतिक्रमण करते हैं, उस समय अन्य किसी भी चि तन में मन को प्रवृत्त नहीं होने देते हैं, तो उनकी वह प्रवृति 'लोकोत्तरिक भाव आवश्यक' क्रिया है। ये तीनों नो आगम भाव आवश्यक है।

आवश्यक के पर्याय शब्द– (१) आवश्यक (२) अवश्यकरणीय (३)

ध्रुवनिग्रह (४) विशोधि (५) छः अध्ययन सूमह (६) न्याय (७) आराधना(८) मार्ग। ये अलग-अलग उच्चारण एव अक्षर वाले एकार्थक आवश्यक के पर्यायावाची शब्द है ।इस प्रकार 'श्रमण' एव 'श्रमणो–पासको' द्वारा उभय स ध्या में किये जाने वाले आवश्यक का यह अनुयोग स्वरूप है ।

प्रश्न–३ : श्रुत का अनुयोग किस प्रकार है ?

उत्तर– नाम– किसी भी आगम–शास्त्र या शास्त्र वाक्यों को जो श्रुत स ज्ञा से कहा जाता है, अथवा परिचय के लिये यथेच्छ वस्तु का नाम 'श्रुत' रख दिया जाता है तो वह भी 'नाम श्रुत' है ।

स्थापना– किसी भी रूप या वस्तु में 'यह श्रुत है' ऐसा आरोप, कल्पना अथवा स्थापना की जाय तो वह 'स्थापना श्रुत' है ।

द्रव्य– (१) अक्षर शुद्धि उच्चारण शुद्धि से युक्त गुरूपदिष्ट वाचना आदि चारों से सहित सीखा हुआ किन्तु अनुप्रेक्षा एव उपयोग से रहित शास्त्र 'द्रव्य श्रुत' आगम है ।(२) भूतकाल में 'श्रुत' सीखे हुए व्यक्ति का मृत शरीर एव भविष्य में सीखने वाले का वर्तमान शरीर उपचार से 'द्रव्य श्रुत' है ।(३) ताड़पत्रों, पन्नों एव पुस्तक में लिखा हुआ शास्त्र भी 'द्रव्य शास्त्र' है।'श्रुत' के लिये आगम भाषा में 'सुय ' और 'सुत्तं' शब्द का प्रयोग किया जाता है और कपास, ऊन आदि के धागों के लिए भी 'सुत्तं' शब्द का प्रयोग किया जाता है, इस अपेक्षा से अनेक प्रकार के वस्त्रों के धागे–ड़ोरे भी 'द्रव्य सूत्र' है ।

भाव– (१) अक्षर शुद्धि, उच्चारण शुद्धि आदि के साथ अनुप्रेक्षा एव उपयोग युक्त जो श्रुत है वह 'भाव श्रुत आगम' है । (२) अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों आदि के द्वारा स्वच्छ द बुद्धि से रचित मत मता तरीय शास्त्र, ग्र थ, ७२ कलाएँ, व्याकरण, रामायण, महाभारत, सा गोपा ग वेद, यह सब 'लौकिक भाव श्रुत' है ।(३) सर्वज्ञोक्त निर्ग्रंथ प्रवचन रूप आचारा ग प्रमुख बारह अ ग सूत्र आदि आगमोक्त चारित्र गुण से सम्पन्न श्रमण के क ठस्थ एव उपयोग युक्त है तो वे 'लोकात्तरिक भाव श्रुत' क्रिया रूप है । **पर्याय शब्द–** १. श्रुत, २. सूत्र, ३. ग्र थ ४. सिद्धा त, ५. शासन, ६–आज्ञा, ७. वचन, ८. उपदेश, ९. प्रज्ञापना, १०. आगम, ये सभी 'श्रुत' के पर्यायवाची शब्द है ।

प्रश्न-४ : स्क ध का अनुयोग किस प्रकार है ?

उत्तर- नाम स्थापना- किसी का 'स्क ध' नाम रखा गया है, वह नाम स्क ध है। और किसी को 'यह स्क ध' है ऐसा आरोपित, कल्पित या स्थापित किया हो, वह 'स्थापना स्क ध' है ।

द्रव्य- (१) श्रुत के विभाग रूप स्क ध को अथवा 'स्क ध' इस पद को शुद्ध अक्षर एव उच्चारण युक्त, गुरूपदिष्ट वाचनादि से सहित, सीखा है किन्तु अनुप्रेक्षा एव उपयोग रहित है, वह 'द्रव्य-स्क ध' है ।(२) भूतकाल में 'स्क ध' को जिसने जाना सीखा था, उसका मृत शरीर अथवा भविष्य में जो जानेगा सीखेगा उसका वर्तमान शरीर, उपचार से 'द्रव्य स्क ध' है ।(३) हाथी घोड़ा आदि का स्क ध 'सचित्त द्रव्य स्क ध' है । (४) द्विप्रदेशी स्क ध यावत् अन त प्रदेशी स्क ध ये 'अचित्त द्रव्य स्क ध' है ।(५) सेना का स्क धावार 'मिश्र द्रव्य स्क ध' है उसमें शस्त्रादि अचित्त एव हाथी घोड़े मनुष्य आदि सचित्त होते हैं ।

भाव- (१) द्रव्य स्क ध में कहे गये उच्चारण शुद्धि आदि से सीखा हुआ, साथ ही अनुप्रेक्षा एव उपयोग से भी युक्त स्क ध 'भावस्क ध' आगम रूप है ।(२) सामायिक आदि छः अध्ययनों के समुदाय रूप 'आवश्यक श्रुत स्क ध' चारित्र गुण से सम्पन्न जिन श्रमणों के उपयोग युक्त है वह 'भाव स्क ध' क्रिया रूप है ।

पर्याय शब्द- १. गण २. काय ३. निकाय ४. स्क ध ५. वर्ग ६. राशि ७. पु ज ८. पिंड़ ९. निकर १०. स घात ११. आकुल १२. समूह ।

प्रश्न-५ : 'अध्ययन' का अनुयोग किस प्रकार है ?

उत्तर- आवश्यक सूत्र के ६ अध्ययन है उनके नाम और अर्थ इस प्रकार है- **१. सामायिक**-सावद्य योग अर्थात् पाप कार्यों से निवृति करना ।**२. चतुर्विंशति-स्तव**-पाप के आचरण का त्याग कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए परम उपकारी धर्म प्रवर्तक तीर्थंकरों की स्तुति करना। **३. व दना**-गुणवानों की अर्थात् सावद्ययोग त्याग की साधना में तत्पर श्रमण वर्ग की विनय प्रतिपत्ति-आदर, सम्मान, बहुमान करना। **४. प्रतिक्रमण**-स यम साधना में प्रमाद वश होने वाली स्खलनाओं एव अतिचारों की शुद्ध बुद्धि से एव वैराग्य भावना से निंदा गर्हा कर उस प्रमाद से अलग हो जाना, उसे छोड़ देना । **५. कायोत्सर्ग**-व्रण

चिकित्सा के समान अर्थात् घाव पर मरहम पट्टी करने के समान स यम साधना में आई हुई कमी को दुरस्त करने के लिए सीमित श्वासोश्वास प्रमाण समय तक शरीर पर से ममत्व भाव, राग भाव का त्याग कर उसकी प्रक्रियाओं को अर्थात् मन वचन काया की प्रवृतियों को रोक कर शक्य निश्चेष्ट होकर ध्यान मुद्रा से खड़े रहना ।**६. प्रत्याख्यान-** स्खलित स यम को विशेष पुष्ट बनाने के लिए एव तज्जनित कर्म ब ध को क्षय करने के लिये नवकारसी आदि तप रूप निर्जरा गुणों को धारण करना ।

प्रश्न-६ : अनुयोग के द्वार कितने है और उसमें से प्रथम द्वार उपक्रम का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- अनुयोग के मुख्य चार द्वार है । यथा- १. उपक्रम, २. निक्षेप, ३. अनुगम, ४. नय ।

१. उपक्रम- प्रार भिक ज्ञातव्य विषय की चर्चा करना एव पदार्थ को निक्षेप के योग्य बना देना 'उपक्रम' है ।**२. निक्षेप-** नाम स्थापना आदि के भेद से सूत्रगत पदों को व्यवस्थापन करना । **३. अनुगम-** सूत्र का अनुकूल अर्थ कहना। इससे वस्तु के सही रूप का ज्ञान होता है ।**४. नय-** वस्तु के शेष धर्मो को अपेक्षा दृष्टि से गौण करके मुख्य रूप से किसी एक अ श को ग्रहण करने वाला बोध 'नय' है । **उपक्रम द्वार का वर्णन-** उपक्रम के ६ प्रकार है- १. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य, ४. क्षेत्र, ५. काल, ६. भाव ।

द्रव्य उपक्रम- सचित सजीव मुनष्य पशु आदि को, अचित्त पुद्गल गुड़ शक्कर आदि को, उपाय विशेष से पुष्ट करना, गुण वृद्धि करना, 'परिकर्म द्रव्य उपक्रम' है एव शस्त्र से जीवों का विनाश और प्रयत्न विशेष से पुद्गलों के गुण धर्मो का विनाश करना 'वस्तु विनास द्रव्य उपक्रम' है ।

क्षेत्र उपक्रम- भूमि को हल आदि के प्रयोग से उपजाऊ बनाना परिकर्म विषयक क्षेत्र उपक्रम है और हाथी आदि को बाँध कर भूमि को ब जर बनाना 'विनाश विषयक क्षेत्र उपक्रम' है ।

काल उपक्रम- जलघड़ी, रेतघड़ी आदि से समय का यथार्थ ज्ञान किया जाता है यह 'परिकर्म रूप काल उपक्रम' है और नक्षत्रादि की

गति से जो काल का विनाश (व्यतीत होना) होता है यह 'विनाश रूप काल उपक्रम' है ।

भाव उपक्रम– **१.** उपक्रम के अर्थ स्वरूप का सही ज्ञान होना एव उसके उपयोग से भी युक्त होना, आगम रूप भाव उपक्रम है । **२.** उपक्रम का अर्थ है अभिप्राय। अतः अभिप्राय का यथावत् परिज्ञान 'भाव उपक्रम प्रवृति' है। यह अभिप्राय जानने रूप भाव उपक्रम प्रशस्त एव अप्रशस्त दोनों तरह का होता है। वेश्या आदि स्त्री के द्वारा अन्य का अभिप्राय जानना अप्रशस्त है और शिष्य के द्वारा गुरू का अभिप्राय जान लेना प्रशस्त है। लौकिक दृष्टि की अपेक्षा यह उपक्रम वर्णन है।

प्रश्न–७ : प्रथम उपक्रम द्वार का अन्य अपेक्षा छ भेद कौन से है तथा जिसमें प्रथम आनुपूर्वी का विस्तृत वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– उपक्रम के ६ प्रकार है– १. आनुपूर्वी, २. नाम, ३. प्रमाण, ४. वक्तव्यता, ५. अर्थाधिकार, ६. समवतार ।

(१) आनुपूर्वी का वर्णन– आनुपूर्वी के दश प्रकार है– १. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य, ४. क्षेत्र, ५. काल, ६. उत्कीर्तन, ७. गणना, ८. स स्थान, ९. समाचारी, १०. भावानुपूर्वी । आनुपूर्वी, अनुक्रम एव परिपाटी ये तीनों एकार्थक शब्द है अर्थात् एक के पीछे दूसरा ऐसी परिपाटी को आनुपूर्वी कहते हैं।

१. द्रव्यानुपूर्वी– १. किसी विवक्षित पदार्थ को पहले व्यवस्थापित करके रख कर फिर उसके पास पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से अन्यान्य पदार्थों को रखना द्रव्यानुपूर्वी है। इसे उपनिधिकी आनुपूर्वी कहते हैं ।

२. पदार्थों को पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम की अपेक्षा रखे बिना व्यवस्थापित करना–रखना या स्वभावतः स्क धों का व्यवस्थापित हो जाना किसी भी क्रम से जुड़ जाना भी द्रव्यानुपूर्वी है इसे अनौपनिधिकी आनुपूर्वी कहते हैं ।

३. आनुपूर्वी वही है जहाँ आदि मध्य और अ त का व्यवस्थापन हो। इसलिए परमाणु अनानुपूर्वी है। द्विप्रदेशी स्क ध में आदि एव अ त है किन्तु मध्य नहीं है अतः अनानुपूर्वी भी नहीं किन्तु 'अवक्तव्य' है। त्रिप्रदेशी से लेकर अन त प्रदेशी स्क ध आनुपूर्वी है ।

४. आनुपूर्वी अनानुपूर्वी एव अवक्तव्य के एक वचन, बहुवचन के भेद से अस योगी ६ भेद होते हैं। इन ६ से द्विस योगी भ ग बनाने पर १२ भ ग बनते हैं एव तीन स योगी भ ग ८ बनते हैं कुल २६ भ ग होते हैं। ये भ ग विकल्प इस प्रकार है– अस योगी भ ग ६– (१) आनुपूर्वी (२) अनानुपूर्वी (३) अवक्तव्य (४) आनुपूर्वियाँ (५) अनानुपूर्वियाँ (६) अनेक अवक्तव्य। द्विस योगी भ ग १२– १ आनुपूर्वी एक अनानुपूर्वी एक २ आनुपूर्वी एक अनानुपूर्वी अनेक ३ आनुपूर्वी अनेक अनानुपूर्वी एक ४ आनुपूर्वी अनेक अनानुपूर्वी अनेक। इसी प्रकार चार भ ग आनुपूर्वी एव अवक्तव्य के साथ होते हैं और चार भ ग अनानुपूर्वी एव अवक्तव्य के साथ होते हैं, ये कुल १२ भ ग है।

तीन स योगी ८ भ ग–(१)आनुपूर्वी एक, अनानुपूर्वी एक, अवक्तव्य एक (२) आनुपूर्वी एक, अनानुपूर्वी एक, अवक्तव्य अनेक (३) आनुपूर्वी एक, अनानुपूर्वी अनेक, अवक्तव्य एक (४) आनुपूर्वी एक, अनानुपूर्वी अनेक, अवक्तव्य अनेक (५) आनुपूर्वी अनेक, अनानुपूर्वी एक, अवक्तव्य एक (६) आनुपूर्वी अनेक, अनानुपूर्वी एक, अवक्तव्य अनेक (७) आनुपूर्वी अनेक, अनानुपूर्वी अनेक, अवक्तव्य एक (८) आनुपूर्वी अनेक, अनानुपूर्वी अनेक, अवक्तव्य अनेक। ये ६ + १२ + ८ = २६ भ ग होते हैं। यही भ ग बनाने की विधि अन्यत्र भी जान लेनी चाहिए। इसी विधि से परमाणु, द्विप्रदेशी स्क ध एव तीन प्रदेशी स्क ध इन तीनों के स योग से २६ भ ग जानने चाहिए ।

५. आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का 'अस्तित्व' आदि द्वारा विचार करना 'अनुगम' अर्थात् अनुकूल विशेष ज्ञान है। यथा– (१) आनुपूर्वी आदि तीनों का अस्तित्व है। (२) द्रव्य स ख्या से अन त है। (३) अनेक द्रव्यों की अपेक्षा आनुपूर्वी आदि सर्वलोक में है और एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के स ख्यातवें भाग आदि में अलग–अलग रूप में है। (४) वैसी ही साधिक स्पर्शना है। (५) स्थिति सभी की जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्य काल की है एव बहुत्व की अपेक्षा शाश्वत है। (६) अ तर जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन त काल का है। किन्तु परमाणु का अस ख्य काल का है। बहुत्व की अपेक्षा अ तर नहीं है। (७) शेष द्रव्यों के अनेक अस ख्यातवें भाग में आनुपूर्वी द्रव्य होते हैं। द्विप्रदेशी तथा

परमाणु द्रव्य अस ख्यातवें भाग में होते हैं। (८) आनुपूर्वी आदि द्रव्य पारिणामिक भाव में होते हैं। (९) द्विप्रदेशी स्क ध द्रव्य सबसे थोड़े हैं, उससे परमाणु विशेषाधिक है एव तीन प्रदेशी आदि स्क ध द्रव्य अस ख्य गुणे है। प्रदेश की अपेक्षा-सबसे थोड़े परमाणु अप्रदेश, द्विप्रदेशी के प्रदेश विशेषाधिक उससे तीन प्रदेशी आदि स्क धों के प्रदेश अन त गुणा है ।

६. नैगम एव व्यवहार नय से उपरोक्त २६ भ ग होते हैं और स ग्रह नय से आनुपूर्वी आदि के सात भ ग होते हैं क्योंकि बहुवचन की विवक्षा इसमें अलग नहीं होती है। भ ग इस प्रकार है- (१) आनुपूर्वी (२) अनानुपूर्वी (३) अवक्तव्य (४) आनुपूर्वी अनानुपूर्वी, (५) आनुपूर्वी अवक्तव्य (६) अनानुपूर्वी अवक्तव्य (७) आनुपूर्वी अनानुपूर्वी अवक्तव्य। अन्य भी वर्णन स ग्रह नय से समझना किन्तु इसमें बहुवचन स ब धी कोई विकल्प द्रव्य, प्रमाण, क्षेत्र, र्स्पशना, स्थिति आदि में नहीं समझना। यह अनोपनिधिकी आनुपूर्वी का वर्णन हुआ ।

पूर्वानुपूर्वी आदि के भ ग- औपनिधिकी द्रव्य आनुपूर्वी तीन प्रकार की होती है - १. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी (दोनों से भिन्न अवस्था स्वरूप वाली) यथा-६ द्रव्यों को क्रम से रखना पूर्वानुपूर्वी है, उल्टे क्रम से रखना पश्चानुपूर्वी है। छः द्रव्यों के अनानुपूर्वी के भ ग इस प्रकार है- १×२×३×४×५×६=७२० इसमें दो कम करने पर ७१८ अनानुपूर्वी के भ ग जानना । इसी प्रकार प च परमेष्ठी के पदों की एक पूर्वानुपूर्वी एक पश्चानुपूर्वी और ११८(१×२×३×४×५=१२०-२= ११८) अनानुपूर्वी के भ ग बनते हैं ।

क्षेत्रानुपूर्वी- द्रव्यानुपूर्वी के समान ही स पूर्ण वर्णन है इसमें तीन प्रदेशों आदि से अवगाढ़ स्क ध आनुपूर्वी है, एक प्रदेशावगाढ़ स्क ध अनानुपूर्वी है और द्विप्रदेशावगाढ़ स्क ध अवक्तव्य है। अल्पबहुत्व में यहा अन त गुण के स्थान पर अस ख्य गुण ही होता है, क्यों कि अवगाहना अस ख्य प्रदेश की होती है, अन त प्रदेश की नहीं होती है। पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी यहाँ ऊँचालोक, नीचा लोक और तिरछा लोक की अपेक्षा कहनी चाहिए। फिर नीचे लोक के सात नरक, तिरछेलोक के अस ख्य द्वीपसमुद्र एव ऊर्ध्वलोक के १५ स्थान(१२ देवलोक १ ग्रैवेयक १ अणुत्तर देव १ सिद्ध शिला) की पूर्वानुपूर्वी आदि कही जा सकती है।

कालानुपूर्वी- द्रव्यानुपूर्वी के सदृश स पूर्ण वर्णन है। इसमें एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानुपूर्वी है, दो समय की स्थिति वाला द्रव्य अवक्तव्य है और तीन समय से अस ख्य समय तक की स्थिति वाले द्रव्य आनुपूर्वी है। क्षेत्र अवगाहना के समान काल स्थिति भी अस ख्य है अतः अन त नहीं कहना ।

एक समय की स्थिति यावत् अस ख्य समय की स्थिति की अपेक्षा पूर्वानुपूर्वी आदि कहनी चाहिए। अथवा समय, आवलिका, आणु- पाणु, थोव, लव, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटिता ग, त्रुटित, यावत् शीर्ष प्रहेलिका ग शीर्ष प्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गल परावर्तन, अतीत काल, अनागत काल, सर्वकाल, इन ५३ पदों से भी कह सकते हैं ।

उत्कीर्तन आनुपूर्वी- इसके पूर्वानुपूर्वी आदि तीन भेद है जो ऋषभ आदि महावीर पर्यंन्त २४ तीर्थंकरों की अपेक्षा कहनी चाहिए ।

गणनानुपूर्वी- इसके पूर्वानुपूर्वी आदि तीन भेद है जो एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब तक के इन पदों की अपेक्षा कहनी चाहिए ।

स स्थान आनुपूर्वी- यह छः स स्थानों की अपेक्षा कही जाती है ।

समाचारी आनुपूर्वी- यह 'आवस्सहि' आदि दस समाचारी की अपेक्षा कही जाती है ।

भावानुपूर्वी- यह छः भावों की अपेक्षा कही जाती है । १ उदय २ उपशम ३ क्षायिक ४ क्षयोपशमिक ५ पारिणामिक ६ मिश्र-स योगी (सन्निपातिक) भाव । यह आनुपूर्वी अधिकार पूर्ण हुआ ।

प्रश्न-८ : उपक्रम के ६ भेद में से दूसरे नाम उपक्रम का विश्लेषण किस प्रकार है ?

उत्तर- यह दस प्रकार का है, यथा- एक नाम, दो नाम, तीन नाम यावत् दस नाम ।

एक नाम- द्रव्य गुण पर्यायों के जो भी नाम लोक में रूढ़ है उन सब की 'नाम' यह एक स ज्ञा होने से वे सब एक नाम है ।

द्विनाम- एकाक्षर 'श्री' आदि द्व्याक्षर 'देवी' आदि अथवा जीव

अजीव ये दो नाम है। विशेषित-अविशेषित भेद रूप दो नाम अपेक्षा से अनेक प्रकार का होता है यथा- जीव अविशेषित और नारकी आदि विशेषित। नारकी अविशेषित रत्नप्रभा आदि विशेषित। यों भेदानुभेद करते हुए अणुत्तर देव अविशेषित, विजय वैजय त विशेषित, यह दो नाम है। इसी प्रकार अजीव द्रव्य में भी समझना चाहिए ।

तीन नाम- द्रव्य गुण पर्याय यह तीन नाम है। इसमें द्रव्य के ६ भेद, गुण के वर्णादि पाँच भेद एव २५ भेद और पर्याय के एक गुण काला यावत् अन त गुण काला आदि अन त भेद है। स्त्री, पुरूष, नपु सक ये भी तीन नाम है। स्त्री नाम के अ त में स्वर **आ ई ऊ** होता है, पुरूष नाम के अ त में **आ ई ऊ** ओ होता है, नपु सक नाम के अ त में **अ इ उ** होता है। यथा- १. माला, लक्ष्मी, वधू, २-राजा, गिरी, विण्हु, दुमो (वृक्ष) ३-धन्न , अच्छि , महु ।

चार नाम- नाम चार प्रकार से बनते है २- आगम से २-लोप से ३-प्रकृति से ४-विकार से। इनके उदाहरण-१-पद्मानि, पयांसि, कुंड़ानि (सुट का आगम) २-तेत्र, रथोत्र (अ का लोप) ३-अग्नि एतौ, पटू इमौ (इसमें स घी नहीं होती प्रकृति भाव हो जाने से) ४-द ड़स्य + अग्र = द ड़ाग्र (एक वर्ण के स्थान पर अन्य वर्ण) ।

प च नाम- १. किसी वस्तु का बोध कराने वाला शब्द या नाम वह नामिक नाम है ।२.'खलु' आदि नैपातिक नाम है।३. धावति आदि तिग त क्रियाएँ आख्यातिक नाम है ।४.'परि' आदि उपसर्ग औपसर्गिक नाम है।५. स यतः आदि मिश्र-स योगी नाम है।(उपसर्ग भी है, नामिक भी है) ।

छः नाम- **१.** उदय भाव-आठ कर्मो का उदय, जीव उदय निष्पन्न-मनुष्यत्व, त्रसत्व, देवत्व। अजीव उदय निष्पन्न-शरीर आदि।**२.** उपशम भाव-मोहनीय कर्म के उपशम से-उपशम समकित, उपशम श्रेणी, उपशा त मोह गुणस्थान, उपशम चारित्र लब्धि ।**३.** क्षायिक भाव-आठ कर्मों के एव उनकी समस्त प्रकृतियों के क्षय से होने वाला भाव ।**४.** क्षायोपशमिक भाव-ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मों के क्षय एव उपशम को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। चार ज्ञान, पाँच इ द्रियाँ तीन दर्शन, चार चारित्र, गणी, वाचक आदि पदवी ।

उदय प्राप्त कर्म का क्षय, अनुदीर्ण के विपाकोदय की अपेक्षा उदयाभाव (उपशम) इस प्रकार क्षय से उपलक्षित उपशम ही क्षयोपशम कहलाता है। उपशम में प्रदेशोदय भी नहीं होता है किन्तु क्षयोपशम में प्रदेशोदय होता है, विपाकोदय नहीं होता है ।**५.** पारिणामिक भाव-सादि पारिणामिक-बादल, स ध्या, पर्वत, इन्द्रधनुष, बिजली, हवा, वर्षा आदि। अनादि पारिणामिक-जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व लोक अलोक एव धर्मास्तिकाय आदि ।**६.** सन्निपातिक(स योगी-मिश्र) भाव- पूर्वोक्त पाँच भावों से द्विक स योगी आदि २६ भ ग बनते हैं, वे सन्निपातिक भाव कहे जाते हैं ।

छब्बीस भ ग- द्विस योगी भ ग-१० (१) उदय उपशम (२) उदय क्षय (३) उदय क्षयोपशम (४)उदय पारिणामिक (५) उपशम क्षय (६) उपशम क्षयोपशम (७) उपशम पारिणामिक (८) क्षय क्षयोपशम (९) क्षय पारिणामिक (१०) क्षयोपशम पारिणामिक ।

त्रिस योगी भ ग- १० (१) उदय उपशम क्षय (२) उदय उपशम क्षयोपशम (३) उदय उपशम पारिणामिक (४) उदय क्षय क्षयोपशम (५) उदय क्षय पारिणामिक (६) उदय क्षयोपशम पारिणामिक (७) उपशम क्षय क्षयोपशम (८)उपशम क्षय पारिणामिक (९)उपशम क्षयोपशम पारिणामिक (१०)क्षय क्षयोपशम पारिणामिक ।

चतुःस योगी भ ग-५.(१)उदय उपशम क्षय क्षयोपशम (२)उदय उपशम क्षय पारिणामिक (३) उदय उपशम क्षयोपशम पारिणामिक (४) उदय क्षय क्षयोपशम पारिणामिक (५) उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक।

प च स योगी एक भ ग-१ उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक।

इन २६ भ ग में से जीव में ६ भ ग पाये जाते हैं शेष २० का भ ग रूप में अस्तित्व मात्र समझना। वे ६ भ ग इस प्रकार है- **१.** क्षायिक पारिणामिक-सिद्धों में। **२.** उदय क्षयोपशम पारिणामिक-सामान्य रूप से स सारी जीवों में। **३.** उदय क्षायिक पारिणामिक-भवस्थ केवलियों में(गुणस्थान १३-१४ में।) **४.** उदय क्षय क्षयोपशम पारिणामिक-क्षायिक समकिती सामान्य जीव में। **५.** उदय उपशम क्षयोपशम पारिणामिक- उपशम समकिती सामान्य जीव में। **६.** उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक-क्षायिक सम्यग् दृष्टि उपशम श्रेणी में ।

यहाँ पर १–गतियों को उदय में २–उपशम समकित, उपशम श्रेणी–उपशम में ३–इ द्रियों क्षयोपशम में ४–क्षायिक समकित, क्षपक श्रेणी, केवल ज्ञान, क्षय में ५–जीवत्व भाव आदि पारिणामिक में समझना चाहिये ।

सात नाम– सात स्वर है, वे सप्तनाम है यथा– **१–षड्ज स्वर–** क ठ, वक्षस्थल, तालु, जीव्हा, द त, नासिका इन छः स्थानों के स योग से यह स्वर उत्पन्न होता है, जीव्हाग्र से उच्चारित होता है । यथा– मयूर का शब्द, मृद ग का शब्द। इस स्वर वाला मनुष्य आजीविका, पुत्र, मित्र आदि से स पन्न सुखी होता है ।

२–वृषभ स्वर– बैल की गर्जना के समान यह स्वर वक्षस्थल से उच्चारित होता है। यथा–कुकड़े का स्वर, गोमुखी वादिंत्र का स्वर। इस स्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है। सेनापतित्व एव धनधान्य आदि भोग सामग्री को प्राप्त करना है ।

३–गा धार स्वर– यह क ठ से उच्चारित होता है। यथा–ह स का स्वर, श ख की आवाज। इस स्वर वाला मनुष्य–श्रेष्ठ आजीविका प्राप्त करता है। कलाकोविद होता है। कवि बुद्धिमान एव अनेक शास्त्रों में पार गत होता है ।

४–मध्यम स्वर– उच्चनाद रूप होता है। जीव्हा के मध्य भाग से उच्चारित होता है। यथा– भेड़ का स्वर, झालर का स्वर। इस स्वर वाले सुखैषी सुख जीवी होते हैं, मनोज्ञ खाते पीते एव अन्यों को खिलाते–पिलाते दान करते हैं ।

५–प चम स्वर– नाभि, वक्षस्थल, हृदय, क ठ और मस्तक इन पाँच स्थानों के स योग से एव नासिका से उच्चारित होता है यथा– बस त ऋतु में कोयल का शब्द, गोधिका वादिंत्र का स्वर। इस स्वर वाला राजा, शूरवीर, स ग्राहक और अनेक मनुष्यों का नायक होता है ।

६–धैवत स्वर– पूर्वोक्त सभी स्वरों का अनुस धान(अनुसरण) करने वाला यह स्वर द त औष्ठ के स योग से उच्चारित होता है। यथा– क्रौंच पक्षी का स्वर, नगाड़ा की आवाज। इस स्वर वाला मनुष्य कलह प्रिय एव हिंसक, निर्दयी होता है ।

७–निषाद स्वर– यह सभी स्वरों का पराभव करने वाला है ।

भृकुटि ताने हुए शिर से इसका उच्चारण होता है। यथा– हाथी की आवाज, महाभेरी की आवाज। इस स्वर वाला मनुष्य चा ड़ाल, गोघातक, मुक्केबाज, चोर एव ऐसे ही बड़े पाप करने वाला होता है। ये सात स्वर पूर्ण हुए ।

गायन– ड़रते हुए, उतावल से, श्वा स लेते, नाम के स योग से कटु स्वर एव ताल विरुद्ध गाना इत्यादि गायन के दोष है। स्पष्ट उच्चारण, शुभ मधुर स्वर, उतार चढ़ाव से स पन्न, गेय राग से युक्त गाना इत्यादि गायन के गुण है। गायक का गीत के स्वर में मूर्च्छित सा हो जाना 'गीत की मूर्च्छना' कहलाती है। ये मूर्च्छनाएँ २१ है । इनके सात सात के समूह को **ग्राम** कहते है अतः सात स्वरों के तीन ग्राम एव २१ मूर्च्छनाएँ होती है। गायन भी सत्य, उपघात आदि ३२ दोषों से रहित, विशिष्ट अर्थ युक्त, अल कारों से युक्त, उपस हार से युक्त, अल्प पद–अल्प अक्षर वाला एव प्रियकारी होना चाहिए। श्याम स्त्री मधुर गाती है, काली स्त्री खर रूक्ष स्वर में गाती है, गौर वर्णा चतुराई से गाती है, काणी विल बित स्वर में एव अ धी शीघ्र गति स्वर में गाती है ।

आठ नाम– शब्दों की आठ वचन विभक्तियाँ आठ नाम है । यथा– १–प्रथमा–(कर्ता) जाति और व्यक्ति के निर्देश में २–द्वितीया– (कर्म) जिस पर उपदेश, क्रिया का फल पड़े ३–तृतीया–(करण) क्रिया के साधकतम कारण में ४–चतुर्थी–स प्रदान–जिसके लिए क्रिया होती है वह।५–प चमी–(अपादान) जिससे अलग होने का बोध हो ६– छट्ठी (स ब ध) स्वामित्व स ब ध कहने वाली ७–सप्तमी (आधार)– क्रिया के आधार स्थान का बोध कराने वाली ८ अष्टमी (स बोधन) स बोधित आम त्रित करने वाली। यथा–१. यह, वह, मैं २. इसको कहो, उसको बुलाओ ३. उसके द्वारा किया गया, मेरे द्वारा कहा गया ४. उसके लिए दो, उसके लिये ले जाओ, जिनेश्वर के लिये मेरा नमस्कार हो ५. वृक्ष से फल गिरा, यहाँ से दूर कर दो ६. उसकी वस्तु, उसका मकान, उसके खेत ७. छत पर, भूमि पर, पुस्तक में, घर में । ८. अरे ! भाई, ओ ! बहिन जी, हे! स्वामी, हे! नाथ, इत्यादि ।

नव नाम– काव्यों के नौ रस हैं वे, नव नाम है । यथा– १. वीर रस २. श्रृ गार रस ३. अद्‌भुत रस ४. रौद्र रस ५. व्रीड़न (लज्जा उत्पादक) रस ६. वीभत्स रस ७. हास्य रस ८. कारुण्य रस ९ प्रशा त रस ।

अनेक सहकारी कारणों से अ तरात्मा में उत्पन्न उल्लास या विकार की अनुभूति रस कहलाती है। अत: जिस काव्य के गाने या सुनने से आत्मा में जो वीरता हास्य श्रृ गार भाव आदि की अनुभूति होती है, वह उस काव्य का रस कहलाता है। एक काव्य में एक रस या अनेक रस भी हो सकते हैं ।

दस नाम– नामकरण दस प्रकार का होता है । यथा– १. गुण निष्पन्न नाम–श्रमण, तपस्वी, पवन २. गुण रहित नाम–समुद्ग, समुद्र, पलाश, इन्द्रगोप कीड़ा ३. आदान पद निष्पन्न नाम–प्रार भिक पद से अध्ययन आदि का नाम–भक्तामर, पुच्छिस्सुण ४. प्रतिपक्ष पद निष्पन्न नाम– अलाबु, अलत्तक ५. प्रधान पद निष्पन्न नाम–आम्रवन आदि। ६. अनादि सिद्धा त निष्पन्न नाम–धर्मास्तिकाय आदि ७. नाम निष्पन्न नाम– मृगापुत्र, पा डुपुत्र, पा डुसेन ८. अवयव निष्पन्न नाम–पक्षी द्विपद चतुष्पद, जटाधारी आदि ९. स योग निष्पन्न नाम–गोपालक, द ड़ी, रथिक, नाविक, मारवाड़ी, हिन्दुस्तानी, प चमारक(प चम आरे के मनुष्य) हेम तक, वस तक, चौमासी, स वत्सरी, ज्ञानी, स यमी, क्रोधी ।

१०वाँ प्रमाण निष्पन्न नाम– इसके चार भेद है– नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। किसी का 'प्रमाण' नाम रख दिया वह **नाम निष्पन्न**। स्थापना प्रमाण निष्पन्न नाम–२८ नक्षत्रों के एव उनके देवता के नाम। अनेक प्रकार के कुल नाम– उग्र कुल, भोग कुल, इक्ष्वाकु कुल आदि । अनेक प्रकार के पास ड़ नाम–श्रमण, प डुरग, भिक्षु, परिव्राजक, तापस आदि। अनेक प्रकार के गण नाम–मल्ल गण आदि ये सभी **स्थापना प्रमाण निष्पन्न नाम** के अ दर समाहित है।

द्रव्य प्रमाण निष्पन्न नाम– धर्मास्तिकायादि है।**भाव प्रमाण निष्पन्न नाम** में समास, तद्धित, धातु, निरूक्तिज ये चार भेद और इनके भेदानुभेद एव उदाहरण भी कहे गये हैं।**समास सात है**– १. द्व द २. बहुव्रीहि ३. कर्मधारय ४. द्विगु ५. तत्पुरुष ६. अव्ययी भाव ७. एक शेष । अर्थात् समास निष्पन्न नाम सात प्रकार के हैं ।

तद्धित निष्पन्न नाम आठ प्रकार के हैं। १. कर्म से– व्यापारी, शिक्षक २. शिल्प से– काष्टकार, स्वर्णकार, चित्रकार ३. श्लोक से– श्रमण, ब्राह्मण ४. स योग से– राज–जवा ई ५. समीप नाम–वेनातट ६.

स यूथ नाम–टीकाकार, शास्त्रकार, तर गवतीकार ७. एश्वर्य नाम– सेठ, सार्थवाह, सेनापति ८. अपत्यनाम– राजमाता, तीर्थंकर माता। धातु से निष्पन्न नाम धातुज कहलाते हैं।निरूक्त निष्पन्न नाम–महिष, भ्रमर, मूसल, कपित्थ।यह दस नाम प्रकरण पूर्ण हुआ।

प्रश्न–९ : तीसरे प्रमाण उपक्रम में द्रव्य प्रमाण का विश्लेषण किस प्रकार है ?

उत्तर– द्रव्य प्रमाण के ५ प्रकार है यथा–(**१) मान प्रमाण**– धान्य को मापने का सबसे छोटा माप 'मुट्ठी' है। दो मुट्ठी=पसली। दो पसली= एक खोबा, चार खोबा=एक कुलक। चार कुलक=एक प्रस्थ। चार प्रस्थ= एक आढ़क। चार आढ़क=एक द्रोण। साठ आढ़क=छोटी कु भी। अस्सी आढ़क=मध्यम कु भी। एक सौ आढ़क=बड़ी कु भी। आठ बड़ी कु भी=एक बाह ।

तरल पदार्थ मापने का सबसे छोटा माप 'चतु: षष्ठिका' (४ पल=पाव सेर)। दो चतु:षष्ठिका=एक बतीसिका (आधा सेर) । दो बतीसिका=एक सोलसिका(एक सेर)। दो सोलसिका=एक अष्ट भागिका (२ सेर)। दो अष्टभागिका=एक चतुर्भागिका (चार सेर)। दो चतुर्भागिका= अद्धमाणी(आठ सेर) दो अद्धमाणी= एक माणी (१६ सेर =२५६ पल) ।

एक पल, एक छटा क को कहा जाता है। २५६ पल की 'माणी' होती है। इससे दूध, घी, तेल आदि का माप होता है ।

(२) उन्मान प्रमाण– तराजू आदि से तोल कर वस्तु की मात्रा का ज्ञान करना उन्मान प्रमाण है। तोलने का सबसे छोटा 'बाट' अर्द्ध कर्ष होता है। दो अर्द्ध कर्ष=एक कर्ष। दो कर्ष=एक अर्द्ध पल। दो अर्द्धपल= एक पल। एक सो पाँच पल=एक तुला। दस तुला=अर्द्ध भार। दो अर्द्ध भार=एक भार। इससे गुड़ खाँड़ मिश्री, आदि द्रव्यों का वजन किया जाता है। ये माप तौल अपेक्षित क्षेत्र काल के हैं। काला तर या क्षेत्रा तर से ये माप तौल की इकाईयाँ अलग–अलग हीनाधिक भी होती है । यथा–कुछ समय पूर्व छटा क सेर मण आदि प्रचलित थे। आजकल– ग्राम, किलो, क्वि टल में वजन किया जाता है ।

(३) अवमान प्रमाण– इससे भूमि आदि का माप किया जाता है इसकी सबसे छोटी इकाई हाथ है। चार हाथ=एक धनुष। धनुष, द ड़,

युग, नालिका, अक्ष, मूसल ये सब एक ही माप के होते हैं। दस नालिका= एक रज्जू। इससे भूमि की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई व गहराई मापी जाती है। वर्तमान में 'गज–फुट' से माप किया जाता अथवा मीटर से माप किया जाता है।

(४) गणिम प्रमाण– गिनती स ख्या से किसी भी पदार्थ की मात्रा का ज्ञान करना 'गणिम प्रमाण' है। इससे रुपये पैसे स पति आदि का ए व गिनती के योग्य अन्य पदार्थो का ज्ञान किया जाता है। इसकी जघन्य इकाई एक है, फिर क्रमशः दो तीन चार आदि करोड़ पर्यंत समझ लेनी चाहिए। सूत्र में १, १०, १००, १०००, १००००, लाख, १० लाख, करोड़ ये स ख्या दी है। अधिकतम १९४ अ क प्रमाण स ख्या गणना प्रमाण में है। उसके बाद उपमा प्रमाण है।

(५) प्रतिमान प्रमाण– सोना, चा दी एव मणि–मुक्ता आदि को छोटे तुला से तोल कर मान ज्ञात किया जाता है, वह प्रतिमान प्रमाण है। गुड़, शक्कर आदि को बड़े तराजू से सेर, मण आदि में तोला जाता है और बहुमूल्य वस्तुओं को तोला मासा(रति) गू जा आदि छोटे तोलों से बाटों से तोला जाता है। यह उन्मान और प्रतिमान में अ तर समझना चाहिए।

५ गु जा(रत्ती)	=	१ कर्ममाषक (मासा)
४ का कणी	=	१ कर्ममाषक (मासा)
३ निष्पाव	=	१ कर्ममाषक (मासा)
१२ मासा	=	१ म ड्ल
४८ का कणी	=	१ म ड्ल
१६ मासा	=	१ तोला (सोना मोहर)

प्रश्न–१० : क्षेत्र प्रमाण में अ गुल का विश्लेषण किस प्रकार है ?

उत्तर– क्षेत्र प्रमाण– इसकी जघन्य इकाई 'अ गुल' है। अ गुल तीन प्रकार के होते हैं यथा–**१. आत्मा गुल–** जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उनमें जो प्रमाण युक्त पुरूष होते हैं, उनके अ गुल को आत्मा गुल कहा जाता है। प्रमाण युक्त पुरूष वह होता है जो अपने अ गुल से १०८ एक सौ आठ अ गुल अथवा ९ मुख प्रमाण होता है। एक द्रोण जितना जिनके शरीर का आयतन होता है और अर्द्ध भार प्रमाण जिनका वजन होता है। द्रौण और अर्द्धभार में करीब ६४ सेर का परिमाण होता है।

२. उत्सेधा गुल– ८ बालाग्र=एक लीख। आठ लीख=एक जूँ। आठ जूँ= एक जौ मध्य। आठ जौ मध्य=एक उत्सेधा गुल अर्थात्–८×८×८×८=४०९६ बाल(केश) का गोल भारा बनाने पर उसका जितना विस्तार (चोड़ाई–व्यास) होता है, उसे एक उत्सेधा गुल कहते हैं। यह अ गुल आधा इ च के करीब होता है ऐसा अनुमान किया जाता है। जिससे १२ इच=२४ अ गुल=१ हाथ=१ फुट होता है।

३. प्रमाणा गुल– चक्रवर्ती के का कणी रत्न के ६ तले और १२ किनारे होते हैं उसके प्रत्येक किनारे एक उत्सेधा गुल प्रमाण होते हैं। उत्सेधा गुल से हजार गुणा प्रमाणा गुल होता है। श्रमण भगवान महावीर का अ गुल उत्सेधा गुल से दुगुना होता है अर्थात् ८१९२ बाल (केश) का गोल भारा बनाने पर जितना विस्तार हो उतना भगवान महावीर स्वामी का अ गुल होता है। एव ४०९६००० बाल के गोल बनाये गये भारे का जितना विस्तार होता है उतना एक प्रमाणा गुल अर्थात् अवसर्पिणी के प्रथम चक्रवर्ती का अ गुल होता है।

योजन– १२ अ गुल=एक बिहस्ती(बेंत)। दो बेंत=हाथ। चार हाथ = धनुष। दो हजार धनुष=एक कोस। चार कोस=एक योजन। यह माप तीनों प्रकार के अ गुल में समझना चाहिए। इस प्रकार योजन पर्यंत सभी माप तीन तीन प्रकार के होते हैं। इसमें आत्मा गुल से उस काल के क्षेत्र ग्राम नगर घर आदि का माप किया जाता है। उत्सेधा गुल से चारों गति के जीवों की अवगाहना का माप कहा जाता है। प्रमाणा गुल से शास्वत पदार्थो का अर्थात् द्वीप, समुद्र, पृथ्वीपिंड़, विमान, पर्वत, कूट आदि की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई कही जाती है।

अपेक्षा से लोक में तीन प्रकर के रूपी पदार्थ है (१) मनुष्य कृत ग्राम नगर मकानादि (२) कर्म कृत–शरीर आदि (३) शाश्वत स्थान। इन तीनों का माप करने के लिए ये उपरोक्त तीन प्रकार के अ गुल से लेकर योजन पर्यंत के मापों का उपयोग होता है।

परमाणु से अ गुल का माप– सूक्ष्म परमाणु और व्यवहारिक परमाणु के भेद से परमाणु दो तरह के हैं। सूक्ष्म परमाणु अवर्ण्य है, वह अति सूक्ष्म अविभाज्य पुद्गल का अ तिम एक प्रदेश होता है उसका आदि मध्य अ त वह स्वय ही है। ऐसे अन तान त परमाणु का एक व्यवहारिक

परमाणु होता है। वह भी इतना सूक्ष्म होता है कि तलवार आदि से अविच्छेद्य होता है, अग्नि उसे जला नहीं सकती, हवा उसे उड़ा नहीं सकती है। ऐसे अन त व्यवहारिक परमाणु से माप की गणना इस प्रकार होती है-

अन त व्यवहार परमाणु	= १ उत्श्लक्षण-श्लक्षणिका होती है ।
८ उत्श्लक्षणश्लक्षणिका	= १ श्लक्षणश्लक्षणिका
८ श्लक्षणश्लक्षणिका	= १ ऊर्ध्व रेणु
८ ऊर्ध्व रेणु	= १ त्रस रेणु
८ त्रस रेणु	= १ रथ रेणु
८ रथ रेणु	= १ बाल (देवकुरू मनुष्य का)
८ बाल (देवकुरु)	= १ बाल (हरिवर्ष मनुष्य का)
८ बाल (हरिवर्ष)	= १ बाल (हेमवत मनुष्य का)
८ बाल (हेमवत)	= १ बाल (महाविदेह क्षेत्र के मनुष्य का)
८ बाल (महाविदेह)	= १ बाल (भरत क्षेत्र के मनुष्य का)
८ बाल	= १ लीख
८ लीख	= १ जूँ
८ जूँ	= १ जौ मध्य
८ जौ मध्य	= १ उत्सेधा गुल
१२ अ गुल=१ बेंत, २ बेंत=हाथ, २ हाथ=१ कुक्षी, २ कुक्षी=१धनुष ।	

प्रश्न-११ : काल प्रमाण का स्वरूप किस प्रकार स्पष्ट किया है ?

उत्तर- काल प्रमाण- काल की जघन्य इकाई 'समय' यह अति सूक्ष्म एव अविभाज्य है। आँख के पलक पड़ने जितने समय में भी अस ख्य समय व्यतीत हो जाते हैं। ऐसे अस ख्य समय की एक आवलिका होती है। स ख्याता आवलिका का एक श्वासोश्वास होता है। वृद्धावस्था एव व्याधिरहित स्वस्थ पुरुष का श्वासोश्वास यहाँ प्रमाणभूत माना गया है। श्वासोश्वास को 'प्राण' कहा गया है।

७ प्राण = एक स्तोक। सात स्तोक = एक लव। ७७ लव = एक मुहूर्त। १ मुहूर्त = ३७७३ श्वासोश्वास = प्राण होते हैं। १ मुहूर्त= १,६७,७७,२१६ आवलिका। १ प्राण=४४४६ साधिक आवलिका। १ सेक ड़=५८२५-१९/४५ आवलिका। १ प्राण=२८८०/३७७३ सेक ड़

होते हैं। १ मुहूर्त=२८८० सेक ड़ ।१ मुहूर्त=४८ मिनिट। एक मिनिट= ६० सैक ड़ ।३० मुहूर्त=एक दिन। ८४ लाख वर्ष=एक पूर्वांग ।

८४ लाख पूर्वांग- एक पूर्व। आगे की प्रत्येक काल स ज्ञा एक दूसरे से ८४ लाख गुणी होती है। अ त में शीर्ष प्रहेलिका ग से शीर्ष प्रहेलिका ८४ लाख गुणी होती है। इतनी स ख्या तक गणित का विषय माना गया है। इसके आगे की स ख्या उपमा द्वारा कही जाती है। उत्कृष्ट स ख्याता की स ख्या उपमा द्वारा पूर्ण होती है। उस उत्कृष्ट स ख्याता में एक अधिक होते ही जघन्य अस ख्याता होता है।

उपमा द्वारा काल गणना प्रमाण- (१) पल्योपम और सागरोपम रूप दो प्रकार की उपमा से काल गणना की जाती है। पल्योपम के गणना की उपमा समझ लेने के बाद सागरोपम की गणना सहज समझ में आ जाती है। क्यों कि किसी भी प्रकार के पल्योपम से उसका सागरोपम दस क्रोड़ाक्रोड़ गुना होता है। अतः आगे केवल पल्योपम का वर्णन किया जाता है। **(२)** उपमा गणना का पल्योपम तीन प्रकार का होता है। १.उद्धार पल्योपम २.अद्धा पल्योपम ३.क्षेत्र पल्योपम। इन तीनों में सूक्ष्म और व्यवहार(बादर) दो-दो भेद होते हैं। **(३)**१.'उद्धार पल्योपम' की उपमा में बालाग्र एक एक समय में निकाले जाते हैं २.'अद्धा पल्योपम' की उपमा में बालाग्र १०० वर्ष से निकाले जाते हैं और ३.'क्षेत्र पल्योपम'में बालाग्रो के आकाश प्रदेश का हिसाब होता है। **(४)** 'उद्धार बादर पल्योपम' में एक दिन से सात दिन के युगलियों के बाल अ खड़ भरे जाते और निकाले जाते हैं जबकि 'सूक्ष्म' में उस एक एक बाल के अस ख्य ख ड़ करके भरे जाते हैं और निकाले जाते हैं। सूक्ष्म पनक जीवों की अवगाहना से अस ख्यगुण और निर्मल आँखों से जो छोटी से छोटी वस्तु देखी जा सकती है उससे अस ख्यातवाँ भाग हो, ऐसे अस ख्य ख ड़ बालाग्र के समझने चाहिए। **(५)** ऐसा ही अ तर बादर 'अद्धा पल्योपम' और सूक्ष्म अद्धा पल्योपम में समझ लेना चाहिए। **(६)** बादर 'क्षेत्र पल्योपम' में अख ड़ बालाग्रों के अवगाहन किए आकाश प्रदेशों का हिसाब होता है और सूक्ष्म में अस ख्य ख ड़ किए गये बालाग्रों के अवगाढ़(अवगाहन किए) और अनवगाढ़ दोनों प्रकार के अर्थात् पल्य क्षेत्र के समस्त आकाश प्रदेश गिने जाते हैं।**(७)** तीनों प्रकार के

बादर(व्यवहार) पल्योपम केवल सूक्ष्म को समझने मात्र के लिए है और लोक में उसका कोई उपयोग नहीं होता है ।

(८) सूक्ष्म उद्धार पल्योपम से द्वीप समुद्रों का माप होता है अर्थात् ढ़ाई उद्धार सागरोपम के जितने समय होते हैं उतने ही लोक में द्वीप समुद्र हैं। (९) सूक्ष्म अद्धा पल्योपम सागरोपम से चारों गति के जीवों की उम्र का कथन किया जाता है। (१०) सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम से दृष्टिवाद अ ग सूत्र में वर्णित द्रव्यों का माप किया जाता है ।

पल्य की उपमा– पल्य–लम्बाई चाड़ाई ऊँचाई इन तीनों में समान, धान्य आदि मापने का एक पात्र होता है। यहाँ स्वीकार किए जाने वाले पात्र को भी तीनों की समानता के कारण पल्य कहा गया है।

उत्सेधा गुल से एक योजन लम्बा, चौड़ा गहरा गोलाकार पल्य हो जिसकी साधिक तीन योजन की परिधि हो। उसमें उत्कृष्ट सात दिन के नवजात शिशुओं के बाल ठू स ठू स कर–खचाखच सघन ऐसे भर दिये जाय कि र च मात्र भी रिक्त स्थान (स्थूल दृष्टि की अपेक्षा) न रहने पावे। ऐसे भरे उन बालों को समय समय में या सौ–सौ वर्षो में इत्यादि उपरोक्त भिन्न–भिन्न प्रकारों से निकाला जाता है। सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम के वर्णन से यह भी स्पष्ट होता है कि ऐसे खचाखच भरे स्थान में भी सूक्ष्म दृष्टि से अनेक आकाश प्रदेश रिक्त रह जाते हैं, उसे एक दृष्टा त द्वारा समझना चाहिए। यथा–

एक बड़े प्रकोष्ठ में कुष्मा ड़ फल(कोल्हा फल) खचाखच भर दिए। उसमें हिला हिला कर बिजोरा फल भर दिए, फिर हिलाहिला कर बिल्व फल, यों क्रमशः छोटे फल आ वला, बोर, चणा, मू ग, सरसों भरे गये तो वे भी उसमें समा गये। उसके बाद भी जगह खाली रह जाती है। फिर भी उसमें हिला हिला कर बालू रेत भरी जाय तो उसका भी समावेश हो जायेगा, उसके बाद उसमें पानी भरा जाय तो उसका भी समावेश हो जायेगा। जिस प्रकार सघन सागौन की लकड़ी पूर्ण ठोस है, हमें उसमें कहीं पोल नहीं दिखती है, फिर भी बारीक कील उसमें लगाई जाय तो उसको जगह मिल जाती है। जैसे इनमें सघन दिखते हुए भी आकाश प्रदेश अनवगाढ़ रहते हैं, वैसे ही एक योजन के उस पल्य में बालों से अनवगाढ़ आकाश प्रदेश रह जाते हैं ।

द्रव्य– अरूपी अजीव द्रव्य दस है। रूपी अजीव द्रव्य अन त है । परमाणु भी अन त है यावत् अन त प्रदेशी स्क ध भी अन त है। जीव द्रव्य अन त है। नारकी, देव, मनुष्य, अस ख्य–अस ख्य है, तिर्यंच अन त है। तेवीस द ड़क के जीव अस ख्य है, वनस्पति के जीव अन त है, सिद्ध अन त है। स सारी जीवों में प्रत्येक जीव के शरीर होते हैं वे शरीर पाँच है, यथा– औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। इनमें से नारकी देवता में तीन–तीन शरीर होते हैं। मनुष्य में पाँच और तिर्यंच में चार शरीर होते हैं। इन सभी शरीरों की स ख्या भी जीव द्रव्यों की स ख्या के समान २३ द ड़क में अस ख्य और वनस्पति में अन त होती है ।

प्रश्न–१२ : भाव प्रमाण के तीन भेद में गुण प्रमाण का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– भाव प्रमाण– इसके तीन भेद है– १. गुण २. नय ३. स ख्या। गुण के दो भेद जीव और अजीव। अजीव के वर्णादि २५ भेद है और जीव गुण प्रमाण के चार भेद है। यथा– १. प्रत्यक्ष २. अनुमान ३. उपमान ४. आगम ।

प्रत्यक्ष– ५ इन्द्रिय, अवधि, मनःपर्यव, केवल ज्ञान ये प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अनुमान– अनुमान प्रमाण को समझने के लिए उसके पाँच अवयव जानने चाहिए।इनसे अनुमान प्रमाण सुस्पष्ट होता है। कभी इनमें दो अवयवों से विषय स्पष्ट होता है अर्थात् अनुमान सिद्ध हो जाता है और कभी पाँचों अवयवों से। यथा– रत्न मह गे होते हैं जैसे कि मूँगा, माणक आदि। इसमें दो अवयव प्रयुक्त है प्रतिज्ञा और उदाहरण। पाँच अवयव का उदाहरण– १. यहाँ अग्नि है २. क्यों कि धूआँ दिख रहा है ३. जहाँ जहाँ धुआँ होता है वहाँ अग्नि होती है ४. यथा रसोई घर ५. इसलिये यहाँ भी धुआँ होने से अग्नि है ।

(१) प्रथम प्रतिज्ञा की जाती है जिसमें साध्य का कथन होता है फिर (२) उसका तर्क हेतु कारण मुख्य आधार कहा जाता है (३) उस हेतु के लिए व्याप्ति दी जाती है फिर (४) उस हेतु वाला सरीखा उदाहरण दिया जाता है (५) फिर उसका उपस हार कर अपना साध्य स्थिर किया जाता है। पाँच अवयव – १. साध्य २. हेतु ३. व्याप्ति ४. उदाहरण ५. निगम(उपस हार) ।

ये अनुमान भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल स ब धी होते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल दोनों होते हैं। कुछ अनुमानों के उदाहरण इस प्रकार है– (१) यह लड़का मेरा ही है क्यों कि इसके हाथ में मेरे द्वारा किया गया यह धाव का चिन्ह है। (२) परिचित किसी की आवाज को सुनकर जानना कि यह अमुक व्यक्ति की या अमुक जानवर की आवाज है । (३) ग ध, स्वाद, स्पर्श से क्रमशः जानना कि यह अमुक इत्र, फूल है। अमुक खाद्य पदार्थ या मिश्रित वस्तु है एव अमुक जाति का आसन है । (४) सि ग से भैंस को, शिखा से कूकड़े को, पू छ से ब दर को, प खों से मोर को अनुमान करके सही जान लिया जाता है ।(५) धुएँ से अग्नि का, बक पक्षी से पानी का, अभ्रविकार से वृष्टि का अनुमान किया जाता है ।(६) इ गित–आकार, नेत्र–विकार से भावों का, आशय का, अनुमान कर लिया जाता है।(७) एक सिक्के के अनुभव से अनेक सिक्कों को पहिचानना, एक चावल से अनेक चावल सीजने का अनुमान करना, एक साधु को देखकर अन्य सभी उस वेश वालों को जान लेना कि ये उस मत के साधु हैं । (८) किसी भी एक पदार्थ का इतना अति परिचय ज्ञान हो जाय कि एक सरीखे अनेक पदार्थों में उसे रख दे तो भी उसे किसी विशेषता के आधार से अलग से पहिचान लेना, यह विशेष दृष्ट साधर्म्य अनुमान है। (९) वनों में हरी घास प्रचुर देखकर सुवृष्टि होने का अनुमान करना इसके विपरीत कुवृष्टि का अनुमान करना। (१०) घरों में प्रचुर खाद्यसामग्री देखकर अनुमान करना कि यहाँ अभी सुभिक्ष है। (११) हवा, बादल या अन्य लक्षण देखकर अनुमान करना कि यहाँ शीघ्र ही सुवृष्टि होगी अथवा इसके विपरीत लक्षण दिखे तो अनावृष्टि का अनुमान होना ।

उपमान प्रमाण– किसी भी पदार्थ के अज्ञात स्वरूप को जानने के लिये ज्ञात वस्तु की उपमा देकर समझाया जाता है। वह उपमा वाली वस्तु अपेक्षित किसी एक गुण से या अनेक गुणों से समान हो सकती है। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की उपमाएँ होती है। यथा– (१) सूर्य जैसे ही दीपक या जुगनू (प्रकाश की अपेक्षा) (२) जैसी गाय होती है वैसा ही गवय(नील गाय) होती है (३) जैसा चितकबरी गाय का बछड़ा है वैसा सफेद गाय का बछड़ा नहीं है (४)जैसा वायस काला है, वैसी पायस–खीर नहीं है ।

आगम प्रमाण– लौकिक और लोकोत्तर के भेद से आगम दो प्रकार का है। सुत्तागम, अर्थागम, तदुभयागम की अपेक्षा तीन प्रकार का है। आत्मागम, अन तरागम और पर परागम के भेद से भी आगम तीन प्रकार का होता है । महाभारत, रामायण यावत् चार वेद सा गोपा ग ये लौकिक आगम है। १२ अ ग एव अ गबाह्य कालिक उत्कालिक शास्त्र लोकोत्तर आगम है ।तीर्थंकरों के अर्थागम आत्मागम है। गणधरों के सूत्र आत्मागम है, अर्थ अनन्तरागम है । गणधर–शिष्यों के सूत्र अनन्तरागम है अर्थ पर परागम है। शेष शिष्यानुशिष्यों के सूत्र अर्थ दोनों पर परागम है। प्राचीन काल में धर्म शास्त्र रूप में मान्य अपने अपने आगम साहित्य क ठोपक ठ प्राप्त करके स्मरण रखे जाते थे। सुनकर प्राप्त किए होने से वे श्रुत कहे जाते थे। आगम शब्द भी श्रुत के अर्थ का वाचक है क्यों कि आगच्छतीति आगम–गुरू पर परा से जो चला आ रहा है, वह आगम है अथवा जीवादि पदार्थो का भलीभाँति ज्ञान जिससे हो वह आगम अथवा वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी आप्त पुरूषों द्वारा प्रणीत श्रुत 'आगम' कहा जाता है। लोक में जो प्रसिद्धि प्राप्त पुरूष हैं, उनके द्वारा बनाये गये श्रुत **लौकिक आगम** है और गुण स पन्न आप्त पुरूषों द्वारा प्ररूपित श्रुत **लोकोत्तर आगम** कहा जाता है ।

प्रश्न–१३ : नय भाव प्रमाण और स ख्या भाव प्रमाण के भेद–प्रभेद और वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– नय प्रमाण– भिन्न–भिन्न अपेक्षा से एक देश या अनेक देश की विवक्षा से वस्तु तत्व का जो बोध किया जाता है या आशय समझाया जाता है वह नय प्रमाण है। यह सात प्रकार का है। विशेष विस्तृत वर्णन चौथे अनुयोग द्वार में आगे देखें।

स ख्या प्रमाण– आठ भेदों की विवक्षा से स ख्या प्रमाण का कथन किया जाता है इसका आगमकि शब्द 'स खप्पमाण' है। अतः **सख** शब्द को अपेक्षित करके भी कथन किया गया है । १. नाम २. स्थापना ३. द्रव्य ४. उपमा ५. परिमाण ६. जाणणा ७. गणना ८. भाव स खा ।

नाम स्थापना– किसी का 'स ख' नाम रख दिया हो वह नाम 'स ख' है अथवा किसी भी रूप में 'यह स ख' है ऐसी स्थापना, कल्पना या आरोप कर दिया हो, वह 'स्थापना स ख' है ।

द्रव्य स ख (स ख्या)- (१) जिसने स ख(स ख्या) को भलीभाँति सीख लिया है परन्तु उसमें अनुप्रेक्षा उपयोग नहीं है वह द्रव्य स ख (स ख्या) है।(२) स ख के ज्ञाता का भूत भविष्य का शरीर द्रव्य स ख (स ख्या) है। (३) जो अगले अन तर भव में स ख (बेइ द्रिय) होने वाला है आयु ब ध नहीं किया है वह एक भविक स ख है। (४) जिसने 'स ख' होने का आयु ब ध कर लिया है वह बद्धायु स ख है। (५) जो 'स ख' भव में जाने के लिए अभिमुख है, आयु समाप्त होने वाला है या वाटे वहेता में है, यह अभिमुख स ख है। (६) एक भविक स ख की स्थिति- जघन्य अ तमुहूर्त उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व होती है। बद्धायुष्क स ख की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट करोड़ पूर्व का तृतीय भाग। अभिमुख स ख की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त की होती ।

उपमा- सत् असत् पदार्थो से सत् असत् वस्तु व्यक्ति को उपमित किया जा सकता है यथा- तीर्थकरों के वक्षस्थल को कपाट की उपमा देना, आयुष्य को पल्योपम सागरोपम द्वारा बताना। खरविशाण की उपमा, पत्ते एव किशलय में वार्ता करने की कल्पना इत्यादि ।**परिमाण**- श्रुत के पर्यव, अक्षर, पद, गाथा, वेष्टक, श्लोक प्रमाण का निरूपण करना 'परिमाण' स ख का कथन है। **जाणणा**- शब्द को जानने वाला शाब्दिक, वैसे ही गणितज्ञ, कालज्ञ, वैद्यक, आदि यह 'ज्ञान स ख्या' के उदाहरण है। **गणणा स ख्या**- इसके तीन भेद है- १. स ख्यात, २. अस ख्यात, ३. अन त । स ख्यात के तीन भेद है- १. जघन्य, २. मध्यम, ३. उत्कृष्ट।

अस ख्यात के ९ भेद है- (१-३) जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट परित्त-अस ख्यात (४-६) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट-युक्त अस ख्यात (७-९) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट अस ख्यातास ख्यात ।

अन त के आठ भेद-(१-३) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट परितान त (४-६) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट युक्तान त (७-८) जघन्य और मध्यम अन तान त।

स ख्याता- जघन्य स ख्याता दो का अ क है। मध्य में सभी स ख्याएँ है अर्थात् शीर्ष प्रहेलिका तक तो है ही, आगे भी असत्कल्पना से उपमा द्वारा बताई जाने वाली समस्त स ख्या भी मध्यम स ख्यात है। अर्थात् जब तक उत्कृष्ट स ख्यात की स ख्या न आवे वहाँ तक सब मध्यम स ख्यात है। उत्कृष्ट स ख्यात की उपमा इस प्रकार है-

उत्कृष्ट स ख्याता- उत्कृष्ट स ख्याता को चार पल्य की कल्पना करके समझाया जाता है। यथा- १. अनवस्थित पल्य २. शलाका पल्य ३. प्रतिशलाका पल्य ४. महाशलाका पल्य। चारों पल्य की लम्बाई चौड़ाई जम्बूद्वीप प्रमाण होती है। ऊँचाई १००८-१/२ योजन (एक हजार साढ़े आठ योजन)होती है तीन पल्य स्थित रहते हैं। प्रथम अनवस्थित पल्य की लम्बाई चौड़ाई बदलती है, ऊँचाई वही रहती है ।

शलाका पल्य भरना- अनवस्थित पल्य में सरसों के दाने सिखा पर्यन्त भर कर एक एक दाना एक-एक द्वीप समुद्र में ड़ालें। जहाँ अनवस्थित पल्य खाली हो जावे, उस द्वीप समुद्र जितना लम्बा चौड़ा अनवस्थित पल्य बनाया जाय और उसे भर कर यहाँ से आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक सरसों का दाना ड़ालें जहाँ वह खाली हो जाय, वहाँ उस द्वीप समुद्र जितना लम्बा चौड़ा अनवस्थित पल्य को बना लेना। पहला उत्तर अनवस्थित पल्य खाली होने की साक्षी रूप एक दाना 'शलाका पल्य' में ड़ालना। इसी क्रम से अनवस्थित पल्य बनाते रहना और आगे आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक दाना ड़ालते रहना। अनवस्थित पल्य खाली होवे ज्यों ही एक दाना 'शलाका पल्य' में ड़ालते रहना ।

प्रतिशलाका पल्य भरना- जहाँ शलाका पल्य पूरा भर जाय वहाँ अनवस्थित पल्य उतना लम्बा चौड़ा बनाकर भर कर रख देना फिर शलाका पल्य को उठाकर आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक दाना ड़ाल कर खाली करना और अन्त में साक्षी रूप एक दाना प्रतिशलाका पल्य में ड़ालना। 'शलाका पल्य' को खाली करके रख देना। अब पुन: उस भरे हुए अनवस्थित पल्य को उठाना और आगे के नये द्वीप समुद्र से दाना ड़ालना प्रार भ करना। खाली होने पर एक दाना 'शालाका पल्य' में ड़ालना फिर उस द्वीप समुद्र जितना बड़ा अनवस्थित पल्य बनाना, भरना और खाली करना और एक दाना 'शलाका पल्य' में ड़ालना। यों करते-करते जब शलाका पल्य भर जाएगा तब उसे भी अगले द्वीप समुद्रों में एक-एक दाना ड़ाल कर खाली करना और एक दाना फिर 'प्रति शलाका पल्य' में ड़ालना। इसी विधि से करते हुए एक समय 'प्रतिशलाका पल्य' भी भर जाएगा ।

महाशलाका पल्य भरना- स पूर्ण भरे उस 'प्रतिशलाका पल्य' को

उठाकर आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक दाना ड़ालना और खाली होने पर उसे खाली रख देना एक दाना उसके साक्षी रुप 'महाशलाका पल्य' में ड़ाल देना। इस विधि वे अनवस्थित पल्य से शलाका पल्य भरना, शलाका पल्य से प्रतिशलाका पल्य भरना फिर एक दाना 'महाशलाका पल्य' में ड़ालना। यों करते-करते एक समय 'महाशलाका पल्य' भी भर जाएगा। फिर क्रमशः प्रतिशलाका और शलाका पल्य भी अर्थात् तीनों अवस्थित पल्य पूर्ण भर जाय वहाँ उस द्वीप समुद्र जितना अनवस्थित पल्य को बना कर सरसों के दाने से भर लेना।

चारों पल्य में भरे हुए दाने और अभी तक द्वीप समुद्रों में ड़ाले गये सारे दानों को मिलाने से जो स ख्या बनती है उसमें से एक कम करने पर जो स ख्या आती है उसे ही उत्कृष्ट स ख्याता समझना चाहिए।

उत्कृष्ट स ख्याता का परिमाण स पूर्ण हुआ। प्रचलित भाषा से यह 'ड़ाला-पाला का अधिकार' पूर्ण हुआ। ***(उत्कृष्ट स ख्याता को समझने के लिये द्वीप समुद्रों में सरसों के दाने डालने रूप डालापाला का वर्णन किया गया है। द्वीपसमुद्रो तो अस ख्य है और अस ख्य में भी मध्यम अस ख्याता ढाई तीन द्वार सागरोपम के समय जितने है अर्थात् इस उत्कृष्ट स ख्याता से द्वीपसमुद्रों की स ख्या का स ब ध नहीं है।)***

अस ख्याता का प्रमाण- **(१)** जघन्य परित्ता-अस ख्याता-उत्कृष्ट स ख्याता से एक अधिक। **(२)** मध्यम परित्ता अस ख्याता-जघन्य परित्ता अस ख्याता एव उत्कृष्ट परित्ता अस ख्याता के बीच की सभी स ख्या। **(३)** उत्कृष्ट परित्ता अस ख्याता-जघन्य परित्ता अस ख्यात की स ख्या को उसी स ख्या से और उतने ही बार गुणा करने पर जो स ख्या आवे उसमें एक कम करने पर उत्कृष्ट परित्ता अस ख्यात होता है। यथा- पाँच को पाँच से पाँच बार गुणा करके एक घटाने से ३१२४ स ख्या आती है। (५ × ५ × ५ × ५ × ५=३१२५-१=३१२४)। **(४)** जघन्य युक्ता अस ख्याता-उत्कृष्ट परित्ता अस ख्याता में एक जोड़ने पर। **(५)** मध्यम युक्ता अस ख्याता-जघन्य और उत्कृष्ट युक्ता अस ख्याता के बीच की सभी स ख्या। **(६)** उत्कृष्ट युक्ता अस ख्याता-जघन्य युक्ता अस ख्याता की स ख्या को उसी स ख्या से उतनी बार गुणा करके एक घटाने पर जो राशि आवे, वह उत्कृष्ट युक्ता अस ख्यात है। **(७)** जघन्य

अस ख्याता अस ख्यात-उत्कृष्ट युक्ता अस ख्यात में एक जोड़ने पर। **(८)** मध्यम अस ख्याता अस ख्यात-जघन्य और उत्कृष्ट अस ख्याता अस ख्यात के बीच की सभी स ख्या। **(९)** उत्कृष्ट अस ख्याता अस ख्यात-जघन्य अस ख्याता अस ख्यात की स ख्या को उसी स ख्या से उतनी ही बार गुणा करके एक घटाने पर जो राशि आवे वह उत्कृष्ट अस ख्याता अस ख्यात है।

अन त का प्रमाण- **१.** जघन्य परित्ता अन त- उत्कृष्ट अस ख्याता अस ख्यात से एक अधिक। इस प्रकार अस ख्यात के ९ भेद जो ऊपर बताए गये हैं उसी के अनुसार अन त के भी आठ भेद समझ लेने चाहिए। उनके नाम **२.** मध्यम परित्ता अन त **३.** उत्कृष्ट परित्ता अन त **४.** जघन्य युक्ता अन त **५.** मध्यम युक्ता अन त **६.** उत्कृष्ट युक्ता अन त **७.** जघन्य अन ता अन त **८.** मध्यम अन ता अन त। अन त का नौवाँ भेद नहीं होता है अर्थात् लोक की अधिकतम द्रव्य गुण या पर्याय की समस्त स ख्या आठवें अन त में ही समाविष्ट हो जाती है। अतः नौवें भेद की आवश्यकता भी नहीं है।

भाव स ख्या-जो जीव बेइन्द्रिय स ख के भव में है और वहाँ के आयुष्य आदि कर्म का भोग कर रहे हैं वे भाव स ख है। उपक्रम द्वार का तीसरा प्रमाण द्वार सम्पूर्ण हुआ।

प्रश्न-१४ : उपक्रम के चौथे, पाँचवें, छट्ठे भेद वक्तव्यता आदि का क्या स्वरूप है ?

उत्तर- वक्तव्यता-अध्ययन आदि के प्रत्येक अवयव का विवेचन करना, इसमें अपने जिनानुमत सिद्धा त का कथन करना स्वमत वक्तव्यता है एव अन्य मत के सिद्धा तों का कथन आदि करना पर मत वक्तव्यता है। यह कथन ६ विशेषणों वाला हो सकता है। (१) सामान्य अर्थ व्याख्यान (२) प्रास गिक विषय का लक्षण आदि युक्त कथन करना (३) कुछ विस्तृत प्ररूपण (४) दृष्टा त द्वारा विषय को स्पष्ट समझाना (५) दृष्टा त को पुनः घटित करना (६) उपस हार करना अर्थात् अ त में विवेचन का जो आशय है, उस सिद्धा त सार को पुनः स्थापित करना।

अर्थाधिकार- जिस अध्ययन का जो वर्ण्य विषय है उसके अर्थ का कथन करना अर्थाधिकार है, यथा- आवश्यक सूत्र के प्रथमादि अध्ययन

का अर्थ बताना। सामायिक-सावद्ययोगों का त्याग करना। चतुर्विंशतिस्तव-चौबीस तीर्थंकरों का गुणग्राम करना। इत्यादि अर्थाधिकार है ।

समवतार- सभी द्रव्य आत्मभाव की अपेक्षा खुद के अस्तित्व में कहे हुए हैं, यह आत्म समवतार है। आधार आश्रय की अपेक्षा पर वस्तु में समवसृत होने से उनका पर समवतार भी होता है, यथा- कुंड़े में बोर, घर में स्तम्भ। १०० ग्राम का माप आत्मभाव से स्व में अवतरित है एव पर समवतार की अपेक्षा २०० ग्राम से भी रहा हुआ है। जम्बूद्वीप आत्मभाव से स्व में अवतरित है एव पर समवतार की अपेक्षा तिरछा लोक में रहा हुआ है। ऐसे ही काल के समय, आवलिका, मुहूर्त, वर्ष आदि के लिये समवतार समझ लेना चाहिये। इसी तरह क्रोधादि जीवत्वादि का समवतार समावेश भी समझ लेना चाहिये। यह छह प्रतिद्वारों युक्त अनुयोग का प्रथम उपक्रम द्वार स पूर्ण हुआ ।

प्रश्न-१५ : अनुयोग का दूसरा निक्षेपद्वार का स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से किस प्रकार है ?

उत्तर- निक्षेपद्वार- इष्ट वस्तु का निर्णय करने के लिये अप्रास गिक का निराकरण कर प्रस ग प्राप्त का विधान करना निक्षेप है। आवश्यक सूत्र के निक्षेप के बाद **अध्ययन** के निक्षेप का प्रस ग होने से यहाँ सर्व प्रथम (१) अध्ययन का निक्षेप किया जाता है फिर (२) अक्षीण (३) आय, और (४) क्षपणा का निक्षेप है। निक्षेप कम से कम चार द्वारों से किया जाता है, अधिक करना ऐच्छिक प्रस गानुसार होता है। **अध्ययन**- नाम, स्थापना एव द्रव्य अध्ययन का कथन पूर्व में वर्णित आवश्यक आदि के समान है। **भाव**- अध्ययन का ज्ञान एव उनमें उपयुक्त होने पर भाव अध्ययन है। सामायिक आदि अध्ययन में चित्त लगाना। नवीन कर्मों का ब ध नहीं करना, पूर्वोपार्जित कर्मो का क्षय करना यह भाव क्रियात्मक अध्ययन है। **अक्षीण**- नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चार भेदों से इसका निक्षेप पूर्ववत् समझना चाहिये। **भाव अक्षीण**- जो ज्ञाता उपयोग युक्त हो वह भाव अक्षीण है और जिस तरह दीपक दूसरे दीपक को जलाते हुए भी खुद क्षीण नहीं होता है, वैसे ही आचार्य आदि दूसरों को ज्ञानादि देते हुए भी खुद के ज्ञान में कम नहीं होते हैं, वे भाव अक्षीण है। **आय**- इसका भी चार भेदों

से निक्षेप है। नाम स्थापना पूर्ववत् है। पशु-पक्षी, धन-सम्पत्ति, आभूषण-अल कार युक्त आश्रित व्यक्ति लौकिक द्रव्य आय है। शिष्य उपकरण भी द्रव्य आय है। **भाव आय**- ज्ञान, श्रुत, ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की प्राप्ति एव अभिवृद्धि। **क्षपणा**- चार द्वारों से इसका निक्षेप होता है। कर्मों का विशेष विशेषतर क्षय करना भाव क्षपणा है। कषायों का क्षय करना भी प्रशस्त भाव क्षपणा है और ज्ञानादि को घटाना अप्रशस्त भाव क्षपणा है। सामायिक अध्ययन का प्रस ग होने से अब सामायिक का निक्षेप किया जाता है ।

सामायिक निक्षेप प्ररूपणा- प्रथम अध्ययन का नाम सामायिक है, इसलिये नाम निष्पन्न निक्षेप के अधिकार में सामायिक का प्ररूपण है। नाम स्थापना एव द्रव्य तीन निक्षेप का वर्णन पूर्ववत् है ।

भावनिक्षेप-(१) स्वरूप-जिसकी आत्मा तप स यम नियम में लीन हो, जो त्रस स्थावर सभी प्राणियों के प्रति समभाव धारण करे अर्थात् सदा उनका स रक्षण करे किन्तु हनन न करे। उसी को भाव सामायिक होती है, ऐसा सर्वज्ञों का कथन है ।

(२) श्रमण- सामायिक(आजीवन)वाला श्रमण होता है । अतः सामायिकवान श्रमण का कथन किया जाता है जो अपने समान ही दूसरों को भी दुःख अप्रिय है, ऐसा जानकर, अनुभव करके, किसी भी जीव को दुःख नहीं पहुँचावे, दुःख देने वालों का अनुमोदन भी नहीं करे, किसी भी प्राणी के प्रति रागद्वेष भाव नहीं रखे, सभी पर **सम** मन रखे, वह **श्रमण** कहा जाता है ।

(३) उपमायें-सामायिकवान जो श्रमण होता है वह महान आत्मा होता है, उसकी महानता प्रकट करने के लिये निम्न उपमायें है- (१) सर्पवत् पर-गृह में रहने वाला। (२) पर्वत सम परीषह उपसर्गों को सहने में अड़ोल। (३) अग्नि सम तेजवान अथवा ज्ञानादि से अतृप्त। (४) समुद्र के समान मर्यादा में रहने वाला, ग भीर, गुणरत्नों से परिपूर्ण। (५) आकाश के समान निराल बन-जिसे किसी के आश्रय का प्रतिब ध नहीं है। (६) वृक्ष के समान काटने या पूजने में सम परिणाम अर्थात् निंदा, प्रश सा, मान-अपमान में समवृत्ति वाले। (७) भ्रमर के समान अनेक घरों से आहार प्राप्त करने वाला। (८) मृग के समान सदा स सार भ्रमण

रूप कर्मब ध से भयभीत। (९) पृथ्वी सम सभी दु:ख कष्ट झेलने में समर्थ, सक्षम। (१०) जल कमलवत् भोगों से निर्लिप्त। (११) सूर्य के समान जगत प्राणियों को प्रतिपूर्ण ज्ञान प्रकाश देने वाला। (१२) पवन-हवा के समान अप्रतिहत बेरोकटोक मोक्ष मार्ग में गति करने वाला।

इस प्रकार सुमन वाला और पाप मन से रहित, सभी परिस्थितियों में सदा सम रहने वाला, विषम नहीं बनने वाला अर्थात् सदा ग भीर शा त और प्रसन्न मन रहने वाला **श्रमण** होता है, वही **भाव सामयिकवान** होता है। यह दूसरा निक्षेप द्वार स पूर्ण हुआ।

प्रश्न-१६ : चार निक्षेपों का रहस्य क्या है और उसका व्यवहार उपयोग क्या है ?

उत्तर- इस निक्षेपद्वार में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार द्वारों से वस्तु का कथन किया जाता है। फिर भी नाम स्थापना केवल ज्ञेय है, उससे वस्तु की पूर्ति नहीं होती है। तीसरे द्रव्य निक्षेप में उस वस्तु का कुछ अ श अस्तित्व में होता है किन्तु उससे भी उस वस्तु की पूर्ण प्रयोजनसिद्धि नहीं होती है। भावनिक्षेप में कहा गया पदार्थ वास्तव में परिपूर्ण अस्तित्व वाला होता है, उसी से उस पदार्थ स ब धी प्रयोजन की सिद्धि होती है। यथा- (१) किसी का नाम घेवर या रोटी रख दिया है तो उससे क्षुधा पूर्ति आदि नहीं होती (२) किसी वस्तु में घेवर या रोटी जैसा आकार कल्पित कर उसे "यह घेवर है" या "यह रोटी है" ऐसी कल्पना-स्थापना कर दी तो भी क्षुधा शा ति आदि उससे भी स भव नहीं है। (३) जो रोटी या घेवर बनने वाला गेहुँ का आटा या मैदा पड़ा है अथवा जो एक रोटी या घेवर एक किलो पानी में घोल कर विनष्ट कर दिये गये हैं उस आटे से और पानी के घोल से भी रोटी या घेवर जैसी तृप्ति नहीं हो सकती है (४) शुद्ध परिपूर्ण बनी हुई रोटी, घेवर ही वास्तविक रोटी एव घेवर है। उसी से क्षुधा शा ति एव तृप्ति स भव है। इसलिये चारों निक्षेप में कहे गये सभी पदार्थ को एक सरीखा करने की नासमझ नहीं करके, भाव निक्षेप का महत्व अलग ही समझना चाहिये एव द्रव्य निक्षेप का किंचित अ श में महत्व होता है और नाम स्थापना निक्षेप प्रायः आरोपित कल्पित ही होते हैं। उन्हें भाव निक्षेप के तुल्य नहीं करना चाहिये।

इससे यह स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति या महान आत्मा का फोटू, तस्वीर, मूर्ति आदि में उस गुणवान व्यक्ति के योग्य वस्त्राभूषण, स्नान, श्रृ गार, आहार एव सत्कार सम्मान आदि का व्यवहार करना, निक्षेप की अवहेलना एव दुरूपयोग करना ही समझना चाहिये तथा ऐसा करने की प्रेरणा या प्ररूपण करना भी सूत्र विरुद्ध प्ररूपण करना समझना चाहिये।

प्रश्न-१७ : अनुयोग का तीसरा अनुगमद्वार किस प्रकार वर्णित है?

उत्तर- पदच्छेद आदि करके सूत्र की सामान्य व्याख्या करना एव विस्तार से सूत्र के आशय को सरल एव स्पष्ट करना **अनुगम** है। (१) अस्खलित शुद्धाक्षर युक्त उच्चारण कराना (२) सुब त, तिङ् त पदों का ज्ञान कराना (३) उन शब्दों के अर्थ बताना (४) समास ज्ञान, स धिज्ञान द्वारा पदविग्रह करना (५) श का उपस्थित करके अर्थ समझाना (६) विविध युक्तियों द्वारा सूत्रोक्त युक्ति या अर्थ को सिद्ध कर घटित करके समझाना।

मेधावी किन्हीं शिष्यों को अस्खलित, अमिलिति, अव्यत्याम्रेड़ित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोष, क ठोष्ठ विप्रमुक्त तथा गुरुवाचनोपगत रूप से सूत्र के उच्चारण श्रवण करने मात्र से अर्थाधिकार ज्ञात हो जाते है और किन्ही को न हो सके तो उपरोक्त ६ युक्तियों से सरल सुगम कर समझाया जाता है। अन्य अनेक द्वारों से विचारणा करके भी उस विषय की विस्तृत जाणकारी हासिल की जाती है। उसके लिये अर्थात् प्रथम अध्ययन रूप सामायिक के बहुमुखी तत्त्वज्ञान वृद्धि के लिये २६ द्वारों से उसका वर्णन किया जाता है।

(१) उद्देश-सामान्य कथन यथा-यह आवश्यकसूत्र का प्रथम अध्ययन है। (२) समुद्देश- नामोल्लेख-यथा- इसका नाम **सामायिक** है। (३) निर्गम-सामायिक की अर्थोत्पत्ति तीर्थंकरों से, सूत्रोत्पत्ति गणधरों से। (४) क्षेत्र-समयक्षेत्र में या पावापुरी में इसका प्रार भ। (५) काल-चतुर्थारक या वैशाख शुक्ला ग्यारस। (६) पुरुष- तीर्थंकर, वर्तमान में श्रमण भगवान महावीर। (७) कारण- गौतमादि ने स यतभाव की सिद्धि के लिये श्रवण किया। (८) प्रत्यय-केवलज्ञान होने से तीर्थंकर भगवान ने प्ररूपण किया। (९) लक्षण- सम्यक्त्व सामायिक का लक्षण

श्रद्धा है, श्रुत सामायिक का लक्षण तत्त्वज्ञान है, चारित्र सामायिक का लक्षण सर्व सावद्यविरति है। (१०) नय- सात नय से सामायिक का स्वरूप समझना। (११) समवतार-कौन सी सामायिक किस नय में है। (१२) अनुमत- मोक्षमार्ग रूप सामायिक कौन सी है, नयों की दृष्टि में। (१३) क्या है ? -किन्हीं नयों की दृष्टि में सामायिक जीव द्रव्य है और किन्हीं नयों की दृष्टि में सामायिक जीव का गुण है। (१४) कितने प्रकार-दर्शन, श्रुत एव चारित्र सामायिक ये तीन भेद करके भेदानुभेद करना।

(१५) किसको-समस्त प्राणियों पर समभाव रखने वाले तप स यतवान को सामायिक होती है। (१६) कहाँ- क्षेत्र, दिशा, काल, गति, भव्य, स ज्ञी, श्वासोश्वास, दृष्टि और आहारक के आश्रय से सामायिक का कथन करना। (१७) किसमें- सम्यक्त्व सामायिक सब द्रव्य पर्याय में, श्रुत और चारित्र सामायिक सब द्रव्यों में होती है, सब पयायों में नहीं। देश विरत सामायिक सर्व द्रव्यों में भी नहीं होती और सर्व पर्यायों में भी नहीं होती। (१८) कैसे-मनुष्यत्व, आर्यक्षेत्र, आरोग्य, आयुष्य, बुद्धि, धर्मश्रवण, श्रद्धा आदि को प्राप्त होने पर सामायिक प्राप्त होती है। (१९) स्थिति- जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट श्रुत और सम्यक्त्व सामायिक साधिक ६६ सागरोपम।चारित्र सामायिक देशोन क्रोड़ पूर्व। (२०) कितने- श्रुत और सम्यक्त्व सामायिक वाले उत्कृष्ट अस ख्य होते हैं। देशविरत सामायिक वाले भी अस ख्य होते हैं। चारित्र सर्व विरत सामायिक वाले अनेक हजार करोड़ होते हैं। (२१) अ तर- अनेक जीवों की अपेक्षा अ तर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अ तमुहूर्त, उत्कृष्ट अर्द्ध पुद्‌गल परावर्तन काल का अन्तर होता है। (२२) अविरह-श्रुत और सम्यक्त्व सामायिक वाले आवलिका के अस ख्यातवें भाग तक निरन्तर नये हो सकते हैं और चारित्र सामायिक वाले आठ समय तक निरन्तर हो सकते हैं। (२३) भव- देशविरति और सर्वविरति सामायिक लगातार ८ भवों में आ सकती है। (२४) आकर्ष-सर्वविरति सामायिक अनेक सौ बार और अन्य सामायिक अनेक हजार बार एक भव में आ सकती है। अनेक भवों की अपेक्षा सर्वविरति सामायिक अनेक हजार बार और शेष सभी

सामायिक अस ख्य हजारों बार आती है। (२५) स्पर्श-सम्यक्त्व और चारित्र सामायिक वाले समस्त लोक का स्पर्श करे(केवली समुद्‌घात की अपेक्षा)अन्य सामायिक वाले सात छः पाँच चार तीन दो राजू-प्रमाण लोक का स्पर्श करे। (२६) निरुक्ति-पर्यायवाची शब्द-सम्यग्दृष्टि, अमोह, शोधि, सद्‌भाव, दर्शन, बोधि, अविपर्यय, सुदृष्टि इत्यादि सामायिक के एकार्थक शब्द है ।

प्रश्न-१८ : अनुयोग के चौथे नयद्वार में सात नयों का क्या स्वरूप है ?

उत्तर- वस्तु को विभिन्न दृष्टियों से समझने के लिये या उसके तह तक प्रवेश करने के लिये उस वस्तु की **नय** द्वारा विचारणा की जाती है। अपेक्षा से **नय** के विविध प्रकार होते हैं अथवा तो जितने वचन मार्ग होते हैं- जितने आशयों से वस्तु का कथन किया जा सकता है उतने ही नय होते हैं अर्थात् प्रत्येक वस्तु में अन तधर्म(गुण)रहे हुए होते हैं, उनमें से एक समय में अपेक्षित किसी एक धर्म का कथन किया जाता है। उस एक धर्म के कहने के उस अपेक्षा वचन को "नय" कहते हैं। अतः अन त धर्मात्मक वस्तुओं की अपेक्षा नयों की स ख्या भी अन त है। फिर भी किसी वस्तु को सुगमता से समझने के लिये उन अनेक भेदों को स ग्रहित कर सीमित भेदों में समाविष्ट करके कथन करना भी आवश्यक होता है। अतः उक्त अनेकों भेदों का समावेश सात नयों में किया गया है। इसके अतिरिक्त स क्षिप्त अपेक्षा से दो-दो भेद भी किये जाते हैं। यथा- द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय अथवा निश्चय नय और व्यवहार नय अथवा ज्ञान नय एव क्रिया नय। अति स क्षेप विधि से उन सात भेदों को इन दो-दो में समाविष्ट करके भी कथन कर दिया जाता है । सूत्रोक्त सात नय इस प्रकार है- १. नैगम नय २. स ग्रह नय ३. व्यवहार नय ४. ऋजु सूत्र नय ५. शब्द नय ६. समभिरूढ़ नय ७. एव भूत नय ।

नैगमनय-इस नय में वस्तु के सामान्य और विशेष उभयधर्मों का अलग अलग अस्तित्व स्वीकार किया जाता है अर्थात् किसी वस्तु में अ शमात्र भी अपना वाच्य गुण हो तो भी उसे सत्य रूप में स्वीकार किया जाता है। भूत भविष्य वर्तमान काल को भी अलग-अलग

स्वीकार किया जाता है अर्थात् जो हो गया है, हो रहा है, होने वाला है उसे भी सत्य रूप में यह नय स्वीकार करता है। न+एक+गम=नैगम– जिसके विचार करने का केवल एक ही प्रकार नहीं है अनेक प्रकारों से वस्तु के धर्मों का अलग–अलग अस्तित्व स्वीकार करने वाला यह नय है। तीर्थंकर आदि महापुरुषों का जो जन्म दिन स्वीकार कर मनाया जाता है, वह भी नैगम नय से ही स्वीकार किया जाता है। यह नय चारों निक्षेपों को स्वीकार करता है ।

स ग्रह नय– इस नय में वस्तु के सामान्य धर्म को स्वीकार किया जाता है। अलग अलग भेदों से वस्तु को भिन्न भिन्न स्वीकार नहीं करके सामान्य धर्म से, जाति वाचक रूप से वस्तु को स ग्रह करके, उसे एक वस्तु रूप स्वीकार करके कथन किया जाता है। उनकी विभिन्नताओं एव विशेषताओं से अलग अलग स्वीकार नहीं करते हुए यह नय कथन करता है। अर्थात् इस नय के कथन में सामान्य धर्म के विवक्षा की प्रमुखता रहती है, विशेष धर्म गौण होता जाता है। यह नय भेद प्रभेदों को गौण करता रहता है और सामान्य सामान्य को ग्रहण करता है। ऐसा करने में यह क्रमशः विशेष को भी ग्रहण तो कर लेता है, किन्तु उस विशेष के साथ जो भेद प्रभेद रूप अन्य विशेष धर्म है, उन्हें गौण करके अपने अपेक्षित विशेष धर्म को सामान्य धर्म रूप में स्वीकार कर उसी में अनेक वस्तुओं को स ग्रहित कर लेता है। यथा– **घड़ा** द्रव्य का कथन करके सभी घड़ों को इसी में स्वीकार कर लेता, फिर भेद–प्रभेदऔर अलग अलग वस्तु को स्वीकार नहीं करता है। चाहे छोटा बड़ा घड़ा हो या उनमें र गभेद हो अथवा गुणभेद हो और चाहे मूल्य भेद हो और जब बर्तन द्रव्य से वस्तु का बोध करना होगा तो सभी तरह के बर्तनों को एक में समाविष्ट करके ही कहेगा अलग अलग जाति या अलग–अलग पदार्थों की भिन्नता की अपेक्षा नहीं रखेगा। इस नय वाला विशेष का ग्राहक न होते हुए भी तीन काल की अवस्था को एव चारों निक्षेप को स्वीकार करता है ।

व्यवहार नय– व्यवहार में उपयुक्त जो भी वस्तु का विशेष विशेषतर गुणधर्म है, उसे स्वीकार करने वाला यह व्यवहार नय है। यह वस्तु के सामान्य सामान्यतर धर्म की अपेक्षा नहीं रखता है। अपने लक्षित

व्यवहारोपयुक्त विशेष धर्म को स्वीकार करने की अपेक्षा रखता है। यह तीन ही काल की बात को एव चारों निक्षेपों को स्वीकार करता है। स ग्रह नय वाला जीवों को जीव शब्द से कहेगा तो यह नय उन्हें नारकी, देवता आदि विशेष भेदों से कहेगा। **ऋजुसूत्र नय**– यह भूत भविष्य को स्वीकार न करके केवल वर्तमान गुण धर्म को स्वीकार करता है। अर्थात् वर्तमान में जो पदार्थ का स्वरूप, अवस्था या गुण है, उसे यह नय मानेगा और कहेगा। शेष अवस्था की अपेक्षा नहीं करेगा। यह नय केवल भाव निक्षेप ही स्वीकार करता है ।

शब्द नय– काल कारक लि ग वचन स ख्या पुरुष उपसर्ग आदि से शब्दों का जो भी अर्थ प्रसिद्ध हो उसे स्वीकार करने वाला नय शब्द नय है। एक पदार्थ को कहने वाले पर्यायवाची शब्दों को एकार्थक एक रूप में स्वीकार कर लेता है अर्थात् शब्दों को व्युत्पत्ति अर्थ से, रूढ़ प्रचलन से और पर्यायवाची रूप में भी स्वीकार करता है ।

समभिरुढ़ नय– पर्यायवाची शब्दों में निरूक्ति भेद से जो भिन्न अर्थ होता है उन्हें अलग अलग स्वीकार करने वाला यह एव भूत नय है। शब्द नय तो शब्दों की अपेक्षा रखता है अर्थात् सभी शब्दों को और उनके प्रचलन को मानता है, किन्तु यह नय उन शब्दों के अर्थ की अपेक्षा रखता है। पर्याय शब्दों के वाच्यार्थ वाले पदार्थों को भिन्न भिन्न मानता है। यह नय विशेष को स्वीकार करता है। सामान्य को नहीं मानता । वर्तमान काल को मानता है एव एक भाव निक्षेप को ही स्वीकार करता है ।

एव भूत नय– अन्य किसी भी अपेक्षा या शब्द अथवा शब्दार्थ आदि को स्वीकार नहीं करके उस अर्थ में प्रयुक्त अवस्था में ही उस वस्तु को स्वीकार करता है, अन्य अवस्था में उस वस्तु को यह नय स्वीकार नहीं करता है। समभिरूढ़ नय तो अर्थ घटित होने से उस वस्तु को अलग स्वीकार कर लेता है किन्तु यह नय तो अर्थ की जो क्रिया है उसमें वर्तमान वस्तु को ही वह वस्तु स्वीकार करता है अर्थात् क्रियान्वित रूप में ही शब्द और वाच्यार्थ वाली वस्तु को स्वीकार करता है। इस प्रकार यह नय शब्द अर्थ और क्रिया तीनों देखता है। वस्तु का जो नाम और अर्थ है वैसी ही क्रिया एव परिणाम की धारा हो, वस्तु अपने

गुणधर्म में पूर्ण हो और प्रत्यक्ष देखने समझने में आवे, उसे ही वस्तु रूप में स्वीकार करना एव भूत नय है। एक अ श भी कम हो तो यह नय उसे स्वीकार नहीं करता है। इस प्रकार यह नय सामान्य को नहीं स्वीकारता है विशेष को स्वीकार करता है। वर्तमानकाल को एव भावनिक्षेप को स्वीकार करता है ।

प्रश्न-१९ : दृष्टा तों द्वारा सातों नयों का स्वरूप किस प्रकार समझें?

उत्तर- नैगम नय- इस नय में वस्तु स्वरूप को समझने में या कहने में उसके सामान्य धर्म एव विशेष धर्म दोनों की प्रधानता को स्वीकार किया जाता है। भूत-भविष्य, वर्तमान सभी अवस्था को प्रधानता देकर स्वीकार कर लिया जाता है। वस्तु के विशाल रूप से भी उस वस्तु को स्वीकार किया जाता है एव वस्तु के अ श से भी उस वस्तु को स्वीकार किया जाता है। इस नय के अपेक्षा स्वरूप को समझने के लिये तीन दृष्टा त दिये जाते हैं, यथा- १. निवास का २. प्रस्थक नाम के काष्ठ पात्र का ३. गाँव का ।

(१) एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से पूछा- आप कहाँ रहते हैं ? तो इसके उत्तर में वह कहें कि मैं लोक में रहता हूँ या तिर्छा लोक में रहता हूँ या ज बूद्वीप, भरतक्षेत्र, हिन्दुस्तान, राजस्थान, जयपुर, चौड़ा रास्ता, लाल भवन, दूसरी म जिल इत्यादि कोई भी उत्तर दे, नैगम नय उन सभी(अनेकों) अपेक्षाओं को सत्य या प्रमुखता से स्वीकार करता है।

(२) काष्ठपात्र बनाने हेतु लकड़ी काटने ज गल में जाते समय भी किसी के पूछने पर वह व्यक्ति कहे कि प्रस्थक(काष्ठ पात्र)लाने जा रहा हूँ, वृक्ष काटते समय, वापिस आते समय, छीलते समय, सुधारते समय एव पात्र बनाते समय, इस प्रकार सभी अवस्थाओं में उसका प्रस्थक बनाने का कहना नैगम नय सत्य स्वीकार करता है ।

(३) जयपुर जाने वाला व्यक्ति जयपुर की सीमा में प्रवेश करने पर कहे जयपुर आ गया, नगर के बगीचे आदि आने पर कहे जयपुर आ गया, उपनगर में पहुँचने पर कहे जयपुर आ गया, शहर में पहुँचने पर, चौड़ा रास्ता में पहुँचने पर एव लाल भवन में बैठने पर साथी से कहे हम जयपुर में बैठे है, इन सभी अवस्थाओं के वाक्य प्रयोगों को नैगम नय बिना किसी स कोच के सत्य स्वीकार कर लेता है ।

यह नैगम नय की अपेक्षा है। इस प्रकार द्रव्य पर्याय सामान्य विशेष और तीनों काल को सत्य स्वीकार करने वाला नैगम नय है।

स ग्रह नय- नैगम नय सामान्य और विशेष दोनों की उपयोगिता को स्वीकार करता है। स ग्रह नय केवल सामान्य को ही स्वीकार करता है। विशेष को गौण करता है। सामान्य धर्म से अनेक वस्तुओं को एक में ही स्वीकार करने वाला यह स ग्रह नय है । यथा- "भोजन लावो" इस कथन से रोटी, साग, मिठाई, दहीं, नमकीन आदि सभी पदार्थ को ग्रहण कर उनका आदेश कर देना यह स ग्रह नय वचन है। इसी प्रकार यहाँ वनस्पतियाँ है, ऐसा कहने से हरी घास, पौधे, लता, आम्रवृक्ष आदि अनेकों का समावेश युक्त कथन स ग्रह नय की अपेक्षा है। उसी प्रकार द्रव्य से ६ द्रव्यों का, जीव से चार गति के जीवों का कथन स ग्रह नय की अपेक्षा है। इस प्रकार यह नय एक शब्द से अनेकों पदार्थों का स ग्रह करता है। किन्तु विशेष विशेषतर भेदप्रभेदों की अपेक्षा नहीं रखता है ।

व्यवहार नय- सामान्य धर्मों को छोड़ते हुए विशेष धर्मों को ग्रहण कर वस्तु का कथन करने वाला एव भेदप्रभेद करके वस्तु का कथन करने वाला यह व्यवहार नय है। यथा-द्रव्य को ६ भेद से, उसमें भी जीवद्रव्य को चार गति से, फिर जाति से, काया से, फिर देश से, कथन करता है। जैसे स ग्रह नय मनुष्य, जानवर आदि को या उनके समूह को ये जीव है ऐसा सामान्य धर्म की प्रमुखता से कथन करेगा तो व्यवहार नय यह मनुष्य भारत वर्ष में, राजस्थान प्रा त के जयपुर नगर का ब्राह्मण जाति का तीसवर्षीय जवान पुरुष है ऐसा कहेगा। इस तरह विशेष धर्म के कथन एव आशय को व्यवहार नय प्रमुख करता है। (१) नैगमनय सामान्य विशेष दोनों को उपयोगी स्वीकार करता है। (२) स ग्रह नय सामान्य को उपयोगी स्वीकार करता है। (३) व्यवहार नय विशेष (व्यवहारिक)अवस्था स्वीकार कर कथन करता है। इन तीनों नयों को द्रव्यार्थिक नय कहते हैं । ये नय तीनों काल को स्वीकार करते हैं ।

ऋजु सूत्र नय- केवल वर्तमान काल को प्रमुखता देकर स्वीकार करने वाला यह ऋजु सूत्र नय है। यह वर्तमान की ही उपयोगिता स्वीकार करता है। भूत और भावी के धर्मों अवस्थाओं की अपेक्षा नहीं रखता

है। कोई व्यक्ति पहले दु:खी था, फिर भविष्य में भी दु:खी होगा, किन्तु यदि वर्तमान में सुखी है और सुख का अनुभव कर रहा है तो पूर्व और भावी दु:ख का उसे अभी क्या वास्ता। अतः उस व्यक्ति को सुखी कहा जायेगा। कोई पहले राजा था, अभी भिखारी बन गया है, फिर कभी राजा बन जायेगा, तो भी उसे अभी तो भिखारीपन का ही अनुभव करना है, अतः भूत और राजापन से उसे अभी सुख कुछ भी नहीं है, न राजापन है, अतः वह भिखारी कहा जायेगा। पहले कोई मुनि बना, अभी गृहस्थ बना हुआ है, फिर मुनि बन जायेगा, तो भी वर्तमान में वह गृहस्थ रूप है पूर्व और भावी मुनिपन का उसे कोई आत्मानन्द नहीं है, अतः यह नय वर्तमान अवस्था से वस्तु स्वरूप को देखता, जानता और कथन करता है ।

शब्द नय– शब्द से ही पदार्थों का ज्ञान होता है इसलिये यह नय पदार्थों के किसी भी प्रकार से बोध कराने वाले शब्दों को स्वीकार करता है। वह शब्द जिस पदार्थ को कहता है, उसे यह नय प्रधानता देकर स्वीकार करता है। यह नय वर्तमान को ही स्वीकार करता है। यथा– "जिन" शब्द से जो वर्तमान में रागद्वेष विजेता है, उसे ग्रहण करता है। किन्तु भविष्य में कोई जिन होगा उस द्रव्य **जिन** को स्वीकार नहीं करता है। वैसे किसी का नाम जिन है, उस नाम जिन को भी यह स्वीकार नहीं करता है। प्रतिमा या चित्र पर कोई जिन की स्थापना कर दी है, वह स्थापना जिन भी यह नय स्वीकार नहीं करता है। इस प्रकार यह नय केवल भाव निक्षेप को स्वीकार करता है नाम, स्थापना एव द्रव्य को यह नय स्वीकार नहीं करता है।

जो शब्द जिस वस्तु के कथन करने की अर्थ योग्यता या बोधकता रखता है उसके लिये उस शब्द का प्रयोग करना शब्द नय है। शब्द–यौगिक, रूढ़ एव योगिक–रूढ़(मिश्र)भी होते हैं। वे जिस जिस अर्थ के बोधक होते हैं, उन्हे यह नय उपयोगी स्वीकार करता है। यथा– (१) पाचक यह यौगिक निरूक्त शब्द है इसका अर्थ रसोइया रसोइ करने वाला होता है। (२) गौ यह रूढ़ शब्द है इसका अर्थ तो है–जाने की क्रिया करने वाला। किन्तु बैल या गाय जाति के लिये यह रूढ़ है, अतः शब्द नय इसे भी स्वीकार करता है। (३) प कज, यौगिक

भी है रूढ़ भी है। इसका अर्थ है कीचड़ में उत्पन्न होने वाला कमल। किन्तु कीचड़ में तो काई, मेंढ़क, शेवाल आदि कई चीजें उत्पन्न होती है, उन्हें नहीं समझ कर केवल **कमल** को ही समझा जाता है। अतः यह प कज यौगिक रूढ़ शब्द है, इससे जो कमल का बोध माना जाता है, शब्द नय इसे भी स्वीकार करता है। इस प्रकार विभिन्न तरह से अर्थ के बोधक सभी शब्दों को उपयोगी स्वीकार करने वाला यह **शब्द नय** है।

समभिरूढ़ नय– यह नय भी एक प्रकार का शब्द नय ही है। इसका स्वरूप भी स पूर्ण शब्द नय के समान समझना चाहिये। विशेषता केवल यह है कि यह रूढ़ शब्द आदि को पदार्थ का अर्थ बोधक स्वीकार नहीं करता है, केवल यौगिक, निरूक्त शब्द जिस अर्थ को कहते हैं उस पदार्थ को ही यह नय स्वीकार करता है। अर्थात् रूढ़ शब्द को भी स्वीकार नहीं करता है, साथ ही जो पर्यायवाची शब्द है उन्हें भी एक रूप में स्वीकार नहीं करके भिन्न भिन्न रूप में स्वीकार करता है अर्थात् उन पर्यायवाची शब्दों का जो निरूक्त अर्थ होता है उस शब्द से उसी पदार्थ को स्वीकार करता है और दूसरे पर्यायवाची शब्द के वाच्य पदार्थ से उसे अलग स्वीकार करता है। यथा– जिन, केवली, तीर्थंकर, ये जिनेश्वर के ही बोधक शब्द है एव एकार्थक रूप में भी है तो भी यह नय इन्हें अलग अलग अर्थ से अलग अलग ही स्वीकार करेगा। इस प्रकार यह नय निरूक्त अर्थ की प्रधानता से ही शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये करता है एव ऐसा प्रयोग करना उपयोगी मानता है। उन पर्याय शब्द को अलग अलग पदार्थ का बोधक मानता है जिन, अर्हंत, तीर्थंकर ये भिन्न शब्द भिन्न भिन्न गुण वाले पदार्थ के बोधक है ।

एव भूत नय– जिस शब्द का जो अर्थ है और वह अर्थ जिस पदार्थ का बोधक है वह पदार्थ उस समय उसी अर्थ का अनुभव करता हो, उसी अर्थ की क्रियाशील अवस्था में हो, तभी उसके लिये उस शब्द का प्रयोग करना, यह इस एव भूत नय का आशय है। अर्थात् जिस दिन जिस समय तीर्थ की स्थापना करते हो उस समय तीर्थंकर शब्द का प्रयोग करना। जिस समय सुरासुर से पूजा की जाती हो उस समय अर्हंत कहना, कलम से जब लिखने का कार्य किया जा रहा हो तभी उसके लिये **लेखनी** शब्द का प्रयोग करना ।

समभिरूढ़ नय निरूक्त अर्थ वाले शब्द को स्वीकार करता है और एव भूत नय भी उसे ही स्वीकार करता है किन्तु उस भाव या क्रिया में परिणत वस्तु के लिये ही उस शब्द का प्रयोग करना स्वीकार करता है। यह इसकी विशेषता है। इस प्रकार यह नय केवल शुद्ध भाव निक्षेप को ही स्वीकार कर के कथन करता है।

प्रश्न-२० : नय, दुर्नय और स्याद्वाद तीनों का स्वरूप किस प्रकार समझें ?

उत्तर- ये सातों नय अपनी अपनी अपेक्षा से वचन प्रयोग एव व्यवहार करते हैं, उस अपेक्षा से ही ये नय कहलाते हैं। दूसरी अपेक्षा का स्पर्श नहीं करते हैं, उपेक्षा रखते हैं, इसलिये भी नय कहलाते हैं। यदि दूसरी अपेक्षा का खंड़न, विरोध करते हैं तो ये नय वचन नय की सीमा का उल्ल घन करके **दुर्नय** बन जाते हैं अर्थात् इनकी नयरूपता कुनयता में बदल जाती है। ऐसे कुनयों के कारण ही अनेक विवाद एव मत मता तर या निन्हव आदि पैदा होते हैं। नय में क्लेश उत्पादकता नहीं है। दुर्नय में क्लेशोत्पादकता है। यथा- दो व्यक्तियों ने एक ढ़ाल देखी, दोनों अलग अलग दिशा में दूर खड़े थे। ढ़ाल एक तरफ स्वर्ण रस युक्त थी दूसरी तरफ चा दी के रस से युक्त बनाई हुई थी। यदि वे दोनों व्यक्ति नय से बोले तो एक व्यक्ति ढ़ाल स्वर्णमय है ऐसा कहेगा। दूसरा उसे चा दी की कह देगा। दोनों अपने कथन में अनुभव में शा त रहे तो नय है। एक दूसरे की हीलना निन्दा करे कि अरे तू पागल हो गया है क्या दिखता नहीं है, साफ पीली सोने की दीख रही है। दूसरा कहे तेरी आ खों में पीलिया है। दुर्नय में झगड़ा है। यहाँ यदि स्याद्वाद अनेका तवाद आ जाय तो कहेगा कि सफेद भी है, पीली भी है, सोना रूप भी है चा दी रूप भी है, तो शा ति हो जाती है। इस प्रकार नय एव दुर्नय को जानकर या तो नय तक सीमित रहना चाहिये या फिर सभी अपेक्षा से चि तन कर अनेका तवाद में आ जाना चाहिये किन्तु एका तवाद एव दुर्नय का आश्रय कभी भी नहीं लेना चाहिये। दुर्नय-एका तवाद से मिथ्यात्व क्लेश एव दुःख की प्राप्ति होती है एव नयवाद अनेका तवाद से शा ति आनन्द की प्राप्ति होती है। एक व्यक्ति किसी का पिता है तो पुत्र की अपेक्षा उसे पिता कहना नय है। किन्तु यह पिता ही है किसी

का भी भाई, पुत्र, मामा आदि है ही नहीं, ऐसा कथन करने वाला दुर्नय हो जाता है ।

मोक्षमार्ग में श्रद्धा का स्थान अति महत्त्वशील बताना नय है, किन्तु अन्य ज्ञान या क्रिया का खंड़न निषेध कर देना दुर्नय हो जाता है। इसी प्रकार कभी ज्ञान का महत्त्व बताते हुए कथन विस्तार करना भी नय है, किन्तु क्रिया का निषेध नहीं होना चाहिये। क्रिया का निषेध यदि ज्ञान के महत्त्व कथन के साथ आ जाता है, तो वह भी दुर्नय हो जाता है अथवा कभी क्रिया का महात्म्य बताते हुए विस्तृत कथन किया जा सकता किन्तु ज्ञान का निषेध या उसे निरर्थक बताने रूप कथन होता हो तो वह भी दुर्नय हो जाता है। अतः अपनी अपेक्षित किसी भी अपेक्षा से कथन करना नय है। दूसरी अपेक्षाओं को विषयभूत नहीं बनाना भी नय है किन्तु दूसरी अपेक्षा को लेकर विवाद कर उन सभी अपेक्षाओं या किसी अपेक्षा को गलत निरर्थक कह देना दुर्नय है।

स्याद्वाद-अनेका तवाद जैन धर्म की समन्वय मूलकता का बोधक है। वह नयों का समन्वय करता है। प्रत्येक विषय या वस्तु को अनेक धर्मों से, अनेक अपेक्षाओं से, देखकर उसका चिन्तन करना एव निर्णय लेना, यही सम्यग् अनेका त सिद्धा त है और इसी से समभाव सामायिक की प्राप्ति होती है ।

अनेका तवाद, नय से अपनी भिन्न विशेषता रखता है। इन दोनों को एक नहीं समझ लेना चाहिये। नय अपनी अपेक्षा दृष्टि को मुख्य कर अन्य दृष्टि को गौण करके वस्तु का प्रतिपादन करता है, दूसरी दृष्टि की उपेक्षा रखता है। जब कि स्याद्वाद अनेका तवाद सभी दृष्टियों को सम्मुख रख कर उन सभी सत्य आशयों को, वस्तु के विभिन्न धर्मों को, उन अपेक्षा से देखता है, किसी को गोण और मुख्य अपनी दृष्टि से नहीं करता है ।

नय मानों अपने हाल में मस्त है, दूसरों की अपेक्षा नहीं रखता है तो तिरस्कार भी नहीं करता है और अनेका तवाद सभी की अपेक्षा रख कर उन्हें साथ लेकर उदारता से चलता है। जबकि दुर्नय स्वय को ही सब कुछ समझ कर अन्य का तिरस्कार करता है।

इस प्रकार नय, दुर्नय एव अनेका तवाद को समझ कर समन्वय

दृष्टि प्राप्त कर समभावों रूप सामायिक को प्राप्त करना चाहिये। यह चौथा नय द्वार सम्पूर्ण हुआ ।

नोट– विस्तृत जानकारी के लिये आगम प्रकाशन समिति ब्यावर आदि स स्थाओं से प्रकाशित अनुयोगद्वार सूत्र एव उसकी व्याख्याओं का तथा विवेचन का अध्ययन करना चाहिये।

॥ अनुयोगद्वार सूत्र स पूर्ण ॥

- गच्छ समाचारी को या पर परा को प्रमुखता देकर आगम प्रमाणों की उपेक्षा करना हठधर्मीपन है ।
- बृहत्कल्प भाष्य गाथा ६९५ में गीतार्थ के अकारण एकल–विहार का लघु मासिक प्रायश्चित्त कहा है। अगीतार्थ के एकल विहार का गुरू चौमासी प्रायश्चित्त कहा है। इसके अतिरिक्त अन्य स यम दोषों का प्रायश्चित्त आलोचनानुसार अलग देने का कहा है ।
- इसलिये एका त रूप से दीक्षा छेद का प्रायश्चित्त देने वाले प्रमाणित करें अथवा अनागमिक प्रायश्चित्त देने का स्वय ही गुरू चौमासी प्रायश्चित्त निशीथ उद्दे.१० के अनुसार स्वीकार करें ।
- गीतार्थ को सकारण (उचित कारण) से एकल विहार का प्रायश्चित्त नहीं आता है ।
- सेवा करने वालों को गुरू या छेद प्रायश्चित्त देना भी आगम से प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। अत: आगम विरूद्ध प्रायश्चित्त देने का गुरू चौमासी प्रायश्चित्त लेना चाहिए।

ooooo

आवश्यक सूत्र

प्रश्न–१ : आवश्यक सूत्र का सर्वांगीय परिचय किस प्रकार है ?

उत्तर– स सार प्रवाह में परिभ्रमण करते हुए प्राणी को मानवदेह प्राप्त होना अत्य त दुर्लभ है। ऐसे मानव देह को प्राप्त करने का श्रेष्ठ फल है व्रतप्रत्याख्यान धारण करना। कहा भी है–**देहस्य सार व्रत धारण च ।**

व्रत को धारण करने के बाद उनका शुद्ध रूप से पालन एव आराधना करना भी साधक का परम कर्तव्य हो जाता है। जीवन की सामान्य विशेष विविध परिस्थितियों में सूक्ष्म स्थूल अतिचार भी जाने अनजाने लगते रहते हैं उनकी शुद्धि के लिये प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है। प्रतिक्रमण के लिये अवल बन भूत आगम आवश्यक सूत्र है ।

नामकरण–अनुयोगद्वार सूत्र में श्रावक एव श्रमण दोनों के लिये उभय स ध्या अवश्य करणीयता कही होने से इसे आवश्यक सूत्र कहा गया है।

आगमों में स्थान– प्रतिक्रमण करना सभी श्रमणों का प्रमुख आचार होने से इस आवश्यक सूत्र का अ ग आगम और अ गबाह्य आगमों से अलग ही महत्त्व शास्त्रों में निर्दिष्ट है। जहाँ श्रमणों के शास्त्र अध्ययन की जानकारी दी गई है वहाँ अ गशास्त्रों से भी आवश्यक सूत्र के अध्ययन का निर्देश पहले अलग किया गया है। न दी सूत्र में अ गबाह्य आगमों में आवश्यक को पहले अलग कहा गया है फिर सभी अ गबाह्य आगमों को दो विभागों से एक साथ कहा गया है। इस प्रकार इस आवश्यक सूत्र का सभी आगमों से एक विशेष एव अलग ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे क ठस्थ करना प्रत्येक श्रमण एव श्रमणोपासक के लिये आवश्यक होता है ।

विशेषता– समस्त जैन आगम या तो कालिक होते है अथवा उत्कालिक होते हैं और उनके उच्चारण के काल अकाल दोनों होते हैं। वे ३२ (३४) अस्वाध्याय के समय उच्चारण नहीं किये जाते हैं। किन्तु आवश्यक सूत्र का काल अकाल नहीं होता है अर्थात् सदा काल इस सूत्र का उच्चारण किया जा सकता है। ३२(३४) अस्वाध्याय के समय इसका उच्चारण करना भी निषिद्ध नहीं होता है, बल्कि सुबह शाम की स ध्या

काल रूप अस्वाध्याय के समय ही इस सूत्र के अवल बन भूत प्रतिक्रमण करने का विशिष्ट समय आगम उत्तराध्ययन और अनुयोगद्वार सूत्र में सूचित किया गया है। निष्कर्ष यह है कि इस आगम के उच्चारण में शुचि, अशुचि, समय, असमय आदि कोई भी बाधाजनक नहीं होते हैं ।

रचना और रचनाकार– आवश्यक सूत्र की रचना गणधर करते हैं एव सभी तीर्थंकरों के शासन के प्रारम्भ में ही इस सूत्र की रचना की जाती है क्यों कि साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप तीर्थ स्थापन से तीर्थंकर का शासन प्रारम्भ होता है और साधु–साध्वी के लिये प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है। प्रतिक्रमण आवश्यक सूत्र के आधार से ही किया जाता है। अतः यह सूत्र गणधर रचित आगम है। इसमें ६ अध्याय है जिन्हें छ आवश्यक कहा जाता है। छः आवश्यकों में कुल १+१+१+९+१+१०=२३ तथा आदि म गल और अ तिम म गलपाठ मिल कर कुल २३+२=२५ पाठ है जिनका परिमाण १२५ श्लोक का माना जाता है। कहीं १०० या २०० श्लोक परिमाण भी कहा गया है ।

स स्करण– इस आवश्यक सूत्र नामक आगम पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीकाएँ(हरिभद्रीय, मलयगिरीय आदि) एव विविध हिन्दी, स स्कृत, प्राकृत व्याख्यायें मुद्रित उपलब्ध होती है। इस सूत्र के मूलपाठ भी सुत्तागम आदि के रूप में प्रकाशित हुए हैं। आधुनिक ढ़ ग से लाड़नू से आचार्य तुलसी द्वारा स पादित एव बम्बई विद्यापीठ से पूज्य मुनिराज श्री ज बूविजयजी द्वारा स पादित प्रकाशित हुए हैं।

इस सूत्र के आधार से विविध पाठों सहित तथा अनेक हिन्दी गुजराती गद्य पद्य के रचित प्रक्षिप्त पाठों सहित प्रतिक्रमण सूत्र प्रचलित हैं। उसी की प्रमुखता से समाज में प्रतिक्रमण किया जाता है। इसके अनेकों स स्करण प्रकाशित है और वे अनेक विविधता वाले हैं जिनका परिमाण १०००श्लोक से लेकर ५–७ हजार श्लोक जितना भी हो जाता है जब कि आवश्यक सूत्र तो केवल १२५ श्लोक प्रमाण है ।

कई लोग प्रतिक्रमण सूत्र(विधि सहित) को ही आवश्यक सूत्र मान बैठते हैं किन्तु आवश्यक सूत्र १२५ श्लोक प्रमाण आज भी स्वत त्र है। जो उपरोक्त लाड़नू, बम्बई के स स्करण में देखा जा सकता है। उसमें केवल अर्द्धमागधी भाषा के ही पाठ है। जब कि

उस आवश्यक सूत्र के आधार से प्रचलित प्रतिक्रमण सूत्र में अन्य शास्त्रों के उद्धरित मूल पाठ भी है, अन्य नये रचित मूलपाठ भी है, साथ ही साथ हिन्दी गुजराती के या मिश्रित भाषा के कई पाठ एव दोहे, सवैये, भजन, स्तुति आदि भी सम्मिलित है।

आवश्यक सूत्र में केवल श्रमणोचित पाठ ही छहों अध्यायों में उपलब्ध होते हैं। श्रावक प्रतिक्रमण के अन्यान्य पाठों का स कलन भाष्य टीका में आवश्यक सूत्र के अ त में दिया गया है। अनुयोगद्वार सूत्र में श्रावक को भी प्रतिक्रमण करना आवश्यक कहा गया है ।इस प्रकार आवश्यक सूत्र प्रक्षेपों रहित शुद्ध रूप में आज भी उपलब्ध है। प्रक्षेप वृद्धि आदि सब स्वत त्र प्रतिक्रमण सूत्रों में होता है। वह स्वत त्र विधि सूत्र है जो आवश्यक के आधार से तैयार किया गया है ।

प्रतिक्रमण सूत्र के समान ही सामायिक सूत्र भी प्रचलित है उसमें भी आवश्यक सूत्र के अन्यान्य अध्यायों में आये पाठों का एव अन्य सूत्र से लाये गये पाठ का तथा नये रचित पाठ का स कलन किया गया है। इसी सामायिक सूत्र के आधार से सामायिक व्रत लेने की एव पारने की पूर्ण विधि की जाती है ।

उपाध्याय कवि श्री अमरमुनि जी द्वारा स पादित श्रमण सूत्र और सामायिक सूत्र विवेचन चि तन सहित प्रकाशित हुआ है। अन्य भी अनेक महत्त्वशील स स्करण इस सूत्र के प्रकाश में आये हैं ।

सारा श के प्रावधान में भी इस सूत्र का ३२वाँ पुष्प विविध परिशिष्टों के साथ तैयार किया गया है। मौलिक रूप में इस आगम आवश्यक सूत्र के ६ अध्यायों का सारा श एव मूलपाठ रखा गया है। शेष सभी प्रकरणों को परिशिष्ट विभाग में दिया गया है ।***(सारा श की पुस्तक में देखें)।***

प्रचलित श्वेताम्बर पर परा में इस सूत्र को अ तिम सूत्र बोला एव गिनाया जाता है अर्थात् ४५ या ३२ आगम में यह पेंतालीसवाँ और बत्तीसवाँ सूत्र गिना जाता है इसलिये सारा श पुष्पों में इसका न बर भी अ तिम रखा गया है । समस्त आगमों में इस सूत्र की प्राथमिकता स्पष्ट है । इसलिये इस सूत्र को व्यवहार भाषा में भी प्रथम न बर में रखना चाहिये। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर सारा श के सजिल्द

स स्करण में इस सूत्र को सबसे प्रथम स्थान देने का निर्णय रखा है । समस्त स्वाध्यायी पाठकों से यही आशा की जाती हैं कि वे इन सारा श एव प्रश्नोत्तर पुष्पों से ज्ञानाराधना में अधिकतम लाभ प्राप्त करेंगे।

प्रश्न-२ : जगत में आध्यात्मिक दृष्टि से नमस्करणीय कौन कौन होते हैं ? अथवा नमस्कार म त्र का परिचय एव स्वरूप क्या है ?

उत्तर- (१) जगत में आध्यात्मदृष्टि से व दन करने योग्य, नमस्कार करने योग्य गुण स पन्न आत्माओं को पाँच पदों से व दन किया जाता है । (२) इन पाँच के अतिरिक्त माता, पिता, वय ज्येष्ठ, विद्यागुरु आदि भी लौकिक दृष्टि से व दनीय होते हैं। उनका समावेश इन पाँच पदों में नहीं है ।(३) इन पाँच पदों के अतिरिक्त आध्यात्म दृष्टि से और कोई भी व दनीय नमस्करणीय नहीं होते है ।(४) इन पाँच पदों में आध्यात्मगुण स पन्न सभी आत्माओं का अपेक्षा से विभाजन किया गया है। (५) इन पाँच पदों के उच्चारण से यह भी स्पष्ट होता है कि गुण स पन्न आत्माएँ व दनीय होती है किन्तु केवल गुण को व दनीय नहीं कहा जा सकता एव गुण रहित केवल शरीर या आकृति को भी व दनीय नहीं कहा जा सकता। आत्मा एव आत्मगुणों से रहित जड़ फोटू एव मूर्ति को भी भक्ति प्रधान व्यवहार में नमस्करणीय माना जा रहा है जो एक परम्परा मात्र है ।(६) स्वत त्र ज्ञान दर्शन आदि भी नमस्करणीय नहीं है एव कोई फोटू मूर्ति भी व दनीय नमस्करणीय नहीं है किन्तु उस ज्ञान से सम्पन्न आत्मा और गुण सम्पन्न आत्माएँ आध्यात्म दृष्टि से व दनीय नमस्करणीय है ।

(७) ये नमस्करणीय आत्माएँ पाँच पदों में इस प्रकार कही गई है- **अरिह त-** तीर्थंकर भगवान जो केवल ज्ञान केवल दर्शन धारण कर मनुष्य शरीर में मनुष्य लोक में विचरण कर रहे हों, वे अरिह त भगव त है। उन्हें इस प्रथम पद में नमस्कार किया गया है । ये कम से कम २० और अधिकतम १७० सम्पूर्ण मनुष्य लोक में एक साथ हो सकते है। **सिद्ध-** आठ कर्मों से रहित, मनुष्य देह को छोड़कर जो मुक्त हो गये हैं, परमात्म पद को प्राप्त हो चुके हैं, वे सभी अन त आत्माएँ सिद्ध भगव त हैं, उन्हें इस दूसरे पद में नमस्कार किया गया है। इसमें चौदह प्रकारे, प द्रह भेदे सभी प्रकार के सिद्धों को नमस्कार किया जाता है।

प्रथम पद वाले अरिह त भी इन सभी सिद्धों को नमस्कार करते हैं क्यों कि सिद्ध अरिहंतों से आध्यात्म गुणों में महान होते हैं। सिद्धों के महान होते हुए भी लोक में धर्म प्रवर्तन की अपेक्षा, तीर्थ स्थापन की अपेक्षा, अरिह त अति निकट उपकारी होने से उनको प्रथम पद में रखा गया है। **आचार्य-** जिन शासन में साधु-साध्वी समुदाय के अनुशास्ता स घ शिरोमणी गुणसम्पन्न प्रतिभावान महाश्रमण आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाते है। वे अपने निश्रागत(अधीनस्थ)श्रमण श्रमणियों के स यम गुणों के सच्चे स रक्षक होते हैं। इन्हें इस तीसरे पद में नमस्कार किया गया है। **उपाध्याय-** स घ में अध्यापन सुविधा एव व्यवस्था के लिये शिष्यों को यथाक्रम से आगम अध्ययन कराने के लिये आचार्य के सहयोगी उपाध्याय नियुक्त किये जाते हैं। जो स्वय आगमों के गहन अध्येता गीतार्थ बहुश्रुत होते हैं और आचार्य द्वारा अपने पास में नियुक्त शिष्यों को कुशलता के साथ योग्यतानुसार अध्ययन कराते हैं। जिन शासन में आगम ज्ञान की पर परा को प्रवाहित करने वाले ऐसे महाज्ञानी श्रमणों को चौथे पद से नमस्कार किया गया है। **साधु-साध्वी-** आध्यात्म साधना में १८ पापों का पूर्णतया त्याग करके उसका सही रूप में पालन करने वाले, पाँच महाव्रतों का परिपूर्ण पालन करने वाले, साधु-साध्वी कहे जाते हैं। ये साधु-साध्वी सामान्य एव विशेष अनेक श्रेणी वाले हो सकते हैं। अल्पश्रुत और बहुश्रुत अथवा केवल ज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी आदि सभी श्रमणों को इस पाँचवें पद से नमस्कार किया गया है। अरिह त आचार्य और उपाध्याय इन तीनों पद वाले भी पूर्व में इस पाँचवें पद में ही प्रवेश करते हैं किन्तु बाद में अपनी योग्यता एव कार्यक्षमता से अरिह त आदि पदों को प्राप्त करते हैं।

(८) इन नमस्करणीय पाँच पदों को मन वचन काया के द्वारा नमस्कार करने से पापों का, पापकर्मों का नाश होता है अर्थात् अनेक कर्मों की निर्जरा होती है। यह पाँच पदों को किया गया नमस्कार अलौकिक म गल स्वरूप होता है अर्थात् लौकिक जो अनेक म गल कहे जाते हैं, उन सभी म गलों में यह नमस्कार रूप म गल सर्वोच्च म गल स्वरूप है। अतः हर म गल की आवश्यकता के स्थान पर इन पाँच पदों को नमस्कार करना चाहिये ।

(९) इस प्रकार यह प च परमेष्ठी नमस्कार म त्र समस्त आध्यात्म गुण स पन्न आत्माओं का अर्थात् नमस्करणीयों का स कलन सूत्र है ।

(१०) इस महाम त्र में किसी भी व्यक्ति का नामा कन नहीं किया गया है, यही इस म त्र की विशालता का द्योतक है। अर्थात् उक्त गुण स पन्न समस्त अरिह तो को, समस्त सिद्धों को, समस्त आचार्यों को, समस्त उपाध्यायों को एव समस्त साधु-साध्वीयों को इस नमस्कार म त्र में व दन नमस्कार किया जाता है ।

प्रश्न-३ : प्रथम आवश्यक में कितने पाठ है उसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर- नमस्कार म त्र के आद्यम गल के बाद इस प्रथम आवश्यक में एक पाठ है। यह सामायिक ग्रहण करने का प्रतिज्ञा सूत्र है। सामयिक में सावद्य योगों का त्याग किया जाता है । सावद्य योग का अर्थ होता है सभी प्रकार के (१८) पाप कार्य। इन १८ पापों का जीवन भर के लिये त्याग करने से आजीवन सामायिक होती है। इस सामायिक को ग्रहण करने वाला श्रमण कहा जाता है। एक मुहूर्त के लिये इन १८ पापों का त्याग करने से श्रावक जीवन की सामायिक होती है ।इन पापों के त्याग के साथ सामायिक में अधिकाधिक समभाव की प्राप्ति होना भी सामायिक शब्द का सच्चा तात्पर्यार्थ है।

श्रमण की इस आजीवन सामायिक में तीन करण और तीन योग से पापकार्यों का त्याग होता है। पाप नहीं करना, नहीं कराना और पाप कार्य करने वाले को भला भी नहीं जानना, यह तीन करण का त्याग कहा जाता है। मन से, वचन से और शरीर से इन तीनों से पापकार्य नहीं करना, यह तीन योग से पाप कार्य का त्याग कहा जाता है ।

इस प्रकार इस सामायिक प्रतिज्ञा सूत्र से सामायिक ग्रहण करने वाला अठारह पापों को मन से वचन से और शरीर से नहीं कर सकता है। दूसरों को ये पापकार्य करने की प्रेरणा या आदेश भी नहीं कर सकता है और स्वतः ही पापकार्य करने वालों की प्रश सा भी नहीं कर सकता है, उसके कृत्यों को भला भी नहीं जान सकता है। पापकार्यों से निष्पन्न पदार्थों की प्रश सा भी नहीं कर सकता है। वे अठारह पाप इस प्रकार है- (१) हिंसा (२) झूठ (३) चोरी (४) कुशील (५) परिग्रह-धनस ग्रह (६) गुस्सा (७) घम ड़ (८) कपट (९) लालच-तृष्णा (१०) राग (११)

द्वेष (१२) क्लेश-झगड़े (१३) कल क लगाना (१४) चुगली (१५) पर निंदा (१६) हर्ष-शोक (१७) धोखा-ठगाई अथवा कपट युक्त झूठ (१८) मिथ्यात्व-असत्य समझ, खोटी मान्यता, गलत सिद्धा तों की मान्यता प्ररूपणा ।

एक मुहूर्त की या आजीवन की सामायिक ग्रहण करने वाला अपनी उस सामायिक की अवस्था में हिंसादि पाप या गुस्सा, घम ड़, निंदा, विकथा, रागद्वेष अथवा क्लेश कदाग्रह आदि कदापि नहीं कर सकता है। वह विचारों से परम शा त एव पवित्र हृदयी बनकर सदा अपने को इन पापों के त्याग में सावधान रखता है। तभी वह सामायिकवान श्रमण एव सामायिक व्रत वाला श्रमणोपासक कहा जा सकता है ।

प्रश्न-४ : दूसरे आवश्यक में आये "लोगस्स" पाठ का क्या भावार्थ है ?

उत्तर- यह सूत्र **लोगस्स** शब्द से प्रार भ होता है अतः इसका प्रसिद्ध नाम **लोगस्स का पाठ** है। ग्र थों में इसे **उत्कीर्तन** नाम से कहा गया है क्यों कि इसमें तीर्थंकरों का गुण कीर्तन किया गया है ।आगम में इस पाठ का **जिन स स्तव, चतुर्विंशतिस्तव** नाम मिलता है ।

इस सूत्र में सात गाथाएँ है। प्रथम गाथा में तीर्थंकर परिचय के साथ उनके कीर्तन की प्रतिज्ञा है। फिर तीन गाथाओं में २४ तीर्थंकरों के नाम के साथ सम्मान पूर्वक व दन किया गया है। अ तिम तीन गाथाओं में तीर्थंकरों के गुण एव महात्म्य का कथन किया है। अ त में उपस हार रूप में सभक्ति मोक्ष प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

२४ तीर्थंकर धर्म तीर्थ की स्थापना करके लोक में भावप्रकाश करने वाले होते हैं और स्वय सर्व ज्ञानी रागद्वेष विजेता होते हैं ।

१. आरोग्य बोधि=सम्यग्ज्ञान एव श्रद्धान २. श्रेष्ठ भाव समाधि अर्थात् समभाव एव प्रसन्नता की उपलब्धि ३. सिद्धि=मुक्ति= मोक्ष अवस्था, इन तीन बातों की याचना-प्रार्थना सिद्ध प्रभू से की गई है। यह प्रार्थना केवल अपने आदर्श भावों की अभिव्यक्ति मात्र है। वास्तव में सिद्ध प्रभू कुछ भी देने वाले नहीं हैं। किन्तु ऐसे भाव भक्ति युक्त गुण कीर्तन के द्वारा साधक स्वय अपने कर्मों की निर्जरा करके उच्च अवस्था को प्राप्त करता है, वैसी शक्ति प्रकट कर सकता है ।

२४ तीर्थंकर सभी वर्तमान में सिद्ध अवस्था में है। अत: उन्हें सिद्ध शब्द से स बोधन किया गया है ।

तीर्थंकर प्रभू को तीन उपमा दी गई है- १. च द्रमा से भी अति निर्मल २. सूर्य से भी अधिक प्रकाश करने वाले ३. सागर के समान अति ग भीर धैर्यवान होते है ।

प्रश्न-५ : तीसरे आवश्यक में उत्कृष्ट व दन पाठ का भावार्थ और व दन विधि क्या है ?

उत्तर- यह पाठ **इच्छामि खमासमणो** शब्द से प्रारम्भ होता है। अत: इसे **इच्छामि खमासमणो का पाठ** भी कहा जाता है। इस सूत्र से प्रतिक्रमण के समय गुरु को प्रतिक्रमण विधि युक्त व दन किया जाता है। शेष समय में कभी भी शा त मुद्रा में स्थित श्रमण श्रमणी को तिक्खुत्तो के पाठ से व दन किया जाता है। ऐसा अनेक आगमों के वर्णन से सप्रमाण सिद्ध है। गतिमान मुद्रा में अर्थात् चलते हुए श्रमण श्रमणी को केवल **मत्थएण व दामि** शब्द से कुछ दूर रह कर ही व दन किया जाता है ।

नोट- **(१)** किसी पर परा में अन्य समय में भी श्रमणों को तिक्खुतो के पाठ से गुरुव दन नहीं करके इसी पाठ के ४-५ प्रार भिक शब्द बोलकर तिक्खुतो के पाठ का अ तिम शब्द **मत्थएण व दामि** बोल दिया जाता है जो एक अशुद्ध स कलन मात्र है ।**(२)** गुरु के सीमित अवग्रह क्षेत्र में प्रवेश करके इस सूत्र से व दन किया जाता है अर्थात् अति दूर या अति निकट से नहीं किया जाता है ।**(३)** दो बार इस पाठ का उच्चारण उकडु आसन से बैठकर किया जाता है ।**(४)** चार बार तीन तीन आवर्तन किये जाते हैं। चार बार मस्तक झुकाकर व दन किया जाता है। कुल १२ आवर्तन से यह व दन पूर्ण किया जाता है ।**(५)** गुरुदेव के स यम यात्रा की सुखशाता पूछी जाती है एव अपने अपराधों की अथवा किसी भी प्रकार की अविनय आशातनाओं की क्षमा याचना की जाती है। मन वचन काया से अथवा क्रोधादि के वश से किसी भी भगवदाज्ञा या गुरु आज्ञा का उल्ल घन हुआ हो तो उसका समुच्चय रूप में प्रतिक्रमण किया जाता है ।

(६) बारह आवर्तन-(१) अहो (२) काय (३) काय (४) जत्ताभे (५) जवणिज्ज (६) च भे, इन ६ शब्दों पर ६ आवर्तन प्रथम बार में होते हैं

और ६ आवर्तन पुनः दूसरी बार के उच्चारण में होते हैं । यों कुल १२ आवर्तन होते हैं ।

(७) आवर्तन से गुरु देव की भक्ति एव बहुमान किया जाता है। यह क्रिया आरती के समान गुरु के दाहिने से बा ये तरफ की जाती है ।

नोट- कई लोग पर परा से मति भ्रम के कारण गुरु के बा ये से दाहिने तरफ आवर्तन करने रूप अ जली घूमाते हैं जो आरती आदि के अनेक प्रमाणों से अशुद्ध प्रतीत होता है।इस सूत्र में गुरु के लिये अत्यधिक बहुमान सूचक **क्षमाश्रमण** शब्द का प्रयोग किया गया है ।

प्रश्न-६ : चौथे आवश्यक के कितने पाठ हैं और उनका भावार्थ क्या है ?

उत्तर- इस आवश्यक में ९ पाठ हैं। (१)जिसमें प्रथम चत्तारि म गल का पाठ है। लोक में, अरिह त, सिद्ध, साधु एव सर्वज्ञों द्वारा उपदिष्ट धर्म ये चारों ही उत्तम है, म गल स्वरूप है एव शरणभूत है।

नमस्कार म त्र में कहे गये पाँच पद यहाँ तीन पद से कहे हैं और इन पाँच पदों को प्राप्त कराने वाले धर्म को चौथे पद से ग्रहण किया गया है अर्थात् धर्म को नमस्करणीय व दनीय पदों में नमस्कार म त्र में नहीं कहा गया है किन्तु लोक में उत्तम या म गल अथवा शरणभूत में धर्म को भी लिया गया है ।

शरणभूत तो धर्म एव धर्मी आत्माएँ दोनों ही होते हैं किन्तु नमस्करणीय तो धर्मी आत्माएँ ही होती है, धर्म नमस्करणीय नहीं होता है। अरिह त साधु और सर्वज्ञ कथित धर्म के अतिरिक्त जो कुछ भी लोक में उत्तम या म गल अथवा शरणभूत माने जाते हैं वे लौकिक दृष्टि से या बालदृष्टि से होते हैं किन्तु आध्यात्मदृष्टि से वास्तव में म गल रूप या शरणभूत वे नहीं होते हैं। इस सूत्र को **म गल पाठ, म गलिक** आदि नामों से कहा जाता है ।

(२) समुच्चय अतिचार प्रतिक्रमण सूत्र- (१) इस सूत्र में **इच्छामिठामि** यह प्रथम पद है, अतः इसे इच्छामि ठामि का पाठ भी कहा जाता है ।(२) इस सूत्र में स क्षिप्त में प्रतिक्रमण करने योग्य स्थानों के स केत पूर्वक वर्णन है, यथा- १. भगवदाज्ञा विपरीत मन वचन काया की प्रवृति। २. अयोग्य अकल्प्य आचरण, दुर्ध्यान दुश्चि तन। ३. ज्ञान, दर्शन,

चारित्र में अतिचरण। ४. श्रुत ज्ञान, सामायिक, गुप्ति, महाव्रत, पिंडेषणा एव ब्रह्मचर्य की नव वाड़, दस श्रमण धर्म आदि में अतिचरण। ५. कषाय विजय में और ६ काय रक्षण में स्खलन । (३) इस प्रकार इस पाठ में स क्षिप्त रूप से श्रमण गुणों के अतिचार का देवसिक प्रतिक्रमण है। (४) श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र की अपेक्षा इस पाठ में महाव्रत आदि की जगह १२ व्रत के अतिचार की विशेषता है, शेष समानता होती है ।

(३) गमनागमन प्रतिक्रमण सूत्र- इस सूत्र का प्रथम शब्द **इच्छाकारेण** होने से इसे **इच्छाकारेण** का पाठ कहा जाता है। मार्ग में चलने या अन्य भी शारीरिक क्रियाएँ करने में छोटे-छोटे जीवों की जाने अनजाने विराधना होती रहती है। उसका प्रतिक्रमण-शुद्धिकरण इस सूत्र से किया जाता है ।

वे जीव इस प्रकार है- १. प्राणी-कीड़ी,मकड़ी, कु थुवे आदि २. अनेक प्रकार के बीज ३. हरी घास, फूलन, अन्य वनस्पति, अ कुरे आदि ४. पानी, ओस बिंदु आदि ५. सचित्त मिट्टी, नमक आदि अथवा ए केन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, प चेन्द्रिय ।

जीव विराधना के प्रकार- १. उनकी गति में रूकावट आना २. धूल वस्त्र आदि से ढ़ का जाना ३. कुछ रगड़ लगना ४. एक जगह अनेक जीवों को सरका कर इकट्ठा किया जाना ५. चोट लगना ६. परिताप (कष्ट) होना ७. किलामना-अधिक कष्ट होना ८. उपद्रवित-भयाक्रा त होना ९. स्थाना तरित होना, स्थान परिवर्तित हो जाना, स्थान भृष्ट हो जाना १०. जीवन रहित प्राण रहित हो जाना, मर जाना। इस प्रकार ये क्रमिक विशेष विशेष जीव विराधना के बोल समझने चाहिये ।

प्रश्न-७ : श्रमण सूत्र के पाँच पाठों का भावार्थ क्या है ?

उत्तर- (४) निद्रा प्रतिक्रमण सूत्र- इस सूत्र में श्रमण के शयन विधि में होने वाले अतिक्रमण का निर्देश किया गया है एव स्वप्नावस्था में स यम मर्यादा के उल्ल घन होने का भी निर्देश है ।

शयन दोष- १. अधिक समय तक सोना २. बार-बार सोना या दिन में सोना ३. बिछोने पर बैठने सोने में हाथ पाँव अ गोपा गों को फैलाना सिकोड़ना आदि क्रिया करते समय प्रमार्जन(पू जने)का विवेक नहीं रखना ४. जूँ आदि का स घटन होना ५. छींक, उबासी स ब धी अयतना होना ६.

नींद में बोलना, दा त पीसना ७. आकुल व्याकुल होना-उतावल से सो जाना, शयनविधि कायोत्सर्ग आदि नहीं करना।

स्वप्नावस्था के दोष-१. अनेक स कल्प विकल्पों के ज जाल रूप स्वप्न देखना। २. स्त्री आदि के स योग-स ब धी स यम विपरीत स्वप्न देखना अथवा स्त्री विकार, दृष्टि विकार या मनो विकार स ब धी स्वप्न देखना। ३. आहार-पानी, खाने पीने स ब धी स यम मर्यादा के विपरीत स्वप्न देखना । यथा-रात्रि में खाना, अकल्पनीय वस्तु लाना, खाना या गृहस्थ के घर खाना, अदत्त वस्तु लाना, खाना। इत्यादि शयन निद्रा एव स्वप्न स ब धी दोषों अतिचारों का इस सूत्र में चि तन स्मरण करके प्रतिक्रमण किया जाता है ।

(५) गोचरी प्रतिक्रमण सूत्र- गाय आदि पशुओं के चरने के समान ए क घर से अल्प मात्रा में आहारादि लेने की प्रक्रिया के कारण इसका नाम **गोचरी-गोचर चरिया** है। अनेक घरों से भ्रमण करके आहारादि प्राप्त किये जाने के कारण इसे **भिक्षाचरिया** कहा गया है। अहिंसा महाव्रत आदि की रक्षा हेतु इस चरिया में विविध नियमों का पालन किया जाता है। उन नियमों को गवेषणा एषणा आदि नामों से कहा जाता है। इन नियमों में जाने अनजाने कोई अतिचरण हुआ हो, उल्ल घन हुआ हो उसका प्रतिक्रमण इस सूत्र से किया जाता है। यों तो एषणा के ४२ दोष कहे गये है एव सूत्रों में इसके अतिरिक्त भी अनेक दोषों का कथन है किन्तु प्रस्तुत सूत्र में बिना स ख्या निर्देश के अनेक दोषों का स कलन किया गया है ।

प्रतिक्रमण योग्य कथित अतिचार ये हैं- (१) घर के द्वार को खोलना या आज्ञा बिना खोलना (२) कुत्ते, बछड़े, बच्चे आदि का स घट्टन हो जाना या स्त्री आदि का स्पर्श हो जाना (३) इ तजार युक्त व्यवस्थित जमाकर रखे आहारादि में से लेना (४) बलि कर्म योग्य या पूजा का आहार लेना (५) भिक्षाचर याचक अथवा श्रमणों के लिये स्थापित (नियत किये) आहार में से लेना (६) निर्दोषता में स देहशील वस्तु लेना (७) पश्चात कर्म, पूर्व कर्म=दान के पहले या पीछे हाथ आदि धोने का दोष (८) अभिहृत=सामने नहीं दिखने वाली जगह से लाकर दी जाने वाली वस्तु लेना (९) सचित्त पृथ्वी, पानी आदि से लिप्त या

स्पर्शित वस्तु दे उसे लेना (१०) गिराते हुए या फेंकते हुए अर्थात् भिक्षा देते समय कण बू द आदि पृथ्वी आदि पर गिराते हुए भिक्षा दे उसे लेना (११) भिक्षा देते समय बीच में कुछ कुछ फेंकने योग्य वस्तु को, पदार्थ को फेंक दे और ऐसा करते हुए भिक्षा देवे उसे लेना अथवा परठने योग्य(परठना पड़े वैसा)पदार्थ को भिक्षा में लेना (१२) विशिष्ट खाद्य पदार्थ मा गकर या दीनता करके लेना अथवा जो पदार्थ स्वाभाविक जहाँ सुलभ न हो ऐसे पदार्थ की याचना करना (१३) एषणा के ४२ दोषों में से कोई दोष से युक्त आहारादि लेना ।

ये दोष अनजाने से लगते हैं, उनकी प्रतिक्रमण से शुद्धि होती है। कुछ विशिष्ट दोष(आधाकर्मी सचित आदि)से युक्त आहार भूल से आ जाय तो मालूम पड़ने पर खाना भी स्वत त्र दोष है। अतः ऐसे आहार आदि योग्य स्थान में परठ दिये जाते हैं किन्तु खाये नहीं जाते हैं। जानकर लगाये गये दोषों का प्रतिक्रमण के अतिरिक्त स्वत त्र प्रायश्चित्त(तप आदि)भी होता है। प्रतिक्रमण समय के अतिरिक्त अर्थात् गोचरी से आने के बाद भी इस पाठ का कायोत्सर्ग किया जाता है ।

(६) स्वाध्याय प्रतिलेखन प्रतिक्रमण सूत्र–(१) स्वाध्याय समाप्ति पर एव प्रतिलेखन समाप्ति पर कायोत्सर्ग कर इस सूत्र पर चि तन कर प्रतिक्रमण किया जाता है। (२) दिन और रात्रि के प्रथम और अ तिम प्रहर ये चारों स्वाध्याय करने के काल है। इनमें यथासमय स्वाध्याय नहीं करना यहाँ अतिचार दर्शाया गया है अर्थात् इन चारों समयों में श्रमण श्रमणियों को सूत्रों की स्वाध्याय अवश्य करनी चाहिये। (३) श्रमण के स यमोपयोगी जो भी उपकरण वस्त्र, पात्र, रजोहरण, पू जणी आदि एव पुस्तक, पाने, ड ड़ा आदि सकारण रखे उपकरणों की दोनों समय प्रतिलेखना की जाती है। यथा– सुबह और शाम अर्थात् प्रथम प्रहर में एव चौथे प्रहर में। (४) यह प्रतिलेखन यतना पूर्वक एव विधि पूर्वक किया जाता है। ऐसा विधियुक्त प्रतिलेखन सर्वथा न किया हो या अविधि अयतना से किया हो तो उसका प्रतिक्रमण एव प्रायश्चित्त किया जाता है ।

इसी प्रकार स्वाध्याय न करने पर एव अविधि से या निषिद्ध समयों में करने से भी प्रायश्चित्त आता है। इसी प्रकार प्रमार्जन(पू जने स ब धी)प्रतिक्रमण भी इस सूत्र से होता है।

(७)तेतीस बोल प्रतिक्रमण सूत्र– (१) श्रमणाचार के अनेक बिखरे हुए विषयों को यहाँ १ से लेकर ३३ तक की स ख्या के अवल बन से स ग्रह किया गया है ।(२) इन सभी बोलों में कहे गये आचार के विधि निषेध रूप विषयों में किसी प्रकार की स्खलना हुई हो, अतिचार दोष लगा हो तो चि तन स्मरण करके उसका इस सूत्र से प्रतिक्रमण किया जाता है ।(३) **विधिरूप विषय**–समिति, गुप्ति, महाव्रत, ब्रह्मचर्य की ९ वाड़, यति धर्म, पड़िमाएँ, पच्चीस भावना, सतावीस अणगार गुण, आचार प्रकल्प एव ३२ योग स ग्रह आदि। (४) **निषेधरूप विषय**– अस यम, द ड़, ब ध, शल्य, गर्व, विराधना, कषाय, स ज्ञा, विकथा, क्रिया, कामगुण, भय, मद, अब्रह्म, सबल दोष, असमाधि स्थान, पाप सूत्र, महामोह ब धस्थान, तेतीस आशातना ।

(५) **ज्ञेय विज्ञेय विवेकरूप विषय**– ६ काया, ६ लेश्या, जीव के भेद–१४, प द्रह परमाधामी, सूयगड़ा ग सूत्र के–२३ अध्ययन, ज्ञाता सूत्र के–१९ अध्ययन, तीन छेद सूत्रों के–२६ उद्देशक(अध्ययन), २२ परीषह २४ देवता, ३१ गुण सिद्धों के। ये भेद एव अध्ययन जानने योग्य एव विवेक करने योग्य है। (६) **उभय**– चार ध्यान में दो ध्यान विधि रूप है दो ध्यान निषेध रूप है।

इस प्रकार समग्र आचार के स ग्रहित इन विषयों में से जानने योग्य जाने नहीं, आचरण करने योग्य का आचरण करे नहीं, त्यागने योग्य का त्याग न करे एव विवेक करने योग्य का विवेक न करे, सहन करने योग्य को सहन न करे इत्यादि अपनी विविध भूलों का कर्तव्यों का भान कराने वाला यह तेतीस बोल का सूत्र पाठ है। इन बोलों का विस्तार अलग–अलग सूत्रों में दिया है ।

(८) निर्ग्रंथ प्रवचन श्रद्धान नमन प्रतिक्रमण सूत्र :–

(१) इस सूत्र में निर्ग्रंथ प्रवचन वीतराग धर्म का माहात्म्य बताया गया है। २४ तीर्थंकरों को एव समस्त श्रमण गुण युक्त महात्माओं को नमस्कार किया गया है तथा अपने श्रद्धान एव स यम की प्रतिज्ञा एव उसका प्रतिक्रमण भी किया गया है।

(२) यह वीतराग धर्म सत्य, अणुत्तर, श्रेष्ठ, हितावह, मुक्तिदाता एव समस्त दु:खों से छुड़ाने वाला है। इस धर्म के आचरण एव श्रद्धान में

स्थित प्राणी एक दिन अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है।

(३) अतः इस धर्म की अ तर मन से समझ पूर्वक श्रद्धा प्रतीति रुचि करनी चाहिये एव लगनपूर्वक इसका पालन करना चाहिये ।

(४) सूत्र में प्रतिज्ञा एव प्रतिक्रमण योग्य वर्णित स्थान–

(१)	अस यम त्याग	स यम धारण
(२)	अब्रह्मचर्य त्याग	ब्रह्मचर्य धारण
(३)	अकल्पनीय त्याग	कल्पनीय आचरण
(४)	अज्ञान त्याग	ज्ञानधारण वृद्धि
(५)	अक्रिया त्याग	क्रिया(उद्यम)धारण
(६)	मिथ्यात्व त्याग	सम्यक्त्व धारण
(७)	अबोधि त्याग	बोधि धारण
(८)	उन्मार्ग त्याग	सन्मार्ग ग्रहण

(५) जो भी दोष याद हो या याद न हो उन सभी का प्रतिक्रमण होता है। उनमें से किसी का प्रतिक्रमण पूर्व पाठों के उच्चारण चि तन में न हो पाया हो उसका यहाँ समुच्चय रूप से पुनः प्रतिक्रमण इस पाठ से किया जाता है।

(६) श्रमण गुण–यतना करने वाला, पापों से दूर रहने वाला, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, भावी फल की आका क्षा नहीं करने वाला, सुदृष्टि से स पन्न, कपट प्रप च से मुक्त, ऐसे गुणस पन्न श्रमण अढ़ाई द्वीप के प द्रह कर्मभूमि क्षेत्रों में होते हैं। ये श्रमण मुख्य रूप से मुखवस्त्रिका, रजोहरण, पू जणी, वस्त्र, पात्र इन उपकरणों को रखने वाले होते हैं। मुख्य पाँच महाव्रतों को धारण करने वाले होते हैं एव विशालता की अपेक्षा अठारह हजार शील गुणों को धारण करने वाले, निर्दोष परिपूर्ण स यम के पालन करने वाले होते हैं।

ऐसे गुणों के धारक श्रमणों को इस सूत्र से भाव पूर्वक व दन करते हुए साथ ही मस्तक झुका कर व दन भी किया जाता है ।

प्रश्न–८ : सर्व जीव क्षमापना पाठ का क्या माहात्म्य है ?

उत्तर– (१) व्रत शुद्धि रूप प्रतिक्रमण के साथ–साथ हृदय की पवित्रता, विशालता एव समभावों की वृद्धि हेतु क्षमापना भाव की

भी आत्म उन्नति में परम आवश्यकता है। अतः प्रतिक्रमण अध्याय के समस्त सूत्रों के बाद यह क्षमापना सूत्र दिया गया है। इस सूत्र का कायोत्सर्ग मुद्रा में चि तन मनन करके आत्मा को विशेष विशुद्ध बनाया जा सकता है।

(२) आत्मा को विशुद्ध बनाने के लिये पूर्ण सरलता और शा ति के साथ, समस्त प्राणियों के अपराधों को उदार चि तन के साथ, क्षमा करके अपने मस्तिक को उनके प्रति परम शा त और पवित्र बना लेना चाहिये ।

(३) अह भाव, घम ड़ मन से दूर हटा कर अपनी यत्कि चित भूलों का स्मरण कर, स्वीकार कर, उससे स ब धित आत्मा के साथ लघुता पूर्वक क्षमा याचना कर उसके हृदय को शा त करने का अपना उपक्रम– प्रयत्न कर लेना चाहिये ।

(४) अपनी मनोदशा ऐसी बन जानी चाहिये कि जगत के समस्त प्राणियों के साथ मेरी मैत्री ही है, किसी के भी साथ अमैत्री या वैर विरोध भाव नहीं है। जो भी कोई वैर भाव क्षणिक बन गया हो तो उसे हटा कर भुला देना चाहिये एव समभाव द्वारा मैत्री भाव मानस में स्थापित कर देना चाहिये। इस प्रकार समस्त आत्मदोषों की आलोचना, नि दा, गर्हा आदि सम्यक् प्रकार से की जाती है ।

(५) इस सूत्र में मन, वचन, काया के प्रतिक्रमण का उपस हार करते हुए अ त में २४ तीर्थंकरों को व दन किया गया है ।

प्रश्न–९ : पाँचवें आवश्यक में आये पाठ का अर्थ भावार्थ क्या है ?

उत्तर– (१) यह सूत्र **तस्स–उत्तरी–करणेण** शब्द से प्रार भ होता है। अतः इसे तस्स–उत्तरी का पाठ भी कहा जाता है। प्रत्येक कायोत्सर्ग के पूर्व इस पाठ का उच्चारण किया जाता है। अतः यह कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा सूत्र है ।

(२) कायोत्सर्ग एक आभ्य तर तप है। आत्मा को श्रेष्ठ उन्नत बनाने के लिये, अकृत्यों का प्रायश्चित्त करने के लिये, आत्मा को विशुद्ध एव दोष रहित बनाने के लिये, आत्मचि तन करने के लिये तथा पापकर्मों का विशेष क्षय करने के लिये कायोत्सर्ग किया जाता है। इसमें काया के स चार का त्याग किया जाता है, स्थिर रहा जाता है फिर भी

स्वाभाविक अनेक कायिक प्रक्रियाएँ एव कायिक वेग नहीं रोके जा सकते हैं, उनके आगार भी कायोत्सर्ग में रहते हैं ।

(३) वे आगार स्थान इस प्रकार है–१. श्वाँस लेना २. श्वाँस छोड़ाना ३.खाँसी ४. छींक ५. उबासी ६. ड़कार ७. वायुनिसर्ग ८. चक्कर आना ९. मूर्च्छा आना १०. सूक्ष्म अ ग स चार ११. सूक्ष्म खेल-कफ स चार १२. सूक्ष्मदृष्टि स चार ।

(४) इन उक्त शारीरिक आवश्यक क्रिया प्रक्रिया से काया का स चार होने पर भी कायोत्सर्ग की मर्यादा भ ग नहीं होती है, कायोत्सर्ग की विराधना नहीं होती है ।

(५) अन्य किसी आत्मिक च चलता अस्थिरता से कायिक स चार करने पर कायोत्सर्ग मर्यादा भ ग हो जाती है ।

(६) कायोत्सर्ग में काया को स्थिर रखा जाता है, वचन से पूर्ण मौन रहा जाता है एव चि तन मनन भी लक्षित विषय में ही केन्द्रित किया जाता है अर्थात् जिस लक्ष्य से कायोत्सर्ग किया जाता है उसी में चित्त एकाग्र किया जाता है। जब कोई भी चि तन का लक्ष्य नहीं होता है तब शुद्ध अर्थात् विकल्प या चि तन रहित, निर्विकल्प कायोत्सर्ग किया जाता है। उसमे पूर्ण योग व्युत्सर्जन किया जाता है।

(७) कायोत्सर्ग का विषय या समय पूर्ण होने पर **णमो अरिह ताण** इस शब्द के उच्चारण के साथ उसे पूर्ण किया जाता है, समाप्त किया जाता है अर्थात् कायोत्सर्ग पार लिया जाता है ।

(८) प्रतिक्रमण में मुख्य रूप से दो कायोत्सर्ग होते हैं–अतिचार चि तन और तपचि तन या क्षमापना चि तन। प्रतिक्रमण के प्रार भ में अतिचार चि तन रूप कायोत्सर्ग होता है और अ त में पाँचवें आवश्यक में क्षमापना चि तन एव तप चि तन किया जाता है ।

प्रश्न–१० : छट्ठे आवश्यक में आये १० पच्चक्खाण के पाठों का भावार्थ क्या है एव उनमें आये आगारों का अर्थ क्या है ?

उत्तर– प्रतिक्रमण एव विशुद्धिकरण के पश्चात तप रूप प्रायश्चित्त स्वीकार करना भी आत्मा के लिये पुष्टिकारक होता है तप से विशेष कर्मों की निर्जरा होती है। अतः इस छट्ठे आवश्यक(अध्याय)में इत्वरिक अनशन तप के १० प्रत्याख्यान के पाठ कहे गये है । इसमें

स केत प्रत्याख्यान भी है एव अद्धा प्रत्याख्यान भी है ।

(१)नमस्कार सहित (नवकारसी)– प्रार भ के प्रथम प्रत्याख्यान के पाठ में **सहिय** शब्द का प्रयोग हुआ है जो **ग ठि सहिय , मुट्ठिसहिय** के प्रत्याख्यान के समान है। अतः सहित शब्द की अपेक्षा यह स केत प्रत्याख्यान होता है। स केत प्रत्याख्यानों में काल की निश्चित मर्यादा नहीं होती है ये स केत निर्दिष्ट विधि से कभी भी पूर्ण(समाप्त)कर लिये जाते हैं।

काल मर्यादा नहीं होने से स केत प्रत्याख्यानों में सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार नहीं होता है क्यों कि पूर्ण समाधि भ ग होने की अवस्था के पूर्व ही स केत पच्चक्खाण कभी भी पार लिया जा सकता है। तदनुसार नवकारसी के पाठ में भी यह आगार नहीं कहा गया और नमस्कार सहित शब्द प्रयोग किया गया है। इसलिये यह अद्धा प्रत्याख्यान नहीं है किन्तु स केत पच्चक्खाण है अर्थात् समय की कोई भी मर्यादा नहीं होती है, सूर्योदय के बाद कभी भी नमस्कार म त्र गिन कर यह प्रत्याख्यान पूर्ण किया जा सकता है। शेष सभी(९) अद्धा प्रत्याख्यान है ।

नवकारसी प्रत्याख्यान में चारों आहार का त्याग होता है एव दो आगार होते हैं– भूल से खाना और अचानक सहसा मुँह में स्वतः चले जाना। वर्तमान में इसके ४८ मिनट समय निश्चित्त करके इसे अद्धाप्रत्याख्यान में माना जाता है। अतः पाठ में आगार भी सुधार लेने चाहिये ।

(२) **पोरिसी**– पाव दिन को एक पोरिसी कहते है। सूर्योदय से लेकर पाव दिन बीतने तक चारों आहार का त्याग करना **पोरिसी प्रत्याख्यान** है। पोरिसी आदि ९ प्रत्याख्यानों में हीनाधिक विविध आगार कहे गये हैं । जिनको अर्थ सहित आगे स्पष्ट किया गया है।

(३) पूर्वार्द्ध(पुरिमड्ढ)=दो पोरिसी–इसमें सूर्योदय से लेकर आधे दिन तक चारों आहार का त्याग होता है ।

(४) एकासन–इसमें एक स्थान पर एक वक्त भोजन किया जाता है उसके अतिरिक्त समय में तीनों आहार का त्याग होता है। केवल अचित्त जल लिया जा सकता है।

(५) एकस्थान(एकल ठाणा)–इसमें एक बार एक स्थान पर भोजन करने के अतिरिक्त समय में चारों आहार का त्याग किया जाता है अर्थात् आहार और पानी एक साथ ही ले लिया जाता है ।

(६) नीवी–इसमें एक बार रुक्ष आहार किया जाता है। पाँचों विगयों का, एव महा विगय का त्याग होता है। एक बार भोजन के अतिरिक्त तीनों आहार का त्याग होता है। अचित्त जल दिन में पिया जा सकता है । खादिम, स्वादिम का इसमें सर्वथा त्याग होता है ।

(७) आय बिल–इसमें एक बार भोजन किया जाता है जिसमें एक ही रुक्ष पदार्थ को अचित्त जल में डुबोकर भिजोकर नीरस बनाकर खाया एव पीया जाता है। वर्तमान में अलूणा और लूखा आहार स्वाद रहित भी आय बिल में किया जाता है। अन्य कुछ भी नहीं खाया जाता है ।एक बार भोजन के अतिरिक्त दिन में आवश्यकता अनुसार अचित्त जल लिया जा सकता है ।

(८) उपवास–इसमें सूर्योदय से लेकर अगले दिन तक चारों आहार का त्याग किया जाता है। तिविहार उपवास भी किया जाता है तो उसमें गर्म पानी पीया जा सकता है ।

(९) दिवस चरिम– भोजन के बाद चौथे प्रहर में चारों आहार का त्याग किया जाता है, उसे दिवस चरिम प्रत्याख्यान कहते हैं। यह प्रत्याख्यान सूर्यास्त के पूर्व कभी भी किया जा सकता है। यह प्रत्याख्यान हमेशा किया जा सकता है अर्थात् आहार के दिन या आय बिल, निवी एव तिविहार उपवास में भी यह दिवस चरिम प्रत्याख्यान किया जा सकता है। इसमें सूर्यास्त तक का अवशेष समय एव पूर्ण रात्रि का काल निश्चत होता है। अतः यह भी अद्धा प्रत्याख्यान है। इसलिये इस प्रत्याख्यान में **सर्व समाधि प्रत्ययिक** आगार कहा गया है ।

(१०) अभिग्रह– आगम निर्दिष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव स ब धी विशिष्ट नियम अभिग्रह करना और अभिग्रह सफल नहीं होने पर तपस्या करना। यह अभिग्रह मन में धारण किया जाता है, प्रकट नहीं किया जाता है। समय पूर्ण हो जाने के बाद आवश्यक हो तो कहा जा सकता है ।

इन दस प्रत्याख्यानों में से कोई भी प्रत्याख्यान करने से यह छट्ठा प्रत्याख्यान आवश्यक पूर्ण होता है ।

दस प्रत्याख्यानों में आये १५ आगारों का अर्थ इस प्रकार है–

(१) अनाभोग– प्रत्याख्यान की विस्मृति से अर्थात् अशनादि चखना या खाना पीना हो जाय तो उसका आगार ।

(२) सहसाकार–वृष्टि होने से, दही आदि म थन करते, गायादि दुहते, मुँह में छींटा चले जाय तो उसका आगार ।

(३) प्रच्छन्नकाल–सघन बादल आदि के कारण पोरिसी आदि का बराबर निर्णय न होने से समय मर्यादा में भूल हो जाय उसका आगार।

(४) दिशामोह– दिशा भ्रम होने पर पोरिसी आदिका बराबर निर्णय न होने से समय मर्यादा में भूल हो जाय उसका आगार ।

(५) साधु वचन–पोरिसी आदि का समय पूर्ण हो गया, इस प्रकार साधु(सभ्य पुरुष) के कहने से समय मर्यादा में भूल हो जाय तो आगार ।

(६) सर्वसमाधि प्रत्ययागार– स पूर्ण समाधि भ ग हो जाय अर्थात् आकस्मिक रोगात क हो जाय तो उसका आगार ।

(७) महत्तरागार– गुरु आदि की आज्ञा का आगार ।

(८) सागारिकागार– गृहस्थ के आ जाने पर साधु को स्थान परिवर्तन करने का आगार(एकाशन आदि में)।

(९) आकु चन प्रसारण– हाथ-पैर आदि के फैलाने का अथवा स कुचित करने का आगार ।

(१०) गुर्वभ्युत्थान– गुरु आदि के विनय के लिये उठने खड़े होने का आगार ।

(११) पारिष्ठापनिकागार– बढ़ा हुआ आहार परठना पड़ता हो तो उसे खाने का आगार। (विवेक रखते हुए कभी गोचरी में आहार अधिक आ जाय। खाने के बाद भी शेष रह जाय तो गृहस्थ आदि को देना या रात्रि में रखना स यम विधि नहीं है। अतः वह आहार परठने योग्य होता है। उसे खाने का अनेक प्रत्याख्यानों में साधु के आगार रहता है । गृहस्थ के यह आगार नहीं होता है)

(१२) लेपालेप–शाक, घृत, आदि से लिप्त बर्तन को पोंछ कर कोई रुक्ष आहार बहरावे, उसका आगार ।

(१३) उत्क्षिप्त विवेक– दाता पहले से रखे हुए सुखे गुड़ आदि को उठाकर दे तो लेने का आगार।

(१४) गृहस्थ स सृष्ट–दाता के हाथ, अ गुलि आदि के लगे हुए गुड़ घृत आदि का लेप मात्र रुक्ष आहार में लग जाय उसका आगार ।

(१५) प्रतीत्यम्रक्षित– किन्हीं कारणो से या रिवाज से किंचित अ श मात्र विगय लगाया गया हो तो उसका आगार। यथा–गीले आटे पर घी चुपड़ा जाता है। पापड़ करते समय तेल चुपड़ा जाता है। दूध या दही के बर्तन धोया हुआ धोवण पानी इत्यादि इन पदार्थों का निवी में आगार होता है ।

नोट–किस प्रत्याख्यान में कौन कौन से आगार है यह मूलपाठ से देख कर जानने का प्रयत्न करें । उनकी स ख्या इस प्रकार है–

तपनाम	आगारस ख्या	तपनाम	आगारस ख्या
नवकारसी में	२	निवी में	९
पोरिसी में	६	आय बिल में	८
पूर्वार्द्ध पुरिमड्ढ में	७	उपवास में	५
एकासन में	८	दिवस चरिम में	४
एकलठाणा में	७	अभिग्रह में	४

विशेष– नवकारसी में सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार नहीं होता है, शेष सभी में होता है। परिठावणियागार पाँच में होता है, पाँच में नहीं होता है। १. एकासना २. एकलठाणा ३. निवी ४. आय बिल ५. उपवास में होता है । महत्तरागार दो में नहीं होता है, नवकारसी और पोरिसी। शेष आठ में होता है। प्रतीत्यम्रक्षित आगार केवल निवी में होता है।लेपालेप, उत्क्षिप्तविवेक, गृहस्थ–स सृष्ट ये तीन आगार आय बिल निवी इन दो प्रत्याख्यानों में ही होते हैं। अनाभोग और सहसागार ये दो आगार सभी में होते हैं ।

प्रश्न–११ : छट्ठे आवश्यक के अ त में आये अ तिम म गल पाठ सिद्ध स्तुति का क्या तात्पर्यार्थ है ?

उत्तर– (१) इस सूत्र में प्रथम शब्द **नमोत्थुण** है इसी कारण इस सूत्र को **णमोत्थुण का पाठ** भी कहा जाता है।

(२) शक्रेन्द्र आदि इन्द्र देवलोक में भी तीर्थंकर को एव सिद्धों को इसी सूत्र से स्तुति के साथ नमस्कार करते हैं। इस कारण इस सूत्र का नाम **शक्रस्तव** भी कहा जाता है।

(३) इस पाठ में कुछ स्तुति–गुणग्राम के शब्द अरिह तों के लिये लागु पड़ते हैं, कुछ शब्द सिद्धों के लिये एव कुछ दोनों के लिये है तथा कुछ शब्द अपेक्षा से दोनों में घटित किये जाते हैं ।

(४) कई लोगों में ऐसा भ्रम भी प्रचलित है कि तीसरा णमोत्थुण गुरु को दिया जाता है किन्तु आगम में गुरु के लिये णमोत्थुण का यह पूरा पाठ नहीं बोला जाता है। केवल **णमोत्थुण** एक शब्द ही बोला जाता है शेष अन्य ही कुछ शब्द बोले जाते हैं ।

(५) इस सूत्र के अ त में **ठाण स पाविउकामाण** पाठ बोलने पर सूत्रोक्त सभी गुण तीर्थंकरों में घटित हो जाते हैं। **ठाण स पत्ताण** कहने पर कुछ गुण सिद्धों में घटित हो जाते है। शेष सभी गुणों को अपेक्षा से कल्पित करके सिद्धों में घटित किया जा सकता है। अरिह ताण , भगव ताण से लेकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी तक के सभी गुण स्वाभाविक रूप से तीर्थंकर अरिह त भगव तों में घटित होते हैं।

स्तुति गत गुण– धर्म की आदि करने वाले, स्वय स बुद्ध, पुरुषोत्तम, उत्तम सि ह, कमल एव ग धहस्ति की उपमा वाले, लोक के नाथ, लोक में ज्ञान का प्रकाश करने वाले, जीवों को शरण, बोधि एव धर्म देने वाले, धर्म के चक्रवर्ती, वीतरागी, श्रेष्ठ ज्ञानदर्शन के धारक, सर्वज्ञ–सर्वदर्शी, स्वय तिरने वाले और दूसरों को बोध देकर तारने वाले, अव्याबाध सुख के स्थान रूप मोक्ष गति को प्राप्त किये हुए या प्राप्त करने वाले इत्यादि ।

इन गुणों का निर्देश करने के साथ ही सूत्र के प्रारम्भ में और अ त में जिनेश्वर भगव त को नमस्कार किया गया है ।

प्रश्न–१२ : श्रावक प्रतिक्रमण के पाठ कौन से है ?

उत्तर– आवश्यक सूत्र में ६ आवश्यक में श्रमण प्रतिक्रमण के पाठ है। श्रावक के १२ व्रतों के पाठ, छ आवश्यक के बाद चूलिका रूप

में है, ऐसा निर्युक्ति भाष्य व्याख्याओं से ज्ञात होता है। शेष सभी पाठ श्रमण प्रतिक्रमण के अर्थात् ६ आवश्यक में आये हैं वे ही होते हैं, कहीं कोई शब्द का परिवर्तन मात्र होता है, यथा- **सव्व सावज्ज जोग** के स्थान पर **सावज्ज जोग** । **जावज्जीवाए** के स्थान पर **जाव नियम** । **तिविह तिविहेण** के स्थान पर **दुविह तिविहेण** । **असमण पाउग्गो = असावगपाउग्गो** । **चरित्ते** के स्थान पर **चरित्ताचरित्ते** । वगैरह शब्द फरक होता है, बाकी पाठ वो ही होते हैं ।

आवश्यक सूत्र के मूल पाठ लेखन प्रकाशन में चूलिका रूप श्रावक व्रत के पाठ मूल में छूट जाते हैं। श्रावक प्रतिक्रमण में वे पाठ लिये जाते हैं। तथापि मूलपाठ के साथ भी चूलिका रूप में उन्हें रखा जाना जरूरी है । जैसे दशवैकालिक की दो चूलिका है वैसे ही आवश्यक सूत्र की चूलिका को उसके साथ रखना चाहिये। व्याख्याकारों ने उस पाठों की (चूलिका रूप में कह कर) व्याख्या की है । अतः श्रावक प्रतिक्रमण भी आवश्यक सूत्र में है, ऐसा समझना चाहिये ।

॥ आवश्यक सूत्र स पूर्ण ॥

॥ चार मूल सूत्र स पूर्ण ॥

॥ जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-१० स पूर्ण ॥

सौजन्य दाताओं की शुभ नामावाली

(१) श्री अक्षयकुमारजी सामसुखा, मु बई
(२) श्री बी.गौतमचन्दजी का करिया
(३) श्री प्रतापमुनि ज्ञानालय, बडीसादडी
(४) श्री केवलचन्दजी जवानमलजी सामसुखा
(५) श्री मा गीलालजी जैन सामसुखा, बेलगाम सिटी
(६) श्री एल. आशकरणजी गोलेछा, राजना दगाव
(७) श्री पूनमचन्दजी बरडिया, अहमदाबाद
(८) श्री बी. मोहनलालजी अजितमलजी भुरट, बेंगलोर
(९) श्री च पालालजी ता तेड, मद्रास
(१०) श्री केवलच दजी बाबूलालजी कटारिया, प जागुटा-हैदराबाद
(११) श्री शा तिलालजी दुग्गड, नासिक
(१२) श्री एस. रोशनलालजी जैन (गोलेछा), रायपुर
(१३) मे. च पालालजी भँवरलालजी पारख, दोंडायचा
(१४) श्री मोहनलालजी डागा, पाली मारवाड
(१५) श्री चा दमलजी भ साली, बेंगलोर
(१६) श्री राजीव जैन, सुपुत्र श्री रामधारी जैन, पानीपत
(१७) श्रीमती कमलादेवी माणेकचन्द सा. चोपडा, जोधपुर
(१८) श्री ताराचन्दजी स कलेचा, मद्रास
(१९) श्री माणेकचन्दजी जैन, मद्रास
(२०) श्री एल.महावीरचन्दजी जैन रा का, गुडियातम
(२१) श्री पुखराजजी गोलेच्छा, रायपुर
(२२) श्रीमती निर्मलाबेन नीलमचन्दजी ओस्तवाल, मद्रास
(२३) श्रीमती आशालता बाफणा, धूलिया
(२४) श्री पारसमलजी किशोरकुमारजी सोल की, कोयम्बतूर
(२५) श्री हनव तराजजी डोसी(सा चोर वाले)दिल्ली
(२६) श्री धर्मीचन्दजी मारु, दिल्ली
(२७) श्री जी. सुरेशकुमारजी नाहर, अ कलेश्वर
(२८) श्री दुलीचन्दजी जैन, मद्रास
(२९) श्री च पालालजी कँवरलालजी गोलेच्छा, भिलाई (खीचन)
(३०) स्व. श्रीमती शकुनबाई अमृतलालजी गोलेच्छा, भिलाई
(३१) श्रीमती च द्राबाई /श्री भँवरलाल जी कोचर, रायपुर